वैदिक यज्ञसंस्था । भाग २



गोमेध.

[पूर्वार्ध]

(क्या वैदिक समयमें गो-मांस-भक्षण की प्रथा थी? इस विषयके सब आक्षेपोंका सप्रमाण उत्तर ।)

—o—

लेखक और प्रकाशक

श्रीपाद दामोदर सातवळेकर,

स्वाध्याय मंडल, औंध, (जि. सातारा)

द्वितीय बार.

संवत् १९८४; शके १८४९; सन १९२७.

मूल्य १) रु.

संस्कृत पाठ माला।

आगम निबंधमाला । ग्रंथ १९



क्या वैदिक समय में गो-मांस-भक्षण की प्रथा थी?

(इस विषयके सब आक्षेपोंका सप्रमाण)

लेखक और प्रकाशक

श्रीपाद दामोदर सातवळेकर,

स्वाध्यायमंडल, औंध, (जि. सातारा)

द्वितीय वार

संवत् १९८४, शक १८४९, सन १९२७.

वैदिक समयकी प्रथा ।



वैदिक समयमें गोमांस भक्षण की प्रथा थी ऐसा यूरोपीयन लोग और तदनुसार चलनेवाले भारतीय पंडित मानते हैं। परंतु यह उनका भ्रम है। जबसे वैदिक धर्म आर्यलोगोंमें प्रचलित हुआ तबसे आर्य लोग कभी गोभक्षक नहीं हुए और उन में मांसाहार भी शिष्टसंमत भोजन नहीं हुआ। यह बात दर्शाने के लिये इस पुस्तकमें केवल " गोमांस भक्षण " यह एकही विषय लेकर उस परके पूर्वीय और पश्चिमीय विद्वानों के संपूर्ण आक्षेपोंका खंडन करके वास्तविक स्थिति कैसी थी यह बतानेका यत्न किया है। हठसे कोई बात मानने या न माननेसे कदापि धर्म प्रचार में सहायता नहीं हो सकती, इसलिये जहांतक हो सके वहांतक विद्याकी खोज करनेकी दृष्टिकाही अवलंबन करके और इस विषयके संपूर्ण वैदिक प्रमाणों का आंदोलन करके ही यह प्राचीन लिखा है। कोई बात अपने मनकी यहां दी नहीं है, परंतु वेदके ग्रंथोंके प्रमाणों से ही जो बात स्पष्टतासे सिद्ध होती है उतनी ही बताई है। इस लिये आशा है कि यह पुस्तक अत्यंत उपयोगी सिद्ध होगी।

स्वाध्याय मंडल
औंध (जि. सातारा)
१५—७—२७

लेखक,
श्री० दा० सातवळेकर.

मुद्रक तथा प्रकाशक— श्री० दा० सातवळेकर,
भारत मुद्रणालय, औंध. (जि० सातारा)



गोमांस भक्षण की प्रथा।

(१) म० वैद्यजीका मत।

श्री० चिंतामणराव वैद्यजीका गोरक्षण पर एक लेख प्रकाशित हुआ, जिसमें उन्होंने लिखा था कि "प्राचीन कालमें इस भारत भूमिमें गोमांस भक्षण की प्रथा थी, वैदिक जमानेमें ऋषि लोग यज्ञ यागोंमें गोमांस का उपयोग करते थे, इतनाही नहीं प्रत्युत प्रात्यहिक क्षुधा शमन के लिये भी गोमांस का उपयोग होता था।"

श्री० महात्मा गांधीजीने इस के ऊपर अपने विचार प्रकट करने के अवसर में लिखा था कि "श्री० वैद्यजीका यह विधान कई लोग आक्षेपणीय समझेंगे; परंतु अतिप्राचीन कालमें लोग क्या करते थे और क्या नहीं इसके विवादमें हमें अपना समय खो देनेकी आवश्यकता नहीं है, क्यों कि आज हम गोरक्षा किस युक्तिसे कर सकते हैं, यही इस समय हमें देखना है।"

अतिप्राचीन वैदिक कालकी प्रथा हमारे इस समयके लिये घातक सिद्ध हुई तो उसी प्रथाको स्वीकार करनेका आग्रह कोई नहीं करेगा; वेदने यदि "अग्नि शीत है" ऐसा कहा तो

हम उस वेदाज्ञाको कदापि नहीं मानेंगे, ऐसा जो श्री शंकराचार्यजीने कहा है वह इस विषयमें भी सत्य है। केवल किसी बातकी प्राचीनता उसकी उत्तमताको सिद्ध नहीं कर सकती, अतः हम कह सकते हैं कि यदि वैदिक जमानेमें लोग गोमांस भक्षण करते थे ऐसा सिद्ध हुआ, तो उससे यह कदापि सिद्ध नहीं होगा कि आज भी हमें गोमांस भक्षण करना आवश्यक है। कई बातें ऐसीं हैं कि जो वैदिक जमानेमें प्रचलित थीं, परंतु इस समय उनका प्रचार नहीं है। इतना होनेपर भी चूंकि हमारा धार्मिक संबंध ऋषिकाल के तथा वैदिक कालके आचारसे घनिष्ट रूपमें है, इसलिये हमें देखना चाहिये कि क्या सचमुच वैदिक कालके ऋषिमुनी गोमांस भक्षण करते थे या नहीं। इतिहासिक खोजकी दृष्टीसे इसका विचार हमें करना चाहिये, धार्मिक अंध विश्वास को एक ओर रखकर केवल इतिहासिक सत्य तत्त्व देखनेके लिये ही यह खोज हमें करनी चाहिये। क्यों कि गोमांस भक्षण की प्रथाका प्राचीन कालमें अस्तित्व सिद्ध करेगा कि गौका पावित्र्य नवीन है, यदि अतिप्राचीन कालसे गौकी इतनी पवित्रता होती तो उसको काटकर खाने की संभावना कष्टसे मानने योग्य बनेगी। अतः हमें देखना चाहिये कि वैदिक समय में गोमांस भक्षण की प्रथा थी या नहीं।

(२) डा० मुंजेजी का मत।

इसी समय और एक बात हुई, जिसके कारण इसलेख को लिखनेकी अत्यंत आवश्यकता प्रतीत हुई, वह बात यह है कि अखिल हिंदु महासभाके अध्यक्ष और बडे उत्साही कार्यवाह नागपूर के सुप्रसिद्ध डाक्तर मुंजे महोदयजीने अपना यह मत

प्रकाशित किया कि हिंदूमात्रको मांसभोजन करके हृष्ट पुष्ट होना चाहिये। जबसे हिंदू जातीने मांसभोजन छोड दिया और जैन बौद्धोंका अहिंसावाद अपनाया तबसे हिंदुजातीका शक्तिपात हुआ। इसलिये भविष्य कालमें अपनी जातीमें बल उत्पन्न करनेकी इच्छा हो तो मांसभोजन करना आवश्यक है।

डाक्तर मुंजे महोदयजीने केवल मांसभोजन करनेकी ओर लोगोंको प्रेरा था; इतनेमें श्री. वैद्यजीका लेख प्रकाशित हुआ जिसमें उन्होंने वैदिक कालमें गोमांसभक्षणकी प्रथा होनेकी बात लिख दी। अब यदि कोई मनुष्य दोनों महाशयोंके मतोंका संगतिकरण करेगा, तो उसका फल यही निकल आवेगा कि भारतवर्षमें जबतक गोमांसभक्षण जारी था, तबतक के आर्य विजयशाली थे और जबसे अहिंसा मत प्रचलित हुआ तबसे इनका वैभव कम होने लगा।

हमें पूरा विश्वास है कि डाक्तर मुंजे और श्री. वैद्यजीके मत एकदूसरेकी पुष्टीके लिये नहीं लिखे गये हैं और उन्होंनें अपने स्वतंत्र विचारसेही अपनी स्वतंत्र संमतियां प्रकाशित की हैं; तथापि उन दोनों मतोंका करीब एक समय में प्रकाशित होना लोगोंको गोमांस भक्षणतक के प्रलोभनमें डाल सकेगा, इसलिये यह लेख विस्तारसे लिखना आवश्यक हुआ है।

श्री. वैद्यजीका उक्त मत जिस समय हमने देखा उस समय हठ योगप्रदीपिकाका एक श्लोक हमारे सन्मुख उपस्थित हुआ। वह श्लोक यह है-

(३) योगमें गोमांस।

गोमांसं भक्षयेन्नित्यं पिबेदमरवारुणीम्।
कुलीनं तमहं मन्ये इतरे कुलघातकाः।

हठयोगप्रदीपिका। ३। ४७

"नित्य गोमांस भक्षण करें और अमरवारुणी–मद्य–का पान करें, उसी को मैं कुलीन मानता हूं, इतर लोग कुलघातकी हैं।"

अर्थात् गोमांसभक्षण और मद्यपान करनेवाले लोग कुलीन और अन्य लोग कुलघातक हैं। यदि यह श्लोक किसीके सन्मुख आया, तो वह मनुष्य यही समझेगा कि योगशास्त्र ऐसे वाम मार्गका प्रचार करता है और योगियोंके मतसे गोमांस भक्षण और मद्यपान आवश्यक और धर्म्य बात है। श्लोक का अर्थ स्पष्ट है और जिस कारण उस ग्रंथमें यह श्लोक है, उस कारण उस ग्रंथका यह मत है, ऐसा कहनेमें कोई हानि नहीं। परंतु यहां विचार की बात यह है कि, योगग्रंथमें यह श्लोक है इस लिये योगके संकेतानुसार ही इसका अर्थ होना उचित है, कोशोंके अन्य अर्थ चाहे कुच्छ हों, यदि वे अर्थ योगशास्त्रकी परिपाठी के अनुकूल न हों तो ग्रहण करने योग्य नहीं हो सकते। योगमें "गोमांसभक्षण" संज्ञाकी एक क्रिया है, इसका वर्णन निम्न श्लोकमें देखिये—

गोशब्देनोदिता जिह्वा तत्प्रवेशो हि तालुनि।
गोमांसभक्षणं तत्तु महापातकनाशनम्॥

हठयोग प्रदीपिका। ३। ४८

"गो शब्दका अर्थ है जिह्वा, उसका प्रवेश तालुस्थानमें करना, इसको योगप्रणालीके अनुसार गोमांस भक्षण नाम है।" इसी प्रकार "अमरवारुणी" नाम मस्तिष्ककी एक ग्रंथी के रस का है।

हरएक शास्त्रमें अपनी अपनी विशेष परिभाषाएं होती हैं। उनका अर्थ-निश्चय उनकी प्रणाली के अनुसार ही करना चाहिये । उनकी प्रणाली न देखी तो अर्थ का अनर्थ होने में देरी नाहीं लगेगी । उक्त स्थानमें जिस प्रकार " गोमांस भक्षण " यह संज्ञा योग की एक विशेष क्रियाकी है उसी प्रकार कई अन्य संज्ञाएं हैं कि जिनके कारण लोगोंको मांस भक्षण की प्रथा प्राचीन कालमें थी ऐसा भ्रम उत्पन्न होता है ।

(४) प्रकरणानुकूल अर्थविचार ।

ऐसे स्थानोंपर विचार इस बात का करना चाहिये कि यह शास्त्र कौनसा है, इसके महा सिद्धांत क्या हैं, उन महा सिद्धांतों के अनूकूल यह अर्थ है वा नहीं, यदि अनुकूल हो तोही अर्थ सत्य होगा अन्यथा असत्य होगा । अब पूर्व लिखे गोमांस भक्षणवाले श्लोक के विषय में देखिये ।

(१) यह श्लोक योगशास्त्र का है,

(२) योगशास्त्र प्रारंभसे ही " अहिंसा, सत्य, अस्तेय " आदि यमनियमोंका उपदेश करता है,

(३) इस लिये इस शास्त्र में आये " गोमांस भक्षण " का अर्थ अहिंसापरक ही होना चाहिये, जो हमने ऊपर बताया ही है ।

जो शास्त्र प्रारंभ से ही अहिंसा का उपदेश करता है उस शास्त्रमें आगे स्वमतव्याघात की अर्थात् हिंसा करनेकी बात कभी नहीं आ सकती । चूं कि किसीभी योगशास्त्र में हिंसा के अनुकूल आज्ञा नहीं है और संपूर्ण योग शास्त्रके ग्रंथ एक मतसे कायिक, वाचिक, मानसिक, शाब्दिक परिपूर्ण अहिंसा

का उपदेश कर रहे हैं, इसलिये पूर्वोक्त "गोमांस भक्षण" वाले श्लोक का अर्थ भी कायिक, वाचिक, मानसिक अहिंसाके साथ युक्तियुक्त ही करना चाहिये। अन्यथा स्वकीय तंत्रसिद्धांतकी हानि होगी।

इसको कहते हैं कि 'प्रकरणानुकूल अर्थ करना।' ग्रंथ क्या है, प्रकरण क्या है, उसका सर्व तंत्र महा सिद्धांत क्या है यह देखकर ही हमें वाक्योंका अर्थ करना चाहिये। यदि ऐसा न किया जाय तो संस्कृत ग्रंथोंके शब्दोंके अर्थोंका अनर्थ होना कोई असंभव बात नहीं है। क्यों कि संस्कृतमें प्रायः योग रूढिके शब्द होते हैं और पूर्व योग से उनका अर्थ सुगमतासे बदला जाता है। इसलिये संस्कृत ग्रंथ पढनेके समय हमें इस पूर्वापर प्रकरणके संबंधका अवश्य ही ध्यानपूर्वक विचार करना चाहिये।

(५) ऋषिपंचमी।

क्या ऐसा विचार करते हुए हम कह सकते हैं कि वेदके मंत्रोंसे गोमांस भक्षण की प्रथा सिद्ध होती है? जैसा कि श्री० वैद्यजीने लिखा है? हमारे विचार से नहीं, गोमांस भक्षण की तो क्या, परंतु मांस भक्षण की प्रथा भी अति प्राचीन नहीं है। ऋषिकाल का या वैदिक काल का भोजन बतानेवाला एक तेहवार हिंदुओं में इस समय में भी प्रचलित है, जिसको "ऋषिपंचमी" कहते हैं। भाद्रपद शुक्ल पंचमी के दिन यह तेहवार आता है। प्रायः संपूर्ण भारतवर्ष में यह मनाया जाता है। इस दिन कोई मांसभोजन नहीं करते, इतनाही नहीं, परंतु खेतमें तयार हुआ अन्नभी नहीं खाते। जो अन्न "अकृष्टपच्य" होता है अर्थात् कृषिसे उत्पन्न नहीं होता, हातसे भूमि खोदकर उसमें हाथसे बोये हुए कुछ विशेष निरशन-

के अनाज और कंद मूल पत्ते और फल, जो केवल हाथके प्रयत्नसे उत्पन्न होते हैं, वेही खाये जाते हैं। अर्थात् यह तेहवार उस समय का ऋषियोंका अन्न हमें बताता है कि जिस समय ऋषिलोग हल भी नहीं चलाते थे, प्रत्युत किसी साधारण रीतिसे जमीन खोद खोदकर उसमें थोडासा अन्न उपजाते थे। बैलोंके द्वारा बडे हल चलाकर चावल, गेहूं, मूंग आदि धान्योंकी उत्पत्ति होनेके भी पूर्वकालकी स्मृति हमें इस तेहवार से मिलती है। चावल, गेहूं, मूंग आदि धान्य आजकल के हमारे भोजनका प्रधान अंग हैं, इसका नाम " कृष्टपच्य अन्न " है। इस प्रकारकी कृषि प्रारंभ होनेके पूर्व और बडे हल उपयोगमें आनेके पूर्व लोग कंद, मूल, फल, पत्ते और कृषिसे उत्पन्न न हुआ तृणधान्य खाते थे, नमक भी उस समय उपयोग में नहीं आया था।

इस दिन के भोजनके विषयमें निम्नलिखित श्लोक देखने योग्य है—

शाकाहारस्तु कर्तव्यः श्यामाकाहार एव वा।
नीवारैर्वाऽपि कर्तव्यः कृष्टपच्यं न भक्षयेत्॥

" इस दिन शाकाहार करना चाहिये, अथवा श्यामाक धान्य खावें, किंवा तृण धान्य नीवार आदि (जो घास से उत्पन्न होता है) खाया जावे, परंतु खेतीसे उत्पन्न अन्न न खाया जावे।"

जहां खेतीके धान्य खानेका निषेध होगा वहां मांसके खाने की संभावना कहां होगी। अर्थात् तृणधान्य खानेकी प्रथा खेतीके धान्यके प्रथाके पूर्व समयकी है इसमें कोई संदेह नहीं है। और यदि मांसाहार अति प्राचीन होता तो इस दिन अवश्य किया जाता, जिस कारण इस दिन मांसाहार नहीं किया जाता और न उसका प्रतिनिधि उपयोग में आता है, उस कारण हम

कह सकते हैं कि मांसाहार आर्य वंशजों में जो घुसा है वह तीसरी अवस्थापर घुसा है। (१) पहिली अवस्था= अकृष्टपच्य तृणधान्य, फलमूल, कंदमूल पत्ते आदि का भोजन. (२) दूसरी अवस्था=कृष्टपच्य गेहूं, चावल आदि भोजन, (३) तीसरी अवस्था =पूर्वोक्त भोजन में मांसके घुसनेकी है।

इस दृष्टीसे ऋषी पंचमीका तेहवार हमें अति प्राचीन ऋषि भोजन की प्रथा शाकाहारके होनेकी सूचना देता है।

यदि म. चिंतामणराव वैद्य इस ऋषिपंचमीके "ऋषि भोजन" का विचार करेंगे, तो उनको पता लग जायगा, कि ऋषियों का भोजन क्या था। प्राचीन कालकी प्रथा हिंदुओंके शुभ दिवसोंमें आज भी आचारमें आती है। एकादशी, शिवरात्री, आदि तिथि-योंमें; सोम,मंगल,गुरु, रवि आदि वारोंके दिन जो लोग उपवास करते हैं तथा अन्यान्य पवित्र माने हुए दिनों में निरशन का माना हुआ जो आहार है. उसमें भी कंद, मूल, फल, पत्ते और वन्य अकृष्टपच्य अनाज ही होता है। चावल, गेहूं, मूंग आदि धान्य उपवास के दिन इस लिये नहीं खाते कि यह नवीन अन्न है। चावल, गेहूं आदि धान्य खाने की प्रथा नवीन और अकृष्टपच्य कंदमूल, पत्ते आदि खानेकी प्रथा प्राचीन ऋषि लोगोंकी थी इस विषय में अब किसीको संदेह नहीं हो सकता। प्राचीन आचार की खोज करनेके समयमें भारतीय हिंदूओं के शुभदिवसोंके आचार हमें बडा ज्ञान दे सकते हैं। जिस समय गेहूं चावल आदि नवीन धान्य प्रचार में आ गया उस समय कंदमूलादि ऋषि भोजन पवित्र दिवसों केलिये रखा गया। इस प्रकार पुराणी प्रथा और नवीन रीतिका मेल यहां दिखाई देता है। शतपथ ब्राह्मणमें भी इसका उल्लेख है. जैसा देखिये—

यदेवाशितमनशितं तदश्नीयात् ......॥ ९ ॥
......तस्मादारण्यमेवाश्नीयात् ॥ १० ॥
शतपथ।१।१।१

" जो भोजन न खानेके समान होता है वह उपवासके व्रतके दिन खाया जाय, ... वन्य (कंदमूल फल आदि) खाया जाय।"

यह कंद मूल फलका भोजन निरशनका भोजन है अर्थात् व्रत रखनेके दिन यदि कुछ खाना हो तो यह वन्य पदार्थ खाये जांय। शतपथ ब्राह्मण का समय इससे करीब पांच सहस्र वर्षोंका है। उस समय भी आज कल के समान ही उपवासका व्रत होता था और उस दिन आजकलके समान निरशन का भोजन उक्त प्रकार किया जाता था। शतपथ ब्राह्मणके समय चावल गेहूं उडद आदि खेतीसे उपजे धान्य विपुल होने लगे थे और अति प्राचीन ऋषिभोजन व्रतके दिन के लिये ही रखा गया था। इसका विचार करके पाठक जान सकते हैं कि जो ऋषिभोजन हम ऋषिपंचमीके दिन प्रयत्नसे करते हैं और जिस दिन अरुंधती देवी के साथ वसिष्ठादि सप्तऋषियों का पुण्यस्मरण करते हैं और जो दिन ऋषियों के समान आचार करनेमें व्यतीत करते हैं, उस दिनके व्रतका निरशनका फलाहार शतपथ ब्राह्मण के इतना पुराना तो है ही, परंतु शतपथ ब्राह्मणके समय में भी वह अति प्राचीन बन गया था; अर्थात् शतपथसे भी कई सहस्र वर्षोंका यह ऋषिभोजन होना संभव है। इस प्राचीन ऋषिभोजन में मांस भोजन की बूभी नहीं, कृषिसे उत्पन्न भोजन नहीं, परंतु वनमें स्वभावसे उत्पन्न कंदमूल फल पत्ते और कुछ जंगली धान्य होता है। यदि वैदिक कालके ऋषियों के भोजन में मांस का थोडाभी संबंध होता, तो ऋषिपंचमी के समय के भोजनमें उसका थोडा अंश होता, या उसका कोई प्रतिनिधि भी होता।

(६) मांसका प्रतिनिधि ।

" मांस " का प्रतिनिधि " माष, माह या उडद" माना है और जहां " मांसान्न " की आवश्यकता होती है वहां "माषान्न अर्थात् उडद और चावल" का ग्रहण करनेकी स्मार्त पद्धति भी श्री. वैद्यजीको ज्ञात ही होगी। परंतु उक्त ऋषिपंचमीके समयके आहार में मांस प्रतिनिधि भी नहीं है। इसलिये हम कहते हैं कि ऋषिपंचमीका भोजन सच्चा ऋषि भोजन है और जो पूर्णरूपसे निर्मास है। म. वैद्यजी इस ऋषिपंचमी व्रतको अच्छी प्रकार जानते हैं और इसकी गवाहीसे जो सिद्ध हो रहा है उसके खंडन में उनके पास कोई युक्ति नहीं है, यह हम अच्छी प्रकार जानते हैं, क्योंकि हमें पता है कि वे ऋषि पंचमी माननेवाले कुटुंबके ही कुटुंबी हैं।

यह ऋषिपंचमी व्रत सप्तऋषियोंके पूज्य स्मरण के लिये किया जाता है और प्रायः संपूर्ण भारत वर्षमें किया जाता है। इसलिये इसकी प्राचीनतामें यत्किंचित भी संदेह नहीं।

यहां दूसरी बात यह है कि आजकल जो जातियां मांस खातीं हैं उन सबमें वर्षमें कुछ दिन निर्मांस भोजनके होते हैं और प्रायः सभी एक मतसे मानते हैं कि निरामिष भोजन उत्तम है। जगत् में चीनी लोग सर्वभक्षक होनेमें सुप्रसिद्ध हैं; परंतु उनमें भी मंदिरोंके पूजापाठी लोग निर्मांस भोजी होते हैं और हिंदुस्थान के निरामिष भोजियोंकी प्रशंसा मुक्तकंठसे वे करते हैं। यही प्रथा मुसलमान और ईसाइयों में भी है। जगत् का कोई ऐसा धर्म नहीं है जो निरामिष भोजन को बुरा मानता हो और जो व्रतके दिनों में भी निरामिष भोजन का उपदेश न करता हो।

अन्य धर्मोंकी बात छोड दें, ऊपर शतपथ ब्राह्मणने पूर्वोक्त स्थानमें उपवास के व्रतके समय वन्य कंदमूलफलही खानेको कहा है। हिंदुओंमें मांसभोजी हिंदु प्रायः श्रावणमास में मांस नहीं खाते, एकादशी आदि दिनोंमें नहीं खाते। परंतु इन दिनोंमें ऋषि अन्न खाते हैं, कई लोग हविष्यान्न खाते हैं। इस का तात्पर्य यह है कि भोजन में चावल गेहूं आदि आगये, मांस भी घुस गया, तो ऐसे समयमें अति प्राचीन कालका ऋषि भोजन पवित्र दिनों के लिये रखा गया है। इससे प्राचीन ऋषि भोजन सहज प्राप्त निरामिष वन्य फलभोज ही था इसका स्पष्ट पता लगता है।

इस समय तक जो आचार व्यवहार चला आया है उसका विचार करनेसे जो ऋषिभोजन का पता हमें चलता है वह यही है कि ऋषि निरामिष भोजी थे और अति प्राचीन वैदिक समयमें निरामिष भोजन ही प्रचलित था। देखिये-

१ अति प्राचीन ऋषि भोजन = कंद, मूल, फल और वन्य सहज उत्पन्न आरण्यक तृणधान।

२ उसके बाद का भोजन = गेहूं, चावल, उडद आदि धान्य, (इस द्वितीय समयमें प्राचीन वन्य भोजन व्रतके लिये ही रखा गया था।)

३ तीसरे समय का भोजन=इस समय पूर्वोक्त भोजनमें मांस घुस गया था, (तथापि अति प्राचीन काल के ऋष्यन्न की श्रेष्ठता सर्वमान्य होनेसे व्रतादिके पवित्र दिनोंमें द्वितीय और तृतीय समयके भोजन निषिद्ध माने गये।)

इससे यदि कुछ सिद्ध हो सकता है तो यही सिद्ध होता सकता है कि मांसभोजन उस समय शुरू हुआ जिस समय आर्य लोग पतन के मार्ग में झुक गये थे। प्राचीन ऋषि कालमें आर्य लोग निरामिष भोजी ही थे।

(७) उत्क्रांतिवाद।

यदि उत्क्रांति का वाद सत्य है और यदि मनुष्यका शरीर वानर के शरीरसे उत्क्रांत हुआ है, तो यह बात निःसंदेह माननी पडेगी कि मनुष्य प्रारंभिक अवस्थामें निरामिष भोजी हो था। क्यों कि बंदर फलभोजी ही हैं। वे वृक्षोंके फल, पत्ते आदि खाते हैं। इस लिये मनुष्य स्वभावतः मांसभोजी नहीं है। जब वह जीवन कल-हमें आता है और फलभोज असंभव हो जानेकी अवस्था प्राप्त होती है तब वह दूसरेको मारकर उसका मांस खाता है। इसलिये हम कैसे कह सकते हैं कि आदि वैदिक कालमें ऋषिलोग मांस और विशेषकर गोमांस खाते थे। यदि वैदिक समय मानव जातीका प्रथम अवसर है तो उस समय मानना पडेगा कि मनुष्य फल भोजी ही थे। जैसा कि हम देख आये हैं कि ऋषिपंचमी के व्रतका अन्न केवल कंदमूलफल ही है। वही ठीक प्रतीत होता है।

(८) सारस्वत ब्राह्मणोंकी गवाही।

आजकल ब्राह्मणोंमें सारस्वत नामके ब्राह्मण हैं। जिनके इति-हासमें लिखा है कि ये सरस्वती नदीके तीर पर रहते थे। अति प्राचीन समयमें बडा अकाल पडा और कई वर्ष बिलकुल वृष्टि नहीं हुई और कुछभी फलफूल, कंदमूल, धान्य आदि कुछभी मिलना असंभव हुआ। उस समय सरस्वती नदी के तटपर

रहनेवाले ब्राह्मणोंने नदीमें प्राप्त होनेवाली मछलियां खाकर जीव का धारण किया। बहुत दिन मछलियों के भोजनके स्वाद का अभ्यास होनेसे आगे सारस्वत ब्राह्मणों को वही जिह्वालौल्य का अभ्यास रखने की बुद्धि हो गई। इस से ब्राह्मणों में सारस्वत ब्राह्मणही मछली खाते हैं अन्य ब्राह्मण नहीं खाते। यदि यह सारस्वतों का इतिहास सत्य है तो मानना पडता है कि प्राचीन ऋषिकाल में येभी शाकाभोजी थे परंतु जीवनकलह में पड जानेके कारण इनको मांसभोजन स्वीकारना पडा। इससे हमारा पूर्व लिखा मतही पुष्ट हुआ कि वैदिक काल के आदि आर्य शाकाहारी ही थे, पश्चात् उनमेंसे कई जातियां बहुत समय व्यतीत होनेपर मांसभोजी बनी। इसी कारण इस समय में भी कई आर्य जातियां शुद्ध निरामिष भोजी हैं और कई आमिष भोजी हैं। थोडीसी ब्राह्मण जातियां सारस्वतों के समान अंशतः मांसाहारी हुई, कुछ क्षत्रिय जातियां युद्धादि कारणसे मांस खाने लगीं; परंतु बहुतसी ब्राह्मण जातियां और पूर्ण रीतिसे वैश्य जातियां इस समय तक निरामिष भोजी ही हैं। और सब जातियां शाकभोज को पवित्र भोजन मानती हैं।

इस रीतिसे सामान्यतया मांसभोजनका विचार करनेसे पता चलता है कि आदिकाल में अर्थात् वैदिक काल में रहनेवाले ऋषिलोग फलभोजी थे, उसके पश्चात् धान्यभोज शुरू हुआ; पश्चात् अकालादि तथा युद्धादि आपत्तियों के वारंवार आनेके कारण कई आर्य जातियां जो ऐसी आपत्तियों में फंसी, मांसाहारी बन गईं। अर्थात् वैदिक कालमें मांसभोजन की शिष्टसंमत प्रथा नहीं थी, फिर गोमांस भक्षण की प्रथा तो दूर की बात है।

(१) वेदका महासिद्धांत ।

वेद का महासिद्धांत संपूर्ण भूतों को मित्र दृष्टिसे देखना है, इस लिये हम कह सकते हैं कि जो संपूर्ण प्राणियोंको मित्रकी प्रेमदृष्टिसे देखते हैं वे अपने पेटके लिये उनका घात कैसा कर सकते हैं? मित्र की प्रेमदृष्टि तो अपना प्राण दूसरोंके लिये अर्पण करायेगी, कभी ऐसा नहीं हो सकता है कि जिसपर प्रेम करना है उसीको अपने पेटके लिये काटा जाय। देखिये वेद का महासिद्धांत-

(१) मित्रस्य मा चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षन्ताम् ।
(२) मित्रस्याहं चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षे ।
(३) मित्रस्य चक्षुषा समीक्षामहे ॥ वा. यजु. ३६ । १८
(४) मित्रस्य वञ्चक्षुषा समीक्षध्वम् ।
य. मैत्रायणी सं० ४।९।२७

"(१) मित्रकी दृष्टिसे मुझे सब प्राणि देखें,
(२) मैं मित्रकी दृष्टिसे सब प्राणियोंको देखता हूं,
(३) हम सब परस्पर मित्रकी दृष्टीसे देखेंगे,
(४) मित्रकी समान दृष्टिसे सब को देखो।"

यह वेदाज्ञा है। यहां केवल मनुष्योंको ही मित्र दृष्टीसे देखने का उपदेश नहीं है प्रत्युत संपूर्ण प्राणिमात्रको मित्र दृष्टीसे देखनेका उपदेश है। तो क्या अपने मित्र कोही अपने पेटके लिये मारना है? यदि मारना है तो मित्र दृष्टी किस काम की? अर्थात् इस वैदिक महासिद्धांत को माननेवाले वैदिक लोग सबभूतों अथवा सब प्राणियोंको मित्र दृष्टिसे देखेंगे और उनको काटकर खानेकी बात को स्वीकारेंगे नहीं। इसलिये मानना पडेगा कि किसी बाह्य कारणसे आर्यवंशजोंमें मांसभोजन घुसा है। आर्योंका स्वाभाविक अन्न शाकाहार ही है।

१० यज्ञकी ग्वाही।

यज्ञमें मांस प्रयोग होना चाहिये या नहीं यह बात भिन्न है। हमारा मत है कि यज्ञ निर्मांस ही होते थे, परंतु कुछ समय के लिये प्रचलित समांस यज्ञों का ही विचार किया जाय तो पता लगेगा कि आज कलकी यज्ञकी वेदी के दो भेद हैं—

१ पूर्व वेदी और
२ उत्तर वेदी,

पूर्व वेदी में कई वेदियां हैं जिनमें केवल धान्यका ही हवन होता है और कभी मांस का संबंध नहीं आता। केवल इस "उत्तर वेदी" में मांसका हवन होता है। यदि ये वेदी शब्द के विशेषण रूप "पूर्व और उत्तर" ये दो शब्द "पूर्वकाल और उत्तर काल" के वाचक मान लिये जांय, तो स्पष्ट सिद्ध होता है कि पूर्व (कालकी) वेदी में केवल धान्यहवन ही किया जाता था, और उत्तर (कालकी) वेदी में आगे मांस हवन होने लगा।

जिसमें आजकल मांसका हवन किया जाता है उस वेदीका नाम "उत्तर वेदी" ही है। उत्तर वेदी का अर्थ स्पष्ट रूपसे यही है कि "उत्तर समय में प्रचलित हुई वेदी" अर्थात् पूर्वकालमें यज्ञमें यह वेदी ही नहीं थी। जो वेदियां पूर्व कालमें थी वह "पूर्व वेदीयां" इस समयमें भी हैं। पूर्ववेदियोंमें शुद्ध धान्यका ही हवन होता है और उत्तर वेदीपर मांसका हवन होता है। इतनाही नहीं परंतु पहिले वेदियोंका धान्यहवन पूर्णता से समाप्त करनेके पश्चात् ही इस मांसवेदीके कार्य को प्रारंभ होता है। यज्ञ के पहिले दोचार दिनों में कभी मांस हवन नहीं होता, केवल धान्य हवन होता है, यज्ञके पश्चात के दिनों में उत्तर वेदीमें हो मांसहवन करते हैं।

इससे स्पष्ट सिद्ध होता है कि अति प्राचीन कालका यज्ञ पूर्व वेदियोंसे बताया जाता है जिसमें धान्य हवन ही है। और पश्चात् के समयका हवन उत्तरवेदीके मांस हवनसे बताया जाता है। यदि ब्राह्मण ग्रंथोंके समय ये समांस यज्ञ प्रचलित थे, ऐसा किसी का मानना हो, तो उसको यह बात अवश्य माननी पडेगी कि इससे पूर्वकाल में वह प्रथा न थी और उस समय निर्मांस यज्ञ ही प्रचलित थे।

पाठक ऋषिपंचमी के दिनका पूर्वोक्त भोजन और इस यज्ञ के पूर्व (समय में प्रचलित)वेदीपर होनेवाला धान्यहवन इन दोनों बातोंकी संगति लगा कर देखें, तो उनको वैदिक कालमें निर्मांस भोजन होनेका निःसंदेह निश्चय हो जायगा।

११ मधुपर्क ।

कइयों का कथन है कि मधुपर्क विधि वैदिक है और उसमें "मांस"आवश्यक है। परंतु ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेदमें "मधुपर्क" शब्द ही नहीं है, ब्राह्मणों और उपनिषदों में भी यह शब्द नहीं है। केवल अथर्ववेद संहितामें एकवार मधुपर्क शब्द आगया है। वह मंत्र यह है—

यथा यशः सोमपीथे मधुपर्के यथा यशः ।

अथर्व. १०।३।२१

" जैसा यश सोमपानमें और जैसा मधुपर्कमें है वैसा मुझे प्राप्त हो। " वेदकी चारों संहिताओंमें मधुपर्क विषयक इतनाही उल्लेख है, इसलिये मधुपर्क में वैदिक रीतिसे क्या होना चाहिये और क्या नहीं इसका पता नहीं लग सकता। परंतु इतना सत्य है कि मधुपर्क में मांस अवश्य है ऐसा जिनका पक्ष होगा उनके मतकी

सिद्धि वैदिक मंत्रोंसे नहीं हो सकती। ब्राह्मण और उपनिषद् ग्रंथोंतक किसी भी ग्रंथमें मधुपर्कका इससे अधिक उल्लेख नहीं है। अतः "वेदके मधुपर्क में मांसकी आवश्यकता है" यह बात वैदिक प्रमाणोंसे सिद्ध होना असंभव है।

यद्यपि वेदोंमें अन्यत्र मधुपर्क शब्दही नहीं है तथापि "मधुपेय" शब्द है, यह भी इसके समानार्थक माना जा सकता है। यह एक उत्तम मधुर अर्थात् "मीठा पेय" है ऐसा निम्नलिखित मंत्र से प्रतीत होता है-

वृषाऽसि देवो वृषभः पृथिव्या वृषा सिंधूनां वृषभस्तियानाम्।
वृष्णे त इन्दुर्वृषभ पीपाय स्वादू रसो मधुपेयो वराय॥

ऋग्वेद ६।४४।२१

इस मंत्रके अंतिम भागमें "स्वादू रसो मधुपेयः" ऐसे शब्द हैं इनका अर्थ "मीठा रस मधुपेय" है। परंतु यह कोई स्वतंत्र पेय नहीं है, यह सोमरस ही है जिसका सूचक "इन्दु" शब्द इसी मंत्र में है। इस मंत्रमें "वृषा, वृषभ" ये बैलवाचक शब्द हैं। इनके देखनेसे कईयोंने मधुपेयमें बैलके मांसकी कल्पना की होगी। परंतु यह मंत्र 'इंद्र' देवता की प्रशंसापर है और इसका शब्दार्थ 'हे इन्द्र देव! तू पृथिवी, द्युलोक, नदियां, स्थावर जंगम पदार्थ आदिको बल देनेवाला है, इसलिये इस मधुपानके समय यहां आओ" यह है। यद्यपि आंग्रेजी भाषांतर में मि. ग्रिफिथने "Thou art the Bull of earth, the Bull of heavan" ऐसे शब्द लिखे हैं तथापि यहांका तात्पर्य बैल नहीं है परंतु "शक्ति देनेवाला" है यह अंग्रेजी शब्दोंके बीचका भाव समझनेवालों को पुनः कहनेकी आवश्यकता नहीं है। यदि कोई मनुष्य इस मंत्रमें "वृषा और मधुपेय" ये दो शब्द आगये हैं, इसलिये मधुपेय में बैलके मांस की आवश्यकता है।" ऐसा कहेगा तो वह कथन

ऐसा है कि उसकी उपेक्षा ही की जाय। क्यों कि जो बात मंत्रमें नहीं है वह मंत्रके सिरपर मढ देना कोई विद्याकी बात नहीं हो सकती।

इतने विवरणसे यह बात सिद्ध हुई कि वेदोंमें मधुपर्क शब्द केवल एक वार अथर्व वेद में आया है और उस मंत्रसे मधुपर्क में मांस की आवश्यकता सिद्ध नहीं होती। मधुपेयमें भी मांसकी आवश्यकता नहीं है क्यों कि मधुपेय यह सोमवल्लीके रससे बनाया हुआ मधुर पेय ही है। और उसमें गायका, बैलका या किसी अन्य जानवर का मांस डालनेका विधान किसी स्थानपर भी नहीं है। यज्ञोंमें जो सोमरस आजकल तयार करते हैं उसमें भी मांस या मांसरस या रक्त कभी नहीं डाला जाता। इससे सिद्ध है कि " मधुपेय " में मांसकी आवश्यकता नहीं। तथापि क्षणभर हम " दुर्जन-तोष-न्याय " से मधुपर्क में मांस होनेकी संभावना मानकर क्या आपत्ति आती है यह पाठकों के सन्मुख रख देते हैं-

(१२) अतिथिसत्कारमें मधुपर्क।

प्रायः जहां कहां आधुनिक ग्रंथों में मधुपर्कका उल्लेख है वह अतिथिसत्कार के प्रसंगमें आया है। घरके दैनंदिनीय खाद्यपेय में किसीने मधुपर्क किया, दिया या खाया ऐसा प्रसंग किसी भी ग्रंथ में नहीं है।

" कोई ऋषि महर्षि किसी राजा के घर आया, द्वारमें ही राजाने उसका आतिथ्य किया, आसनपर बिठलाया, पूजा की, पूजाके बीचमें मधुपर्क के लिये गाय लायी गई, मधुपर्क किया और पूजा समाप्त करके कुशल प्रश्न पूछे। प्रश्नोत्तर होते ही ऋषि वापस चले गये। "

" दूसरा प्रसंग विवाह के समय होता है, वर विवाह मंटपमें आता है, उसकी पूजा की जाती है और उस समय मधुपर्क दिया जाता है। " यदि यह प्रथा ठीक है तो इसमें मांस भोजन के लिये स्थान ही नहीं है, क्यों कि इस में जो विधि होते हैं, वे इस प्रकार हैं—

१ अतिथि (या वर का) द्वारपर आना,
२ यजमान (राजा या वरके श्वशुर) का द्वार पर जाना और द्वार पर सत्कार करना,
३ सत्कार के पश्चात् उसका अंदर प्रवेश,
४ आसनपर बिठलाना,
५ पांव धोना, चंदन, इतर, तथा पुष्पमाला आदिका समर्पण करना,
६ गौ लाकर उसका समर्पण करना,
७ मधुपर्क देना, उसने मधुपर्क खाना और हाथ मुख आदि धोना, पश्चात्—
८ पूजा समाप्त करके कुशल प्रश्नादि करना या आगे का जो कार्य हो वह प्रारंभ करना।

पाठक क्षणभरके लिये मानलें की यहां गोवध करके उसके मांसके साथ मधुपर्क देना अभोष्ट हो तो पशुके देहसे मांस निकाल कर उसको पकाकर खाने योग्य बनाने के लिये आधे या पौने घंटेकी अवधि की कम से कम आवश्यकता होगी, घरमें पहिले बनाया हुआ तो अर्पण करना नहीं है, इस लिये कमसे कम आध घंटेका समय इस विधिमें नहीं है, क्यों कि यह सब विधि एक दूसरेके पीछे ही करने की है, इस कारण मानना पडता है कि दो चार मिनटों में गौ से मधुपर्क बनानेकी कोई विधि अवश्य होगी।

आतिथ्यपूजा में गौ समर्पण आवश्यक है इसमें संदेह नहीं, परंतु वह काटकर खानेके लिये नहीं है, प्रत्युत ताजा ताजा दूध दुह कर उस अतिथिको देनेके लिये ही है। यदि पाठक पूर्वोक्त मधुपर्क विधिका विचार करेंगे तो उनको पता लग जायगा कि पूजामें ही गौ लाकर उसका दूध निकाल कर गर्म गर्म ही अतिथिको पिलाना पांच मिनिटों में भी संभवनीय है। वैदिक काल में " वशा गौ " प्रसिद्ध थीं। ये गौवें दिनमें जितनीवार चाहे दूध देती थीं, और जो चाहे उनका दूध निकाल सकता था। इसीलिये इनको " माता " कहा जाता था। जिस प्रकार बच्चा माताके पास जाता है, उसी प्रकार लोग "वशा गौ" के पास जाते थे। यहां यह वैदिक समय की रीति ध्यानसे देखनी चाहिये।

अब मधुपर्कके विषयमें देखिये पूजाके बीचमें गौ लाई जाती है, वहां का वहां उससे दूध निकाला जाता है। गर्म गर्म अतिथिके सन्मुख प्रेमसे रखा जाता है, साथ साथ दही, घी, मधु, मिश्री ये चार पदार्थ भी दिये जाते हैं- मधुपर्क के लिये इन पांच पदार्थों की आवश्यकता है दूध, दही, घी, मधु (शहद), मिश्री इन पांच पदार्थोंका मिलकर नाम मधुपर्क है। दही-घी-मधु-मिश्री ये चार पदार्थ गृहस्थीके घरमें सदा रहते ही हैं, (आजकल के बीसवी सदीके यूरोपीय सभ्यतासे रंगे हुए, घरमें चा रखनेवाले पाठक क्षमा करें, उनके घरोंमें येही चीजें दुष्प्राप्य होंगी यह हमें पता है) वैदिक कालमें उक्तपदार्थ गृहस्थीके घरमें सदा रहते ही थे। अतिथि आतेही ताजा दूध दोहकर साथ उसके उक्त पदार्थ एक कटोरीमें-सुवर्ण की कटोरी में-मिला कर रखे जाते थे। अतिथि सुवर्ण चमस से या अपनी अंगुलियों से उक्त मधुपर्क खाता था और उसपर ताजा दूध पीता था। आजकल इस वैदिक मधुपर्क के

स्थानपर चा आ बैठा है वह भारतियोंको दूध पीनेकी आज्ञा देता नहीं है !!! अस्तु ।

दधिसर्पिः पयःक्षौद्रं सिता चैतैश्च पंचभिः प्रोच्यते मधुपर्कः।

" दही, घी, दूध, मध (शहद), मिश्री इन पांचों का मधुपर्क होता है । " दूध के स्थानपर दूधके अभावमें पानी भी आजकल बर्ता जाता है ! पाठक विचार करें कि ऐसे पवित्र मधुपर्क में मांस की संभावना कैसी हो सकती है ।

(१३) और आपत्ति ।

हमें स्वयं इस बात का पूरा पता नहीं है क्यों कि हमारे घराने में किसीने भी कभी मांसका स्वाद लिया नहीं है, केवल शाक भोज ही हम करते हैं। तथापि हमने अपने मांसाहारी परिचितोंसे मालूम किया जिससे हमें पता लगा कि मांसका कोई पदार्थ मधु (शहद) या मिश्रीसे बनता नहीं । जो भी पदार्थ मांससे बनते हैं सबके सब नमकीन तथा मिरच वाले बनते हैं । यदि यह सत्य बात है तो मधुपर्क मांसके साथ कैसे बन सकता है? क्यों कि यह " मधु-पर्क " है अर्थात् "(मधु) शहदसे (पर्क) मिश्रित मीठा खाद्य है। " शहद या मिश्रीसे मिश्रित करके मांसका कोई पदार्थ बनता नहीं है, मांसका मिश्रण नमकीन मिरच मसालों के साथ बनता है ।

पाठक विचार कर सकते हैं और निश्चय कर सकते हैं कि मधुर मीठा पेय-जिसमें मधु और मिश्री मिलाई हो-मांससे बन सकते हैं वा नहीं । इस विषयमें यह हमारा कथन भी यदि असत्य सिद्ध हुआ तथापि हमारी कोई हानि नहीं है, क्यों कि मधुपर्कमें गोमांस या साधारण मांसका होना वेद मंत्रोंसे सिद्ध नहीं होता, यह हमने इससे पूर्व बताया ही है। इस लिये यह बात सिद्ध होने या न

होने पर हमारे सिद्धांतकी स्थिति या अस्थिति निर्भर नहीं है। परंतु इस बातका बोझ उनपर है कि जो कहते हैंकि मधुपर्कमें मांस आवश्यक है। अपना मत वेद मंत्रोंसे सिद्ध करें अन्यथा निर्मांस मधुपर्क वैदिक समयमें होनेका स्वीकार करें।

कइयोंका कथन है कि चूं कि उत्तर रामचरित नाटकमें आतिथ्य सत्कारमें वसिष्ठके गोमांस खानेका उल्लेख है इसलिये आतिथ्य के समय किये जानेवाले मधुपर्कमें गोमांस अवश्य पडता था। उत्तरराम चरित्रका उल्लेख हम भी जानते हैं.उत्तररामचरित नाटकका काल अति आधुनिक है, उस समयके नाटक लेखकोंका ख्याल होगा कि मधुपर्कमें गोमांस आवश्यक है, परंतु क्या नाटकके उल्लेख केलिये वैदिक समय को जिम्मे वार लिया जा सकता है ? नाटक का काल और वैदिक समयमें कितना बडा अंतर है? क्या यह अंतर कभी भूला जा सकता है ? और नाटक की बातें वेदपर मढनेका प्रयत्न यदि विद्वान लोग करने लगे तो वैसा और दूसरा अनर्थ कौनसा हो सकता है । ऐसे भयंकर अनुमान करने वालोंसे वेदकी रक्षा परमात्माही करे। हमारे ख्यालमें यहां बडा भारी कालविपर्ययदोष (anachronism) है और बडे विद्वानों को ऐसे दोषयुक्त मत प्रकाशित करनेसे पूर्व बडा विचार करना चाहिये। सारांश यह है कि नाटक का वचन वैदिक पद्धतिके सिद्ध करने के लिये प्रमाण मानना अशक्य है।

नाऽमांसो मधुपर्को भवति ।

ऐसे सूत्रग्रंथोंके वचन भी तत्कालीन आचारपद्धतिके द्योतक हैं। जिस समय ये सूत्रग्रंथ लिखे गये और ये नाटक रचे गये उस समय मांसका प्रचार होनेसे, या उससे पूर्व कालमें मांसका प्रयोग होनेसे, इन ग्रंथोंमें ऐसे वचन आते हैं। इन वचनोंसे अधिक से अधिक यह सिद्ध हो सकता है कि इन ग्रंथोंके समय या इन

के पूर्व कालमें इस प्रकार की प्रथा थी; परंतु इससे यह कदापि सिद्ध नहीं होगा कि अति अति प्राचीन वैदिक कालमें भी मांसमय मधुपर्क की प्रथा थी अथवा गोमांस भक्षण भी प्रचलित था। यह बात सिद्ध करनेके लिये वेदके छंदोबद्ध मंत्रभागसे ही प्रमाण वचन मिलने चाहिये। किसी दूसरे प्रकारसे यह बात कभी सिद्ध नहीं हो सकती।

(१४) कलिवर्ज्य प्रकरण ।

इनका कथन है कि "कलिवर्ज्य प्रकरण" में "अश्वमेध, गोमेध" आदिका निषेध किया है इसलिये इस निषेध के पूर्व अश्वमेध और गोमेध होता था। और अश्वमेधमें घोडे का मांस और गोमेधमें गायका मांस खाया जाता था।

यहां प्रश्न होता है कि यह कलिवर्ज्य प्रकरण किसने लिखा? और किस ग्रंथ में लिखा है? क्या माननीय प्रमाण ग्रंथमें इस वचन का अस्तित्त्व है? जो माननीय प्रमाणभूत स्मृतिग्रंथ हैं उनमें यह वचन नहीं है, इसलिये ऐसे कपोलकल्पित प्रकरणसे कोई विशेष प्रबल अनुमान नहीं हो सकता है।

दूसरी बात यह है कि इस कलिवर्ज्य प्रकरण का समय निश्चित हो जानेसे सब बात स्पष्ट हो जाती है। हमारे विचार से कलिवर्ज्य प्रकरण सात आठसौ वर्ष के अंदर अंदर का है। इसलिये इसके बलसे उसके पूर्वके संपूर्ण भूतकालका नियमन नहीं हो सकता है। यहां भी पूर्वकथित कालविपर्यय दोष आसकता है।

इसके अतिरिक्त यदि माना भी जाय कि कलिवर्ज्य प्रकरण में अश्वमेध और गोमेध का निषेध है, इससे अश्वमेध या गोमेध की वैदिक रीतिका पता नहीं लग सकता है। इससे इतना ही

सिद्ध हो सकता है कि इस कलिवर्ज्य प्रकरण के लिखे जानेके पूर्व ये यज्ञ प्रचलित थे ।

हमने इसी लेख के पूर्व भाग में यज्ञकी गवाही देते हुए बताया ही है कि यज्ञोंमें वेदमंत्रों के समय के यज्ञोंकी अपेक्षा ब्राह्मण और सूत्रग्रंथोंके यज्ञोंमें बहुत घटवध हुआ है। जो बातें मंत्रसंहिताओंके यज्ञोंमें न थी वह बातें उन में आके घुस गई हैं, यह कारण है कि पूर्व वेदी के हवनमें मांस नहीं बर्ता जाता और उत्तर वेदीके हवनमें अर्थात् पीछे घुसे हुए यज्ञ कर्ममें मांस का हवन किया जाता है। यह आज कल की या यज्ञप्रयोग के पुस्तक जिस समय लिखे गये उस समयकी प्रथा है । वैदिक प्रथा तो वह ही है कि जो छंदोबद्ध मंत्र भागमें बताई है। इसलिये हम यहां प्रश्न पूछते हैं कि कौनसे वेदमंत्र से यह बात सिद्ध होती है की वैदिक गोमेध में गौकी हिंसा की जाती थी ? यदि वेदका एकभी मंत्र हो तो उसे सामने करें । प्रमाण के विना माननेके दिन अब गुजर चुके हैं। हमें पता है कि बहुतसे विद्वान इस समय मानते हैं कि गोमेध में गौकी हिंसा की जाती थी। परंतु यहां विद्वान मानते हैं, या अविद्वान मानते हैं, यह प्रश्न नहीं है। वेद मंत्रों में किस बातको प्रमाण वचन मिलते हैं और किस बात को प्रमाण वचन नहीं मिलते, यही प्रश्न यहां है और इसीका विचार हमें करना है ।

(१५) बृहदारण्यक का वचन ।

बृहदारण्यक में सुप्रजा जनन के प्रकरण में निम्नलिखित वचन है, कहा जाता है कि इसमें बैल या गौके मांस खानेका उल्लेख है । हम पाठकों के विचारार्थ वह वचन यहां धर देते हैं—

अथ य इच्छेत्पुत्रो मे पण्डितो विगीतः समितिंगमः शुश्रूषितां वाचं भाषिता जायेत सर्वान्वेदाननु ब्रुवीत सर्वमायुरीयादिती माँसौदनं पाचयित्वा सर्पिष्मन्तमश्नीयातामीश्वरौ जनयितवा औक्षेण वार्षभेण वा ॥ श-ब्रा १४।७।५।१८; बृ-उ. ६।४।१८

" जिसकी इच्छा हो कि अपना पुत्र बडा पंडित, सभामें जाने वाला, बडा उत्तम वक्ता, सब वेदोंका प्रवचन करनेवाला पूर्णायु हो, तो वह मांसचावल पकाकर घी के साथ खावें, उक्षा के वा ऋषभ के मांस के साथ पकावें ॥ "

यहां " मांसौदन " शब्द है और इसके अंतमें, उक्षा और ऋषभ " ये बैलवाचक शब्द भी हैं। इससे ये लोग अनुमान करते हैं कि गाय या बैलके मांस खाने वाले को चार वेदोंका वक्ता पुत्र उत्पन्न हो सकता है।

यदि यह बात सत्य होती तो सब युरोप में वेदवेत्ता ही लोग निर्माण होते। परंतु वैसा दिखाई नहीं देता; इसलिये इस के अर्थ का विचार करना चाहिये। अर्थका विचार प्रकरणसे ही हो सकता है, इस लिये यह प्रकरण देखिये--

य इच्छेत्पुत्रो मे शुक्लो जायेत वेदमनुब्रुवीत सर्वमायुरियादिति क्षीरौदनं पाचयित्वा सर्पिष्मन्तमश्नीयाताम्० ॥ १४ ॥ य इच्छेत्पुत्रो मे कपिलः पिंगलो जायेत द्वौ वेदावनुब्रुवीत सर्वमायुरियादिति दध्यौदनं पाचयित्वा सर्पिष्मन्तमश्नीयाताम्० ॥१५॥ अथ य इच्छेत्पुत्रो मे श्यामो लोहिताक्षो जायेत त्रीन्वेदाननुब्रुवीत सर्वमायुरियादित्युदौदनं पाचयित्वा सर्पिष्मन्तमश्नीयाताम्० ॥ १६ ॥ अथ य इच्छेद् दुहिता मे पण्डिता जायेत सर्वमायुरियादिति तिलौदनं पाचयित्वा सर्पिष्मन्तमश्नीयाताम्० ॥ १७ ॥

श ब्रा. १४।७।५।१४-१७; बृ- उ. ६।४।१४-१७

इसका अर्थ यह है-(१) गौर वर्ण पूर्णायु एकवेद जाननेवाले पुत्र की इच्छा हो तो दूध चावल पका कर घी के साथ खावें० ॥ (२) भूरे वर्ण वाले दो वेदोंके जाननेवाले पूर्णायु पुत्र की इच्छा हो तो दही चावल पका कर घी के साथ खावें० ॥ (३) काले वर्ण वाले, लाल नेत्रवाले तीन वेद जानने वाले पुत्र की इच्छा हो तो पानी में पतले चावल पका कर घी के साथ खावें॥ (४) पुत्री पंडिता और पूर्ण आयुवाली होने की इच्छा हो तो तिल चावलोंकी खिचडी बना कर घीके साथ खावें ॥

इसके बाद का वचन वह है जिसमें मांसका उल्लेख है, "यदि चार वेद जाननेवाला, पंडित, वक्ता, दीर्घायु पुत्र होनेकी इच्छा हो तो मांसचावल पकाकर घी के साथ खावें. मांस बैलका हो।" अस्तु। इसका फलित यह है—

एकवेद के ज्ञानी पुत्रके लिये दूधचावल घीसे खावें
दो „ „ „ दही „ „
तीन „ „ „ पानी „ „
पंडिता पुत्री के लिये तिल चावल „
चार वेद ज्ञानी पुत्र के लिये गो मांस चावल„

एक वेदके लिये दूध चावल बस हैं, दो वेदों के लिये दही चावल पर्याप्त हैं, तीन वेदोंके लिये पतले चावल पानीमें पके बस हैं, फिर चार वेदों के लिये एकदम "गोमांस में पके चावल" क्यों आवश्यक हैं ?

यदि बलिष्ठ भोजन की सीढी यहां अभीष्ट होती तो भेड बकरी आदि पशुओंका उल्लेख इस से पूर्व आना आवश्यक था। वह नहीं है इस लिये यहां कुछ पूर्व के अनुकूल ही शाकाहारका पदार्थ आवश्यक है ऐसा स्पष्ट पता लगता है। यदि भेड बकरी कमसे कम तीसरे स्थानपर गिनी होती तो मांसवालों का पक्ष अटूट

होता; परंतु यहां पूर्वापर संबंध शाकाहार का प्रतीत होता है और चौथी सीढीपर एकदम गोमांसपर लेखक कूदपडा है। जहां ब्राह्मणग्रंथों में यज्ञीय पशुओंका उल्लेख है वहां मनुष्य, घोडा,गाय, बकरी, भेड यह क्रम है, भेड बकरी के बाद यज्ञिय पदार्थ धान्य गिना है। इसी क्रमसे यदि इस बृहदारण्यक वचनमें क्रम होता तो शाकभोजी लोगोंका मुंह बंद हो जाता। परंतु यहां तीन वेद तक शाकाहार पर्याप्त माना है और चतुर्थ वेदके लिये एकदम गोमांस आवश्यक माना है, यह बहुत दूर की छलांग है।

जो युरोप के लोग प्रत्येक वेदके " उत्पत्ति का समय" अलग अलग मानते हैं उनके लिये यहां एक बडी ही आपत्ति आ जाती है। एक,दो और तीन वेद का तात्पर्य यदि हम ऋग्वेद, ऋग्यजुर्वेद और ऋग्यजुःसामवेद लें,तो इन तीन वेदोंके ज्ञानके लिये मांस की कोई आवश्यकता नहीं, और केवल चतुर्थ वेद अर्थात् अथर्ववेद के लिये ही गोमांसकी आवश्यकता उक्त वाक्य में बताई है। युरोपीयनोंके मतसे ऋग्वेद सबसे पुराना और अथर्व सबसे नवीन है। अर्थात् उनकी ही युक्तिसे वेदत्रयी के लिये दूध चावल या दही चावल बस हैं और नवीन अथर्व वेदके लिये गोमांस आया है। इस से यदि कोई कहे कि वैदिक कालमें भी प्राचीन अर्वाचीन भेद किया जाय, तो प्राचीन वैदिक समयमें मांस न था अर्वाचीन समय में मांस प्रचलित हुआ। युरोपीयनोंकी युक्तियां इस प्रकार उनके ही विरुद्ध होती हैं। हम तो मानते ही हैं कि किसी भी वैदिक कालमें मांस भोजन की प्रथा शिष्ट संमत नहीं थी। परंतु यहां युरोपीयनोंकी मानी हुई बातें मानकर ही उक्त शतपथ के वचन का आशय देखा जाय, तो वह उनके मत के विरुद्ध जाता है और आदि वैदिक काल में मांसभोजन नहीं था यह सिद्ध होता है। परंतु इस विषयको बढाने की हमें आवश्यकता नहीं है; क्यों कि

हमें पूर्वापर संबंधसे गोमांसकी आवश्यकता यहां है वा नहीं, यही देखना है। प्रसंग देखनेसे पता लगता है कि यहां मांस की आवश्यकता नहीं है, इसका हेतु यह है—

पूर्वोक्त बृहदारण्यक उपनिषद् के वचन में " औक्षेण वार्षभेण वा " ऐसा अंतिम वचन है। इस वचन में " उक्षा और ऋषभ " ये दो शब्द हैं। संस्कृत में इन दोनों शब्दों का एक ही " बैल " ऐसा अर्थ है। यदि दोनों शब्दोंका एक ही अर्थ है तो बीचके "वा" शब्दकी आवश्यकता क्या है ? उपनिषत्कारको " उक्षा " शब्दसे भिन्न पदार्थ बताना है और " ऋषभ " शब्द से भिन्न पदार्थ बताना है। यह भिन्नता वैद्यशास्त्रग्रंथ देखनेसे स्पष्ट हो जाती है—

१ उक्षा = सोम औषधि
२ ऋषभ = ऋषभक "

ये वैद्यक के अर्थ लेने पर ही यहां के " वा " शब्दकी ठीक संगति लग सकती है।ये दोनों औषधियां बलवर्धक, वीर्यउत्पादक और प्रजानिर्माण शक्ति की वृद्धि करनेवाली हैं, वाजीकरण की औषधियों में इनका प्रमुख स्थान है। ऋषभक का वर्णन यह है-

जीवकर्षभकौ ज्ञेयौ हिमाद्रिशिखरोद्भवौ ।
जीवकः कूर्चकाकारः ऋषभो वृषशृंगवत् ।
जीवकर्षभकौ बल्यौ शीतौ शुक्रकफप्रदौ ।　　भाव प्र० १

" हिमालयपर ऋषभक वनस्पति होती है। यह बैल के सींगके समान आकारवाली होती है, यह बल बढानेवाली और वीर्य बढानेवाली है।" जितने बैल वाचक शब्द हैं उतने सब इस वनस्पतिके वाचक हैं। उक्षा का अर्थ सोम है यह बात हरएक कोशमें प्रसिद्ध है। ये दो वनस्पतियां परस्पर भिन्न हैं, वीर्यवर्धक हैं, वाजीकरण प्रयोग में प्रयुक्त होती हैं, इनका स्वतंत्र प्रयोग भी वाजीकरण में किया जाता है।

अब पाठक यहां देखें की तीन वेदों के जानकार पुत्र पैदा करने के लिये, दूधचावल, दहीचावल, पत लेचावल और घीखानेको कहा, और चार वेद जाननेवाला सभामें विजयी पुत्र पैदा करनेके लिये ऋषभक औषधीके स्वरस के अथवा सोम औषधिके स्वरस के साथ चावल पका कर घीके साथ खानेका उपदेश किया, यह अर्थ प्रकरण के साथ सजता है और मांस में इतनी बडी छलांग मारनेका दोषभी नहीं आता।

मांस शब्द संस्कृत में जिस प्रकार शरीरके मांस का वाचक है, उसी प्रकार फलों के गूदे का वाचक और वनस्पतियोंके घन स्वरस का भी वाचक प्रसिद्ध है। श्री. म. आपटे के कोशमें (The Fleshy part of a fruit) अर्थात् फलका गूदा यह मांस शब्दका अर्थ दिया है। यह अर्थ सब कोशकारों को संमत है। ऋषभक वनस्पति वाजीकरण की औषधि है और वीर्यवर्धक भी है, इसलिये पुत्रोत्पत्ति प्रकरण के साथ यह अर्थ विशेष ही संगत होता है। जिस प्रकार इन औषधियोंका प्रयोग वाजीकरण वीर्यवर्धन आदिमें होता है उस प्रकार मांस या गोमांस का प्रयोग होने की बात आर्यवैद्यक में तो नहीं है।

इसके अतिरिक्त बृहदारण्यक उपनिषद् अध्यात्म विद्या का ग्रंथ है, इस ग्रंथ द्वारा सर्वात्मभाव, सर्व भूतमें समदृष्टि, सर्वत्र आत्मवद्भाव होने के पश्चात् वह आत्मज्ञानी पुरुष सुप्रजानिर्माण के लिये गौको काटकर उसका मांस स्वयं खायेगा यह असंभव बात है। अध्यात्म ज्ञान होनेके पश्चात् सुप्रजानिर्माण करना तो वैदिकतत्त्वज्ञान की दृष्टिसे अत्यंत महत्त्व की बात है, जन्मसे सुसंस्कारसंपन्न संतान उत्पन्न करनेकी यही रीति है। इसलिये मांसभक्षण जैसे क्रूर व्यवहारकी संभावनाही अध्यात्मज्ञानीके विषय में असंभव प्रतीत होती है। अतः पूर्व स्थल में बताया

हुआ वनस्पति विषयक अर्थ ही यहां लेना युक्तियुक्त है ऐसा हमारा विचार है।

यदि वेदमें गोमांस खानेकी आज्ञा होती तो और बात बन जाती। परंतु वेदमें गौ को इतना पवित्र माना है कि उसको अवध्य ही समझा है। इसलिये गोमांस भक्षण की कल्पना ही वैदिक सिद्धांत के प्रतिकूल सिद्ध हो जाती है। इसलिये इस उपनिषद्वचन का वैदिक धर्मके अनुकूल अर्थ करना हो तो वनस्पति विषयक ही अर्थ करना चाहिये, अन्यथा वह विरुद्धार्थ बन जायगा।

(१६) गोमेध का विचार।

बहुत से लोगोंका यह ख्याल है कि वैदिक समय के गोमेध में गायकी हिंसा अवश्य होती थी। कलियुगमें गोमेध करने का कलिवर्ज्य प्रकरणमें कहा प्रतिबंध इसकी सिद्धता के लिये बताते हैं। परंतु ये लोग एक बात बिलकुल भूल जाते हैं कि पार्सी लोगों के जेंदावेस्ता नामक धर्म पुस्तक में जो "गोमेज यज्ञ" वैदिक गोमेध के सदश है, उसमें गौ की हिंसा बिलकुल नहीं और उनके सोम याग में भी हिंसा नहीं होती, केवल सोमवल्ली के रसका उपयोग किया जाता है। युरोपीयन लोग तुलनात्मक विचार करते हैं, परंतु जिस समय तुलनात्मक विचारसे अहिंसा सिद्ध होती है उस समय उस विचार को वे छोड देते हैं। यदि पार्सियोंका गोमेज गो वध के विना बन सकता है तो वैदिक आर्योंका गोमेध क्यों नहीं बन सकता?

"मेध" केलिये किसीका घातपात करनेकी आवश्यता बिलकुल नहीं है, उदाहरण के लिये हम "गृहमेध, पितृमेध" शब्द

पेश कर सकते हैं। पितृमेधमें जैसा पिताका सत्कार अभीष्ट है और पिताके मांसके हवन की आवश्यकता नहीं होती; गृह-मेधमें जिस प्रकार घरके आरोग्यरक्षण की बातों का विचार प्रधान होता है, उसीप्रकार " गोमेध " में गौका सत्कार करना और उसके आरोग्यादिका विचार होना स्वाभाविक ही है।मनुभी कहते हैं--

अध्यापनं ब्रह्मयज्ञः पितयज्ञस्तु तर्पणम्।
होमो दैवो बलिर्भौतो नृयज्ञोऽतिथिपूजनम्।

मनुस्मृति ३। ७०

" विद्या पढाना ब्रह्मयज्ञ है, मातापिताओंको संतुष्ट रखना पितृमेध है, होमहवन देव यज्ञ है, कृमि कीटकों के लिये अन्नका समर्पण करना भूतयज्ञ है और नरमेध अतिथिसत्कार है।

पतृमेध, गृहमेध ये शब्द सर्वत्र प्रसिद्ध हैं । इसी प्रकार नरमेध, अश्वमेध और गोमेध हैं इतनी प्रसिद्ध बात होनेपर भी म० वैद्य जैसे विद्वान लोग मानते हैं कि गोमेधमें गायका बलि दिया जाता था। इसलिये इस बातका विचार विस्तारसे करना चाहिये—

(१७) यज्ञवाचक नाम।

यज्ञवाचक नामों में " अध्वर " शब्द है इसका अर्थ ही " अ-हिंसा " है, " ध्वर " शब्द हिंसावाचक है उसका निषेध अध्वर शब्दने किया है। यज्ञके नामों में अहिंसा वाचक अध्वर शब्दका होना सिद्ध कर रहा है कि यज्ञ मेध आदिमें किसी भी प्रकार हिंसा होना उचित नहीं है। " मेध " शब्दके तीन अर्थ हैं, " बुद्धिवर्धन, संगति करण और हिंसन " मेध शब्दमें हिंसा की बू है, परंतु " वर्धन और मिलाना " भी है। अर्थात् " गो-मेध "

का शब्दार्थ होगा = (१) गोसंवर्धन. (२) गौसंगतिकरण और (३) गोहिंसन । पाठक ही विचार करें कि तीन अर्थों में से गोमेधमें कौनसा अर्थ लिया जा सकता है। अहिंसा वाचक " अध्वर " शब्दके साहचर्यसे गोहिंसन अर्थ एकतर्फ करना ही पडता है और शेष दो अर्थ स्थानपर रह जाते हैं। गौकी पालना, गौंओंको बढाना और गौसे अच्छे बच्चे पैदा करना " Cow Breading " का तात्पर्य यहां गोसंगतिकरणसे है। गोमेधमें ये सब बातें आतीं हैं और गोवध नहीं आता; यह यज्ञके नामों का विचार करनेसे ही सिद्ध हो सकता है । तथापि विचारकी पूर्णताके लिये यहां गौके नामों का भी विचार करते हैं-

१८ गौके वैदिक नाम ।

वैदिक कोश निघण्टु में गाय के नौ नाम दिये हैं उनमें निम्न लिखित तीन नाम अहिंसार्थक हैं-

१ अघ्न्या (अ घ्न्या) = हनन करने अयोग्य । अहंतव्या
२ अही (अ-ही) = " " " "
३ अदिति (अ-दिति) = टुकडे " " (अखंडनीया)

ये तीनों नाम गौ की हिंसा नहीं होनी चाहिये यह बात स्पष्ट रीतिसे बता रहे हैं। पहिले यज्ञ के नामों में अहिंसा बताई, अब गौके नामों में भी वही अहिंसा है। गौके नाम स्वयं अपने निज अर्थसे बता रहे हैं कि गौ पवित्र है इसलिये उसकी कभी हिंसा नहीं होनी चाहिये। यही अर्थ प्रमाण मान कर महा भारतमें निम्न श्लोक लिखा है--

अघ्न्या इति गवां नाम क एता हन्तुमर्हति ।
महच्चकाराऽकुशलं वृषं गां वाऽऽलभेत् यः ।

म. भा. शांति. अ. २६३

" भाई ! गौओंका नाम ही अघ्न्या है अर्थात् गौ हिंसा करने योग्य नहीं है, फिर इन गौओंको कौन काट सकता है । जो लोग गौको या बैल को मारते हैं वे बडा अयोग्य कर्म करते हैं ।

१९ चरक की साक्षी ।

गोमेधके विषयमें वैद्यक ग्रंथ की चरक संहितामें निम्न लिखित पंक्तियां लिखी हैं--

आदिकाले खलु यज्ञेषु पशवः समालंभनीया बभूवुः नारंभाय प्रक्रियन्ते स्म । ततो दक्षयज्ञप्रत्यवरकालं मनोः पुत्राणां नरिष्यन्नाभाकेक्ष्वाकुकुविडचर्यादीनां च क्रतुषु पशूनामेवाभ्यनुज्ञानात्पशवः प्रोक्षणमापुः । अतश्च प्रत्यवरकालं पृषध्रेण दीर्घसत्रेण यजमानेन पशूनामलाभाद्गवामालम्भः प्रावर्तितः । तं दृष्ट्वा प्रव्यथिता भूतगणाः । तेषां चोपयोगादुपकृतानां गवां गौरवादौष्ण्यादसात्म्यादशस्तोपयोगाच्चोपहताग्नीनामुपहतमनसामतीसारः पूर्वमुत्पन्नः पृषध्रयज्ञे ॥

चरक चिकित्सा. अ. १९

"आदिकालमें सचमुच गौ आदि पशुओं को यज्ञों में सुशोभित किया जाता था, उनका वध नहीं होता था । पश्चात् दक्षयज्ञके नंतर नरिष्यन्, नाभाक, इक्ष्वाकु, तथा कुविडचर्य आदि मनुके पुत्रोंके यज्ञोंमें पशुओंका प्रोक्षण होने लगा । इसके बाद बहुत समय व्यतीत होनेपर राजापृषध्रने जब दीर्घ सत्र शुरू किया और अन्य पशु न मिलने लगे तब अन्य पशुओंके अभाव में गौओंका आलंभन शुरू किया । गौओंकी यह दशा देखकर सब प्राणिमात्र को बडा कष्ट हुआ। गौओंका मांस भारी, उष्ण और अस्वाभाविक होनेके कारण उस समय लोगों की अग्नि और बुद्धि शक्ति भी

मन्द हो गई और अग्नि मंद होनेके कारण इसी पृषध्रके यज्ञसे गोवध से अतिसार रोग उत्पन्न हुआ।'

पाठक इस चरकाचार्यके कथनका खूब मनन करें। इसमें यज्ञकी तीन अवस्थाएं बताई हैं- (१)पहिले समय में यज्ञोंमें पशुवध नहीं होता था, प्रत्युत गौ आदि पशुओंको यज्ञोंमें सुशोभित करके सत्कारसे रखा जाता था; (२) दूसरे समयमें अर्थात् उसके बादके समयमें मनुके पुत्रोंने पशुओंको यज्ञ में प्रोक्षण करने की रीति चलाई; (३) पश्चात् तीसरे समयमें पृषध्रने सबसे प्रथम यज्ञमें गौका वध किया, परंतु इसका सबने निषेध किया। जिन्होंने इस यज्ञमें गोमांस खाया उनको अतिसार रोग हुआ; और तबसे अतिसार सब लोगोंको सताता रहा है।

इससे यह सिद्ध होता है कि अति प्राचीन वैदिक कालमें निर्मांस यज्ञ होते थे, मध्य कालमें समांस यज्ञ शुरू हुए परंतु इस कालमें भी गौ मारी नहीं जाती थी, पश्चात् बहुत आधुनिक कालमें यज्ञमें गोवध शुरू किया परंतु इसके विरुद्ध सब जनता हुई और गोवध जहां हुआ वहांसे अतिसार रोग शुरू हुआ। हमारा यह ख्याल है कि यज्ञमें गोवध बहुत दिन तक चला न होगा, पृषध्रके समय शुरू हुआ, लोगोंको भी यह पसंद न हुआ और रोगभी फैला; इस लिये फिर किसीने यह दुष्कर्म किया ही न होगा। तात्पर्य प्राचीन कालके यज्ञोंमें न पशुवध होता था और ना ही गोवध होता था। जिसने किया उसने बहुत अच्छी प्रकार उसका फल भोगा और उससे शुरू हुआ अतिसार रोग अबभी जनता को कष्ट दे रहा है। एक वार ऐसा भयानक अनुभव देखनेके पश्चात् ऐसा कुकर्म कौन भद्र पुरुष फिर करेगा?

चरकाचार्य के बताये तीन काल के हवनके तीन प्रकार और हमने इसी लेखमें इससे पूर्व ऋषिपंचमी और यज्ञकी साक्षीके प्रकरणोंमें बताये विभाग, इनकी परस्पर तुलना पाठक करें और अतिप्राचीन आदि वैदिक कालमें निर्मांस अन्नकी प्रथा होनेका अनुभव देखें । सब बातें भिन्नभिन्न प्रमाणोंका विचार करने के बाद यदि एक ही रूपसे दिखाई देने लगीं, तो वही निश्चित सत्य है, ऐसा मानना योग्य है ।

२० एक संदेह स्थान ।

वेदमंत्रोंमें कई ऐसे मंत्र हैं कि जहां शब्दार्थसे कुछ तात्पर्य और प्रतीत होता है उदाहरण के लिये देखिये--

गोभिः श्रीणीत मत्सरम् ।

ऋ. ९ । ४६ । ४

इसका शब्दार्थ यह है - " (गोभिः) गौओंके साथ (मत्सरं) सोम (श्रीणीत) पकाओ ।" ऐसे मंत्र देखकर लोग भ्रममें पडते हैं कि यह गोमांस के साथ सोम पकानेकी आज्ञा है। परंतु यह व्याकरण के अज्ञान के कारण भ्रम उत्पन्न होता है । व्याकरण के तद्धित प्रत्यय के साथ अच्छा परिचय हुवा तो यह भ्रम नहीं हो सकता, इस विषयमें श्री० यास्काचार्य का कथन देखिये-

अथाप्यस्यां ताद्धितेन कृत्स्नवन्निगमा भवन्ति
" गोभिः श्रीणीत मत्सरमिति " पयसः ।

निरुक्त. २ । ५

" तद्धित प्रत्यय होनेके समान अंशके लिये संपूर्णका प्रयोग किया जाता है, उदाहरण ' गोभिः श्रीणीत मत्सरं ', इसमें ' गौ '

शब्दका अर्थ 'दूध' है।" इसी विषयमें यास्काचार्यका और कथन सुनने लायक है—

"अंशुं दुहन्तो अध्यासते गवि" इत्यधिषवण-
चर्मणः। अथापि चर्म च श्लेष्मा च "गोभिः
सन्नद्धो असि वीळयस्व" इति रथस्तुतौ।
अथापि स्नाव च श्लेष्मा च "गोभिः सन्नद्धा
पतति प्रसूता" इतीषुस्तुतौ ॥ १ ॥ ५ ॥
ज्याऽपि गौरुच्यते। गव्या चेत्ताद्धितम्, अथ
चेन्न गव्या गमयतीषून् इति। "वृक्षे वृक्षे
नियतामीमयद्गौस्ततो वयः प्रपतान् पूरुषादः।"

निरुक्त. २।५

इस वचन में वेदके तीन मंत्र देकर श्री० यास्काचार्यजीने बताया है कि "चर्म, सरेस, तांत तथा धनुषकी डोरी" इतने अर्थ गो शब्दके हैं अर्थात् यहां अंशके लिये संपूर्ण का प्रयोग किया है।

आंख देखता है ऐसा कहनेके स्थान पर मनुष्य देखता है ऐसा सब बोलते ही हैं, इसी प्रकार गौसे उत्पन्न होने वाले दूध, दही, घी, चर्म, सरेश, तांत और तांतकी बनी डोरी आदि सब पदार्थों के लिये वेदमें एकही "गौ" शब्दका प्रयोग हुआ है। ऐसे प्रसंगोंमें पूर्वापर संबंधसे ही अर्थ करना चाहिये। पाठकों की सुविधाके लिये यहां हम इनके एक एक उदाहरण देते हैं--

अंशुं दुहन्तो अध्यासते गवि।

ऋ० १०।९४।९

"(अंशुं) सोमका रस (दुहन्तः) दोहन करते हुए (गवि) चर्मपर (अध्यासते) बैठते हैं।" यज्ञका विधि जिन्होंने देखा है उनको पता है कि चर्मपर सोम रखा जाता है और पश्चात्

रस निचोडा जाता है। इसलिये यहां " गवि " शब्दका अर्थ 'चर्मपर" ऐसा है, "गायमें" ऐसा अर्थ नहीं। और देखिये-

वनस्पते वीड्वंगो हि भूया अस्मत्सखा प्रतरणः
सुवीरः। गोभिः सन्नद्धो असि वीळयस्वास्थाता
ते जयतु जेत्वानि ॥

ऋ. ६।४७।२६

" हे (वनस्पते) वृक्षसे बने हुए रथ ! तू (वीड्वंगः) दृढ अवयवोंवाला हमारा सहायक (प्रतरणः) पार ले जानेवाला और सुवीरोंसे युक्त हो। तू (गोभिः सन्नद्धः) चर्मकी रस्सियोंसे बांधा हुआ (वीळयस्व) वीरता दिखा, (ते आस्थाता) तेरे अंदर बैठनेवाला (जेत्वानि जयतु) जीतने योग्य शत्रुको जीते। "

इस मंत्रमें अंशके लिये पूर्णका प्रयोग करनेके दो उदाहरण हैं-- (१) " गौ " शब्द चमडेकी डोरी का वाचक है, और (२) " वनस्पति " (वृक्ष) शब्द वृक्षसे बने हुए रथ का वाचक है। जिस प्रकार वृक्षसे लकडी और लकडीसे रथ बनता है; उसी प्रकार गौसे चमडा और चमडेसे डोरी बनती है। इसी प्रकार गौसे दूध, दूधसे दही, दहीसे मक्खन और मक्खनसे घी बनता है, और उक्त कारणही इन सब पदार्थोंके लिये " गो " शब्द प्रयुक्त होता है। अब और दूसरा उदाहरण देखिये-

सुपर्णं वस्ते मृगो अस्या दन्तो
गोभिः सन्नद्धा पतति प्रसूता ॥

ऋ. ६।७५।११

" यह बाण (सु--पर्ण) उत्तम परोंसे (वस्ते) युक्त है, इसका (दन्तः मृगः) नोक मृगकी हड्डीका बना है और यह (गोभिः सन्नद्धा) गोचर्मके बने बारीक धागों से अच्छी प्रकार बांधा

है यह (प्रसूता) धनुष्यसे छूटा हुआ शत्रुपर (पतति) गिरता है । ”

इस मंत्रमें भी अंशके लिये पूर्णका प्रयोग होनेके दो उदाहरण हैं। एक “ मृग ” शब्द मृगकी अर्थात् हरण की हड्डीका वाचक है। मृगकी हड्डी कहनेके स्थानपर केवल “ मृग ” ही कहा है। इसी प्रकार आगे जाकर चर्मसे बनी डोरियोंका वाचक शब्द “ गोभिः ” है । यह शब्दभी गोचर्मकी डोरीके लिये प्रयुक्त हुआ है। इसी प्रकार निम्न मंत्रमें देखिये—

वृक्षे वृक्षे नियतामीमयद्गौस्ततो वयः
प्रपतान्पूरुषादः ॥

ऋ. १० । २७ । २२

(वृक्षे वृक्षे) लकडीसे बने प्रत्येक धनुष्यपर (नियता गौः) तनी हुई गोचर्मकी डोरी--ज्या--(अमीमयत्) शब्द करती है (ततः) उससे (पुरुषादः) मनुष्यों को खाने वाले (वयः) पक्षियोंके पर लगे हुए बाण (प्रपतात्) शत्रुपर गिर जाते हैं।

इस मंत्रमें दो या तीन शब्द अंश के लिये पूर्ण का प्रयोग होनेके हैं। (१) “ वृक्ष ” शब्द वृक्ष या लकडीसे बने हुए धनुष्य का वाचक है, (२) “गौ” शब्द गो चर्मसे बने धनुष्यकी डोरी का वाचक है और (३) “ वयः ” (पक्षी) शब्द उनके पंख लगे बाणों का वाचक है।

पाठक इतने उदाहरणों से समझ गये होंगे कि वेदकी यह शैली ही है कि अंश के लिये पूर्ण का प्रयोग हो । यह प्रयोग यदि केवल गौके लिये ही होता तो कोई कह सकते थे कि यह खींचातानी की बात है, परंतु यहां तो अन्य बातों के लिये भी ऐसे ही प्रयोग हैं और ढाई

सहस्र वर्षोंके पूर्व ये उदाहरण देकर यही बात श्री० यास्काचार्य-जीने बताई है। उक्त उदाहरणोंका समीकरण यह है-

१ वनस्पति शब्द उसकी लकडीसे बने रथ के लिये
२ वृक्ष ,, ,, ,, ,, धनुष्य ,,
३ गौ शब्द उससे बने दूध, घी, आदि के ,,
४ ,, ,, ,, ,, चर्म, चर्मपदार्थ ,,
५ ,, ,, उसके चर्मसे बने हुए डोरी, बैग ,,
६ मृग उसकी हड्डीसे बने शस्त्रका द्योतक है
७ वयः शब्द उस पक्षीके परों से बने बाणों का वाचक है।

इस प्रकार अनेक उदाहरण दिये जा सकते हैं,परंतु यहां हमने उतने ही दिये हैं कि जितने स्वयं श्री० यास्काचार्य ने अपने निरुक्त ग्रंथमें दिये हैं। इनको देखनेसे पाठकों का निश्चय होगया होगा कि यह वैदिक शैली ही है। यह बात यूरोपके विद्वानों के भी ध्यान में आगई है और उन्होंने इसका स्वीकार भी किया है और इस लिये म० मैकडोनेल और कीथ महोदयोंने अपने वैदिक इन्डेक्स में लिखा है कि-

" The term (गो) Go is often applied to express the products of the cow. It frequently means the milk, but rarely the flesh of the animal. In many passages it, designates leather used as the material of various oljects, as a bowstring or a sling or thongs to fasten part of the chariot or reins, or the lash of a whip. (पृ. २३४)

अर्थात् " गो " शब्द गौसे बने हुए पदार्थ बताने के लिये प्रयुक्त हुआ है। वारंवार यह गौ शब्द दूध के लिये आता है, क्वचित् पशुके मांसके लिये आता है । कई मंत्रों में इस गौ

शब्दका अर्थ चर्म, है जिससे धनुष्यकी डोरी, रस्सी, चमडेकी पट्टी, गौफन लगामें, चाबूक आदि पदार्थ हैं।"

इसमें स्पष्ट लिखा है कि गो शब्दका अर्थ दूध, चर्म आदि पदार्थ वेद में हैं। उक्त महोदयोंका मत है कि क्वचित् मांस भी अर्थ गोशब्दका होता है, परंतु ऐसे प्रयोग बहुत अल्प हैं। मांस अर्थ भी हो सकता है क्योंकि वह भी गौका अंशही है, परंतु जब गौ " अवध्य (अ-घ्न्या) " कही गई है तो उसके वधसे प्राप्त होने वाले मांस की संभावना कैसी हो सकती है ? एकवार गौ को अवध्य कहा, यज्ञों के नामों द्वारा अहिंसा (अ-ध्वर) कही, इसके पश्चात् गौके मांस की प्राप्ति ही नहीं होती। अतः गौ शब्दके वेही अंग लेने होंगे कि जो गौका वध करने के विना प्राप्त हो सकते हैं, अर्थात् दूध, दही, मक्खन, घी, तथा चर्म तो मृत गौका भी मिल सकता है इस लिये उस चर्मके सब पदार्थ उसके अंतर्भूत हो जाते हैं, गौकी हड्डी भी इसी प्रकार गौ मरने पर प्राप्त हो सकती है। एक मांस ही ऐसी वस्तु है कि जो हिंसा किये विना नहीं प्राप्त हो सकती, अतः अवध्य गौका मांस वैदिक कालमें खाया जाता था इस विषयके कोई प्रमाण नहीं हैं।

२५ नामधातु " गोपाय " ।

जब एक बात निर्विवाद रीतिसे बहु मान्य और सर्वत्र प्रसिद्ध हो जाती है तब उसका शब्द मूलतः न होने पर भी भाषा में रूढ हो जाता है। उदाहरण के लिये "मेस्मेरिज्म" यह अंग्रेजीका शब्द लीजिये। सन १७७८ में जर्मन डाक्तर मेस्मर ने प्रयोग द्वारा सिद्ध करके बताया कि एक मनुष्य अपनी मानसशक्ति द्वारा दूसरे मनुष्यपर विशेष प्रभाव उत्पन्न कर सकता है । यह बात

इतनी लोकप्रिय हो गई कि इस क्रियाका वाचक धातु इस के ही नामसे बनाया गया देखिये-

Mesmer " मेस्मर " = जर्मन डाक्टर का नाम जिसने मानस शास्त्र का उक्त सिद्धांत प्रकाशित किया।

Mesmerize "मेस्मराइझ्" = उक्त क्रियाके प्रयोग करना (धातु)

Mesmerism " मेस्मेरिज्म " = उक्त मानस क्रिया।

Mesmerizer " मेस्मरायझर " = उक्त मानस प्रयोग करने-वाला मनुष्य

इस प्रकार अनेक शब्द आंग्रेजी भाषामें बने हैं और आंग्रेजी कोशों में भी छपे हैं। ये शब्द सन १७७८ के पूर्व थे ही नहीं। इस प्रकार कई शब्द मनुष्योंके नामोंसे धातु बनकर उस धातुसे पुनः शब्द बने हैं। यह तब होता है कि जब वह बात बहुमान्य हो जाय।

इसी प्रकार " गोपायति " क्रिया और "गोपाय" धातु "गोप" शब्द से संस्कृतमें तथा वेदमें बना है। " गोपायति " का अर्थ " रक्षण करता है " यह है, वास्तविक इसका अर्थ " (गोप इव आचरति) गोपालक के समान आचरण करता है। " यह है। गोपालन की क्रिया सर्वमान्य और सर्वसंमत होनेके विना ऐसे नाम धातु प्रचारमें आना असंभव है।

" गवालियेके समान आचरण " का अर्थ " संरणक्ष " होने का तात्पर्य यही है कि "गौका संरक्षण" एक सर्वमान्य और निःसंदेह बात है, उसमें शंका नहीं हो सकती, किसीका इस विषयमें मतभेद नहीं हो सकता। " गुप् " धातु संरक्षण करनेके अर्थमें संस्कृतमें प्रयुक्त होता है और उसके रूप पूर्वोक्त नाम धातु के समान " गोपायति " ही होते हैं। गौके संरक्षण का विलक्षण प्रभाव जैसा सर्व साधारण पर हुआ इस शब्दद्वारा दिखता है ,

जिसका धातुके बनने और उसके रूप बनने पर भी असर पडे, ऐसा कोई अन्य धातु या शब्द संस्कृतमें या वेदमें भी नहीं है। एक ही यह प्रयोग यदि सूक्ष्म विचार की दृष्टिसे देखा जाय तो स्पष्ट सिद्ध कर देगा कि गौओं का संरक्षण, पालन और संवर्धन आर्योंमें और वैदिक धर्म में एक विशेष महत्त्व की बात है, कि जिसपर शंकाही नहीं हो सकती। वेदने इस शब्द प्रयोग द्वारा ही सिद्ध कर दिया है कि " गौ अवध्य है " और उसका पालन तो निर्विवाद रीतिसे होना चाहिये। वेदमें इसके प्रयोग देखियें—

ये गोपायन्ति सूर्यम्।

ऋ. १० । १५४। ५

" जो सूर्य की रक्षा करते हैं, " यह इसका तात्पर्य है, परंतु इसका भाव यह है कि ' गोपालनके कर्मके समान कर्म सूर्य के साथ करते हैं। ' अर्थात् सूर्य की पालना करते हैं। गोपालन के विषयमें और इससे अधिक कहना ही क्या चाहिये। वैदिक धर्ममें तो इस प्रकारके शब्द प्रयोगों से 'अंतिम आज्ञा' ही कही जाती है, जिसका उलट पुलट होना असंभव है।

इस नामधातु और धातु के प्रयोग वेदमें बहुत हैं, उन सबके उदाहरण यहां दिखाने की आवश्यकता नहीं, परंतु इनकी उत्पत्ति यहां देखने योग्य है—

गौ = गाय
गोप (गो-प) = गायका पालक
गोपाय् = गोपालके समान आचरण करना अर्थात् रक्षा करना
गोपायति = रक्षा करता है।
गापायनं = संरक्षण
गुप् (गु+प्) = (धातु) रक्षा करना

देखिये और विचारिये कि यदि गोपालन का महत्त्व निःसंदेह वैदिक धर्म में न होता तो ऐसे प्रयोग वेदमें कैसे आजाते? फिर इतना गोपालन का महत्त्व सिद्ध होनेपर किस प्रकार कहा जा सकता है कि वैदिक कालमें गोमांस भक्षणकी प्रथा थी। यदि गोमांसभक्षण की प्रथा होती तो गोरक्षा का इतना महत्त्व कैसे दर्शाया जाता?

(२२) विवाहमें गोमांस।

विवाह संस्कारमें गोमांस खाया जाता था ऐसा युरोपीयन पंडित म. मैकडोनेल और कीथ ने अपने वैदिक इंडेक्स में पृ. १४५ पर लिखा है— " The marriage ceremoney was accompanied by the slaying of oxen, clearly for food." विवाह संस्कार में गाय बैलोंका वध अन्नके लिये ही किया जाता था। इस विषय का प्रमाण उन्होंने जो दिया है उसका विचार अब करना चाहिये—

सूर्याया वहतुः प्रागात् सविता यमवासृजत्।
अघासु हन्यन्ते गावोऽर्जुन्योः पर्युह्यते॥

ऋ. १०। ८५। १३

यह मंत्र एक आलंकारिक वर्णनमें आगया है इसका पूर्वापर संबंध देखनेसे मंत्र का अर्थ स्वयं खुल जायगा। इसलिये इसके पूर्व के कुछ मंत्र देखिये-

सत्येनोत्तभिता भूमिः सूर्येणोत्तभिता द्यौः।
ऋतेनादित्यास्तिष्ठन्ति दिवि सोमो अधिश्रितः॥ १॥
चित्तिरा उपबर्हणं चक्षुरा अभ्यञ्जनम्।
द्यौर्भूमिः कोश आसीद्यदयात्सूर्या पतिम्॥ ७॥
स्तोमा आसन्प्रतिधयः कुरीरं छंद ओपशः।
सूर्याया अश्विना वराग्निरासीत्पुरोगवः॥ ८॥

सोमो वधूयुरभवदश्विनास्तामुभा वरा ।
सूर्यां यत्पत्ये शंसन्तीं मनसा सविता ददात् ॥ ९ ॥
मनो अस्या अन आसीद् द्यौरासीदुत छदिः ।
शुक्रावनड्वाहावास्तां यदयात्सूर्या गृहम् ॥ १० ॥
ऋक्सामाभ्यामभिहितौ गावौ ते सामनावितः ।
श्रोत्रं ते चक्रे आस्तां दिवि पन्थाश्चराचरः ॥ ११ ॥
शुची ते चक्रे यात्या व्यानो अक्ष आहतः ।
अनो मनस्मयं सूर्यारोहत्प्रयती पतिम् ॥ १२ ॥
सूर्याया वहतुः प्रागात्सविता यमवासृजत् ।
"अघासु हन्यन्ते गावोऽर्जुन्योः पर्युह्यते ॥ १३ ॥"
यदयातं शुभस्पती वरेयं सूर्यामुप ।
क्वैकं चक्रं वामासीत्क्व देष्ट्राय तस्थथुः ॥१५॥
द्वे ते चक्रे सूर्ये ब्रह्मण ऋतुथा विदुः ।
अथैकं चक्रं यद्गुहा तदद्धातय इद्विदुः ॥ १६ ॥

ऋ. १० । ८५ । १-१६

इन मंत्रोंका अर्थ देखनेके समय पाठक यह बात ध्यान में रखें की यह विवाहका आलंकारिक वर्णन है जिसमें सूर्यकी पुत्री सूर्या का विवाह चंद्रमासे होनेका वर्णन है, देखिये अब इस का अर्थ-

" सत्यसे भूमिका धारण हुआ है, सूर्यने द्युलोक का धारण किया है, सचाईसे आदित्य ठहरे हैं, द्युलोकमें सोम रहा है ॥ १ ॥ विचारशक्ति का तकिया बनाया है, दृष्टिका अंजन आंख में रखा है,भूमिसे द्युलोक तकके सब पदार्थ खजाना था जिस समय सूर्या वधु अपने पतिके पास गई ॥७॥ रथ बनानेमें मंत्रों के दंडे लगाये गये, कुरीर नामक छंदों से उसकी चमक बढाई गई । दोनों अश्विनीकुमार वधूपक्षके साथ थे और अग्नि सबके आगे था॥८॥ सोम वधू चाहनेवाला वर था और अश्विदेव वधूके साथ रहे ।

सूर्य देवने मनसे पतिकी इच्छा करनेवाली सूर्यावधूको पतिके हाथमें अर्पण किया ॥ ९ ॥ इसका रथ मन ही था, द्युलोक उस रथका ऊपर का भाग था, दो श्वेत बैल रथको जोडे थे, जिस समय सूर्या अपने पतिके घर पहुंची ॥ १० ॥ ऋक् और साम मंत्रोंसे वे दोनों बैल अपने स्थानमें रखे गये थे। यहां दो कानही रथके दो चक्र थे, द्युलोक में उसका स्थावर जंगम मार्ग है ॥ ११ ॥ तुम्हारे जानेके दोनों चक्र शुद्ध हैं, व्यान नामक प्राण रथका (अक्षः) मध्यदंड है, ऐसे (मनस्मयं अनः) मन रूपी रथपर सूर्या देवी बैठ कर अपने पतिके पास जाती है ॥ १२ ॥ सविता देवने सूर्या देवी की दहेज धमधडाके के साथ भेजी जो आगे चली, इस समय [(अघासु हन्यन्ते गावः) युरोपीयनों का अर्थ =मघा नक्षत्रमें गौवें मारीं जाती हैं !!!] मघा नक्षत्रमें दहेजमें गौवें भेजी जाती हैं अर्थात् सूर्यकी किरणें चंद्रमातक पहुंचायीं जाती हैं और (अर्जुन्योः पर्युह्यते) फल्गुनी नक्षत्रोंमें सूर्या के साथ सोम का विवाह किया जाता है ॥ १३ ॥ हे अश्विदेवो ! जब आप अपने तीन चक्रवाले रथ में बैठ कर सूर्यादेवी के बरात में स्वयं आये, तब आपके रथका एक चक्र कहां था, और आप आज्ञा पालन के लिये कहां ठहरे थे ॥ १५ ॥ हे सूर्या देवी! तुम्हारे दो चक्र ब्राह्मण ऋतुओं के अनुसार जानते हैं और जो एक चक्र (गुहा) गुप्त है, (या हृदयकी गुहामें अदृश्य है,) उसको वेही जानते हैं कि जो अटल सत्य तत्त्वको जानते हैं ॥ १६ ॥

पाठक ये मंत्र देखें और उनका यह अर्थ भी देखें। तो उनको स्पष्ट पता लग जायगा कि यहां गौओंका वध करनेका संबंध ही नहीं है। यदि "गायें मारी जाती हैं" ऐसा बीचमें पढा तो वह वहां सजता ही नहीं है। ऊपरके अर्थमें यह यूरोपीयनों का अर्थ और वास्तविक अर्थ दोनों दिये हैं। पाठक खूब विचार करके

देखें और स्वयं अनुभव करें कि युरोपीयनोंकी यह मंत्र समझनेमें कैसी बडी भारी भूल हुई है।

डा. वुईल्सन ने (अघासु हन्यन्ते गावः) का अर्थ "मघा नक्षत्रमें गौवें (are whipped along) चलाई जाती हैं।" ऐसा किया है जो अधिक शुद्ध है, परंतु "गौवें काटी जाती हैं" यह अर्थ म. ग्रिफिथ, व्हिटने आदियोंने माना है, वह उनकी बडी भारी भूल है, यह पूर्वापर संबंध देखनेसे स्वयं स्पष्ट हुआ है। यह ऊपरके मंत्रोंका जो अर्थ हमने ऊपर दिया है वह सब युरोपीयन ऐसा ही मानते हैं, केवल "गौ काटने" वाला उनका अर्थ भिन्न है। वास्तवमें यहां अब इसका अधिक विवरण करनेकी आवश्यकता नहीं है, तथापि पाठकों को यह अलंकार स्पष्ट समझमें आजाय, इसलिये संक्षेपसे यह अलंकार खोलते हैं। विवाहकी बरातका रथ-

रथ	मन (मं. १०)
रथका छत्र	द्युलोक (,,)
रथचालक	दो बैल (,,)
लगामें	ऋक्साम मंत्र (मं.११)
मार्ग	स्थावर जंगम जगत् (११)
अक्ष (रथदंड)	व्यान प्राण. (मं. १२)
तकिया	विचार शक्ति (मं. ७)
अंजन	दृश्य (मं. ७)
खजाना	सब पदार्थ (मं. ७)
रथके दंड	मंत्र (मं. ८)
रथकी चमक	मंत्रोंके छंद (मं. ८)
वधुके साथी	दो अश्विनीकुमार (मं. ९)
अग्रगामी	अग्नि (मं. ९)
दो रथ चक्र	दो कान (मं. ११)

मंत्रमें जिस प्रकार वर्णन है वह यहां दिया है, परंतु पाठक जानते ही हैं कि वेदका वर्णन आधिभौतिक, आधिदैविक और आध्यात्मिक तीन विभागों में विभक्त होता है, उस विचार से संगति करण करके नीचे कोष्टक दिया जाता है जिससे यह रूपक खुल जायगा –

अधिभूत	अधिदैवत	अध्यात्म
(लोकाचारमें)	(विश्वमें)	(शरीरमें)
वधूका पिता	सूर्य	परमपिता
वधू	सूर्या(सूर्यप्रभा)	बुद्धिशक्ति
वर	सोम	षोडशकला युक्त आत्मा
वधूके साथी	दो अश्विनी	श्वास, उच्छ्वास
वरातमें अग्रगामी	अग्नि	शब्द (वाणी)
....	....	....
आंखमें अंजन	दृश्य	दृष्टि
वधूका धन	सब पदार्थ	सब अवयव
....	....	....
गौवें	किरणें	इन्द्रियें
रथ	विद्युत्	मन
रथका छत	द्युलोक	मस्तिष्क
रथका मार्ग	स्थिरचर	जडचेतन
रथवाहक (दो)बैल	वायु	प्राणापान
लगामें	...	ऋक्साममंत्र
रथके दंड	...	मंत्र
रथकी चमक	...	छंद
अक्ष	...	व्यानवायु

रथके दो चक्र	दिशाएं	दो कान
रथमें तकिये	...	सुविचार

यह कोष्ठक देखनेसे यह वैदिक अलंकार पाठकों के मनमें खुल गया होगा। इसलिये इसका विचार यहां अधिक फैलाने की आवश्यकता नहीं है। पाठक यह विवाह अपने अंदर भी देख सकते हैं और बाहर जगतमें भी देख सकते हैं। वेद मंत्रों में बाह्य जगत्में होने वाले सनातन विवाह का वर्णन किया है और बीच बीचमें व्यक्तिके शरीरमें होनेवाले विवाह की भी सूचनाएं 'मन, सुविचार' आदि शब्दों द्वारा दी हैं। सूर्यकी प्रभा चंद्रमामें जाकर वहां रमती है, इसपर रूपकालंकार से आध्यात्मिक तत्त्वका वर्णन इस सूक्त में किया है।

" गो " शब्द सूर्य किरणोंका वाचक प्रसिद्ध है, इस विषय में किसीको भी शंका नहीं है। "हन्यन्ते" इस क्रियामें "हन् " धातु है, "हन् हिंसागत्योः " ये व्याकरणाचार्य पाणिनी मुनिने इसके अर्थ दिये हैं अर्थात् "हिंसा और गति" ये इसके अर्थ धातु पाठमें हैं, कोशोंमें इस " हन् " धातुके अर्थ निम्न प्रकार हैं-

To kill (वध करना),

To multiply (गुणाकरना),

To go (जाना)।

हरएक कोशमें पाठक ये देख सकते हैं। यदि पाठक ये "हन्" धातुके अर्थ देखेंगे तो उनको-

अघासु हन्यन्ते गावोऽर्जुन्योः पर्यूह्यते ॥

इस पूर्वोक्त मंत्रके वाक्य का अर्थ(पूर्वोक्त अलंकार छोड कर भी) स्पष्ट हो जायगा " (अघासु) मघा नक्षत्रके समय (गावः) गौवें (हन्यन्ते) चलाई जाती हैं, और (अर्जुन्योः)

फल्गुनी नक्षत्रके समय (पर्युह्यते) विवाह किया जाता है। " डा. वुइल्सनने यही अर्थ स्वीकृत किया है। अलंकार का तात्पर्य छोडकर और केवल स्थूल दृष्टिसे देखकर भी सरल अर्थ यह होता है। क्यों कि 'यद्यपि हन् धातु का वध करना अर्थ प्रसिद्ध है तथापि उसका दूसरा गतिवाचक अर्थ नष्ट नहीं हुआ है। यदि इसका (to multiply) गुणा करना यह अर्थ लिया जाय तो ' गावः हन्यन्ते ' का अर्थ होगा 'गौओं की संख्या बढाई जाती है ' गौवें दुगुणी चौगुणी की जाती हैं। जिस समय विवाह होता है उस समय बहुत आदमी इकट्ठे होते हैं, उनको दूध पिलानेके लिये स्थान स्थानसे गौवें इकट्ठी की जाती हैं, लाई जाती हैं और उनकी संख्या बढाई जाती है। विवाह प्रसंग के लिये यह अर्थ कितना सार्थ है और सरल है यह देखिये। " अघ्न्या " शब्दसे बताया हुआ गौका अवध्यत्व रख करही जो अर्थ पूर्वापर संबंध में ठीक बैठ जायगा वही ठीक अर्थ होगा।

इसके अतिरिक्त पूर्वोक्त कोष्टक में देखिये तो पता लग जायगा कि जो आधिभूतमें " गौवें " हैं, वेही आधिदैवतमें " किरणें " और आध्यात्मिक भूमिका में " इंद्रियशक्तियां" हैं। जिस समय किसी बातके विषयमें संदेह उत्पन्न हो जाता है उस समय अन्य क्षेत्रोंका व्यवहार देखकर अर्थ का निश्चय करना चाहिये। अधिभूतपक्ष में अर्थात् लोक व्यवहार में गौवों का वध विवाह प्रसंगमें करना चाहिये या नहीं, इस मंत्र का अर्थ कैसा करना चाहिये, " हन् " धातुके दो अर्थ हैं उनमें यहां कौनसा लिया जाय, इस शंकाकी उत्पत्ति होनेपर आधिदैवत में और अध्यात्ममें क्या होता है यह देखिये और उचित निश्चय कीजिये।

आधि दैवत पक्ष में सूर्यकी किरणें चंद्रमातक फैलाई जाती हैं, प्रकाश का विस्तार किया जाता है, यह अर्थ स्पष्ट है । सूर्यकी किरणें मारी नहीं जाती। यह देखने से हमें पता लगा कि " हन् " धातु का अर्थ वध यहां अपेक्षित नहीं है, प्रत्युत फैलाव विस्तार या गति अर्थ ही अपेक्षित है। प्रतिबंध या वध अर्थ यहां लिया जाय तो सूर्यकी किरणें मारी जानेपर चंद्रमातक सूर्यकी प्रभा पहुंचेगी कैसी और सूर्यपुत्री प्रभा (सूर्या सावित्री) का सोम (चंद्र) के साथ विवाह कैसे होगा? और धूमधाम के साथ बरात भी कैसी चलेगी? अर्थात् यहां " हन् " धातु का वध अर्थ अपेक्षित नहीं है।

आध्यात्मिक पक्षमें अपने अंदर देखिये कि क्या इंद्रिय शक्तियां मारी जानेसे आत्मा का सुख बढेगा या उन को सुनियमोंसे चलानेसे कल्याण होगा। इसके विवाह का रथ जगत् के मार्ग परसे ऋक्साम मंत्रोंके द्वारा नियत धर्ममार्ग पर ही चलना चाहिये, इसलिये इसके रथके बैल सुशिक्षित होके मंत्रोंके लगामों द्वारा योग्य मार्ग पर से चलाने चाहिये । इत्यादि विचार से स्पष्ट पता लगता है कि यहां भी गोपालन ही अभीष्ट है।

इसी प्रकार विवाह यज्ञमें आनेवाले पारिवारिक सज्जनों के दुग्धपानके लिये गौवों को इकट्ठा करना, उनको योग्य मार्ग परसे चलाना, इधर उधर भागने न देना योग्य है । उनका वध करनेसे, उनकी कतल करने से क्या लाभ होगा ?

इस दृष्टिसे देखनेसे भी पता लग जाता है कि विवाह संस्कार में गौवोंकी संख्या (multiply) बढाना भी यहां अभीष्ट है, या उनको योग्य मार्गसे चलाना अभीष्ट है। ऊपर " हन् " धातुका अर्थ ' गति ' दिया है। इस गतिके अर्थ ' ज्ञान ' गमन और प्राप्ति

हैं !! ये अर्थ सब व्याकरणशास्त्रकार मानते हैं ।ये अर्थ यदि गति शब्दसे यहां लिये जांय तो "गावः हन्यन्ते" का अर्थ होगा— "गौओं का ज्ञान प्राप्त करना, गौओं को चलाना, अथवा गौओं को प्राप्त करना।"

"हन्" धातुका अर्थ "ताडन करना" भी है। इस समय मराठो भाषामें यह अर्थ प्रचलित है, (हनन = हाणणें) इस शब्दका अर्थ सोटोसे ताडन करना है अर्थात् गवालिये हाथ में सोटी लेकर गौवोंको जिस दशामें लेजाना होता है उस दिशामें ले जाते हैं। यह "हनन" शब्द का अर्थ है। हन् धातुका यह अर्थ लिया जाय तो "हन्यन्ते गावः" का अर्थ होगा-"गौओं को गवालिये जिस मार्गसे ले जाना हो उस मार्गसे ले जाते हैं।" अर्थात् विवाह के प्रसंगमें गौओं को इकट्ठा करते हैं और इष्ट स्थानपर ले जाते हैं।

कुछभी हो, यहां "गौवोंका वध" अभीष्ट नहीं है यह बात स्पष्ट है। श्री. सायणाचार्य जीने भी यहां वध अर्थ नहीं किया है - "मघानक्षत्रेषु गावः हन्यन्ते दण्डैः ताडयन्ते प्रेरणार्थम्।" अर्थात् "मघा नक्षत्रके समय गौवें वहां पहुंचाने के लिये सोटियों से ताडित होकर प्रेरित कीं जाती हैं।" सूर्य के घरसे चली हुई गौवें सोमके घर पहुंचने के लिये मार्गमें ठीक मार्गसे चलायीं जाती हैं। यहां सायण भाष्यका भाव यह है कि "सूर्य देवने अपनी पुत्री के विवाह के समय दहेज, स्त्रीधन या (Dowry) के रूपमें दी हुई गौवें चंद्रमा के घर तक पहुंचाने का कार्य करनेके लये सूर्य देवके गवालिये गौवें ले जाते हैं और ठीक मार्गसे उनको चलाने के लिये मार्गमें आवश्यक हुआ तो ताडन करते हैं, अंतमें वह गौवें सोमके घर पहुंचती हैं और फल्गुनी नक्षत्रके समय सूर्य पुत्री का चंद्रमाके साथ विवाह होता है।" यदि यहां "गौवों

का वध " अर्थ लिया जाय तो दहेज का बीचमें ही नाश होनेसे पुत्रीका भावी पति रुष्ट हो जायगा और विवाह में आपत्ति आजायगी। इस कारण " वध " अर्थ यहां अभीष्ट नहीं है।

कसी भी प्रकार पाठक विचार कर के देखेंगे, तो उनको स्पष्टतासे पता लग जायगा कि यहां 'गोवध' अभीष्ट नहीं है। इतना होते हुए भी यूरोपीयन पंडितोंने इस मंत्रके आधार से ही लिखा है कि-- The marriage ceremony was accompanied by slaying of oxen, clearly for food " (विवाह संस्कार में खाने के लये ही गाय बैल काटे जात थे!) पूर्वापर संबंध न देखते हुए ही एकदम कैसे अनुमान लिख मारते हैं, इसका बडा आश्चर्य होता है। संभवतः म० वैद्यजी भी ऐसे लेखों को देख कर ही कहते होंगे कि " प्राचीन समयमें गोमांस भक्षण की प्रथा थी। 'यूरोपके लोग जो चाहे सो अनुमान करें, परंतु हमारे लोगों को तो पूर्वापर संबंध देखकर अधिक विचार करके ही अपने अनुमान निकालना चाहिये। अन्यथा ऊपर वाले मंत्र में देखिये कि किसीभी रीतिसे गोका वध सजता ही नहीं, परंतु यही मंत्र गोमांसभक्षण का प्रमाण करके ये लोग पेश करते हैं। इस से और अधिक कोरी भूल कोई नहीं हो सकती।

नक्षत्रों में " मघा " नक्षत्र होते ही " पूर्वा और उत्तरा " ये दो फल्गुनी नक्षत्र आते हैं। चन्द्रमाके तीन रात्री का प्रवास इनमें होता है। सोमवार के दिन मघा नक्षत्र हुआ तो प्रायः मंगल और बुध के दिनोंमें दोनों फल्गुनी नक्षत्र आते हैं। इसी लिये दहेज मघा नक्षत्र के समय भेज कर दूसरे या तीसरे दिन विवाह किया जाता है। इस मंत्रसे यदि कोई अनुमान निकालना है तो यही निकल सकेगा कि वेद के अनुसार दहेज में गौवें दी जाती हैं और दहेज वर के घर पहुंचने के पश्चात् विवाह होता

है। परंतु गौवोंके वधका अनुमान तो कदापि निकल नहीं सकता। ऐसा अनुमान निकालना एक अज्ञान का विलक्षण प्रदर्शन करना ही है। यहां " हन् " धातु का अर्थ क्या है यह अवश्य देखना चाहिये-

१ हन् = (वध करना To kill) यह अर्थ प्रसिद्ध है।

२ हन = (जाना, चलाना, प्रेरणा देना To go, to remove यह अर्थ व्याकरणाचार्योंने माना है और यह धातु इस अर्थ में क्वचित् भाषामें भी प्रयुक्त होता है। वेद में यह अर्थ अधिक वार आता है और भाषामें कम। वैदिक कोश ' निघण्टु ' के २। १४ में यह ' गति ' अर्थ दिया है।

३ हन् = (रक्षा करना) जैसा " हस्त-घ्न " में " घ्न " का अर्थ " रक्षा करना " है। ' हस्तघ्न ' का अर्थ (Hand guard) " हाथकी रक्षा करनेवाला " ऐसा होता है। यह प्रयोग वेदमें है। (ऋ. ६।७५।१४)

४ हन् = (गुणा करना To multiply) गणितमें यह प्रयोग है। " घात, हनन, हति, हत " आदि शब्द (Multiplication) बढोत्री, गुणा अर्थमें प्रयुक्त हैं।

५ हन् = (उडाना, बढाना to raise) " तुरगखुरहतस्तथा हि रेणुः " (शाकुंतल १। ३२) (घोडेके पांव से हत अर्थात् उडाई हुई धूली)ऐसे वाक्यों में यह अर्थ होता है।

६ हन् = (ताडन करना to beat) जैसा पशुओंको सोटीसे गवालिये समयपर ताडन करते हैं।

७ हन् = (To ward off; avert रक्षा करना, दूरकरना) यह अर्थ महाभारतमें भी है।

८ हन् =(to touch, come in contact स्पर्श करना, संबंधमें आना) वराहमिहिर बृहत्संहितामें यह अर्थ ज्योतिष विषय में प्रयुक्त है ।

९ हन् = to give up, abandon छोड देना

१० हन् = to obstruct प्रतिबंध करना ·

" हन् " धातु के इतने अर्थ कोशों हैं । इन अर्थों में से प्राचीन वेद मंत्रों में कौनसे अर्थ आये हैं इनका प्रकरण देखकर पूर्वापर संगतिसे ही अर्थ करना चाहिये " हन् " धातु जहां जहां आजाय वहां वहां उसका " वध " ही अर्थ लिया जाय तो अर्थका अनर्थ होनेमें विलंब नहीं लगेगा ।

२३ अतिथिकेलिये गौ ।

वेद में गौ वाचक " अतिथिनी " शब्द आया है, इस शब्द के दो अर्थ हैं, (१) भ्रमण करनेवाली और (२) अतिथिके लये योग्य । युरोपीयन भाषांतरकार तथा कोशकार " अतिथिनी " शब्द का अर्थ (wandering) घूमने फिरने वाली, भ्रमण करने वाली, चलनेवाली ऐसा ही करते हैं, परंतु म. मैकडोनेल और कीथ महोदयोंने अपने वैदिक इंडेक्स पृ. १४५ पर (Slaying cows for guests) अतिथियोंके लिये गौके काटनेका उल्लेख करते हुए निम्न लिखित मंत्रका प्रमाण दिया है जिस में यह " अतिथिनी " शब्द है—

साध्वर्या अतिथिनीरिषिराः स्पार्हाः सुवर्णा अनवद्यरूपाः ।
बृहस्पतिः पर्वतेभ्यो वितूर्या निर्गा ऊपे यवमिव स्थविभ्यः ॥

ऋग्वेद १० । ६८ । ३

इसका अर्थ म० ग्रिफिथ यह करते हैं = Brihaspati, having won them from the mountains, strewed down, like barley out of winnowing baskets; the vigorous, WANDERING-COWS who aid the pious, desired of all, of blameless form, well coloured

पाठक देखें और विचारें कि इस मंत्रार्थमें अतिथिके लिये गौ काटनेका कहां संबंध है ? इस मंत्रका. शब्दार्थ यह है - " (साधु+अर्याः) कल्याण करनेवाली, (अतिथिनीः) खूब घूमने वाली, (इषिराः) इच्छा करने योग्य, (स्पार्हाः) स्पृहणीय, (सुवर्णाः) उत्तम रंगवाली, (अनवद्यरूपाः) उत्तम सुरूप ऐसी (गाः) गौवें बृहस्पतिने पर्वतोंसे लाई जिस प्रकार धान्य छजसे लाते । "

क्या कभी कोई मनुष्य यह मंत्र " अतिथि के लये गौ काटने" के विषयमें प्रमाण रूपमें दे सकते हैं ? परंतु यह म. मैकडोनेल और कीथने अपने पुस्तक में पृ. १४५ पर दया है। म.ब्लूमफील्डने इस मंत्रपर यही अनुमान " अमेरिकन जर्नल आफ फिलोसोफी" १७, ४२६ तथा " जर्नल आफ दी अमेरकन ओरएंटल सौसैटी " १६, १२४ में " अतिथिनी" शब्द से निकाला है जो म. मैकडोनेल ने दिया है। वास्तवमें इस मंत्रमें दोही शब्द हैं, जिनकी ऐसी खींचातानी की जा सकती है—

१ साध्वर्याः = (साधु+अर्याः) = साधुओंके पास जानेवाली, कल्याण करने वाली।

२ अतिथिनी = घूमने वाली, अतिथि के लिये योग्य.

पाठक विचार करें की इन शब्दोंसे ही यदि 'गौ काटकर अतिथिको खिलानेका भाव ' निकालना युरोपीयनोंको मंजूर हो तो फिर वाद विवाद करने की कोई आवश्यकताही नहीं है।

वे फिर लिखते हैं— The name ATITHIGVA probably means slaying cows for guests. अर्थात् ' अतिथिग्व ' शब्द का बहुत करके अर्थ अतिथिके लिये गौ काटना है ।

म० ब्लूमफील्डने अतिथिग्व शब्दका अर्थ— Presenting cows to guests ऐसा करके उससे अनुमान निकाला है कि यहां अतिथिके लिये गोवध दिखाई देता है ।

सर मोनियर वुइलियम्स अपने सुप्रसिद्ध संस्कृतइंग्लिश कोशमें पृ. १४ पर ' अतिथिग्व ' शब्दका अर्थ करते हैं—To whom guests should go अर्थात् ' जिसके पास अतिथि चले जांय।' यही इस शब्दका सत्य अर्थ है। और इस शब्दसे अतिथि के लिये गौ काटनेका कोई तात्पर्य नहीं निकल सकता ।

हम जिस समय युरोपीयन पंडितोंके ऐसे अनुमान पढते हैं तब हमें आश्चर्य होता है कि इतने अल्प आधार से इतनो अनुमानों की बडी छलांगें ये लोग क्यों मारते हैं ? क्या किसी न किसी प्रकार ऋषियोंके मथ्थेपर गौ काटकर खाने का दोष लगाना ही इन्हें मंजूर है वा अन्य कोई अंदर की बात है?

" अतिथि-ग्व " शब्दके तीन ही अर्थ संभवनीय हैं, एक 'अतिथिके पास जाना; ' दूसरा "अतिथि जिसके पास जांय, " और तीसरा " अतिथिके लिये जिसकी गौवें हैं ऐसा गृहस्थी मनुष्य।" यह तीसरा अर्थ इस समय तक किसीने भी स्वीकृत किया नहीं है। तथापि यह अर्थ माननेपरभी अतिथि के लिये गौ काट-नेका भाव इससे किस प्रकार निकल सकेगा? अतिथिसत्कार के लिये, दूध, घी आदि अतिथिको समर्पण करनेके लिये जिसने गौएं रखी हैं ऐसा गृहस्थ, इतना इसका अर्थ होना संभव है। इससे अधिक अनुमान निकालना बडा दोषपूर्ण है ।

(२४) यज्ञमें मांसका अर्पण।

" यज्ञमें अन्य हवनके समान मांसका भी समर्पण होता था, देवताओं के उद्देश्यसे मांस दिया जाता था और यज्ञशेष मांस ऋत्विज लोग खाते थे " ऐसा कथन मांस शब्दके ऊपर लिखते हुए म०मैकडोनेल और कीथ महोदयोंने किया है—

" The eating of flesh appears as something quite regular in Vedic texts, which show no trace of the doctrine of AHIMSA or abstaining from injury to animals. For example, the ritual offerings of flesh contemplate that the Gods will eat it, and again the Brahmins ate the offering, (Vedic Index Vol. II page 145.)

अर्थात्-"वैदिक सूक्त देखनेपर ऐसा स्पष्ट प्रतीत होता है कि मांस खाना तो एक सर्व साधारण बात थी, उस समय अहिंसा का सिद्धांत प्रचलित नहीं हुआ था, इसका उदाहरण यह है कि यज्ञमें मांसकी आहुतियां देनेका मतलब यही हो सकता है कि देवता उसे खांय और ब्राह्मण तो यज्ञसे बचा हुआ खाते ही थे।"

इस विधान में निम्न लिखित बातें हैं-

(१) वैदिक सूक्तोंमें अहिंसा का सिद्धांत नहीं है,

(२) वैदिक समयमें मांस खाना तो एक सर्व साधारण बात थी,

(३) यज्ञमें मांस की आहुतियां दी जाती थीं,

(४) मांसाहुति देनेका भाव देव उन मांस की आहुतियोंको खाते थे यही था,

(५) पश्चात् ऋत्विज् लोग ब्राह्मण उस मांसको खातेभी थे ।

यह पांच विधान उक्त लेखमें हैं, इस लिये इनका विचार करना आवश्यक है। पहिले यज्ञमें जो मांस का हवन आजकल होता है वह उत्तर वेदी में होता है और वह वेदी पीछेसे यज्ञमें घुस गई है यह बात हमने इससे पूर्व ही बताई है । यदि वह बात मानी जाय तो ये पांचों के पांचों विधान स्वयं गिर जाते हैं, तथापि वह बात ध्यानमें रखते हुए इस बात की खोज हमें अधिक करनी चाहिये । प्रथम हम देखेंगे कि हवनमें मांस की आवश्यकता समझी जाती थी या नहीं, इस विषयमें निम्न लिखित वचन बडा बोधप्रद हो सकता है-

पुरुषं वै देवा अग्रे पशुमालेभिरे तस्यालब्धस्य मेधोऽपचक्राम । सोऽश्वं प्रविवेश । तेऽश्वमालभन्त । तस्यालब्धस्य मेधोपचक्राम स गां प्रविवेश। ते गामालभन्त। तस्यालब्धाया मेधोऽपचक्राम सोऽविं प्रविवेश । तेऽविमालभन्त । तस्यालब्धस्य मेधोऽपचक्राम सोऽजं प्रविवेश । तेऽजमालभन्त तस्यालब्धस्य मेधोऽपचक्राम स इमां पृथिवीं प्रविवेश । तं खनन्त इवान्वीषुस्तमन्वविन्दन् । तौ इमौ व्रीहियवौ। स यावद्वीर्यवद्ध वा अस्य एते सर्वे पशव आलब्धाः स्युः तावद्वीर्यवद्धास्य हविरेव भवति ।

शतपथ ब्राह्मण १ । २ । ३ । ६-९

पशुभ्य मेद उदक्रामंस्तौ व्रीहिश्चैव यवश्च भूतावजेयाताम् ॥

ऐतरेय ब्रा० २ । २ । २१

इन वचनोंका तात्पर्य यह है— ' पहिले देवोंने मनुष्य को काटा तब उनको पता लगा कि उसमेंसे यज्ञीय भाग भाग गया और घोडेमें छिप गया है, तब उन्होंनें घोडेको काट कर देखा, तो उनको विदित हुआ कि वहांसेभी यज्ञीय पदार्थ भाग गया और गायमें

जाकर बैठ गया, तब उन्होंने गाय को काट डाला, तो भी उनको पता लगा कि वहांसे भी यज्ञका भाग भाग गया और मेढेमें घुस गया, तो उन्होंने उसको काटकर देखा तो वहांसे भी वह भाग गया और बकरेमें छिप गया, तो उन्होंने बकरेको काटा, तो वह यज्ञीय पदार्थ भाग गया और भूमिमें घुस गया और जौ तथा चावल रूपसे ऊपर आगया। इस लिये चावल और जौ का हविही पूर्ण वीर्यवान् है क्योंकि यहां वह यज्ञका भाग स्थिर रहा।'

इसका तात्पर्य स्पष्ट है कि पशुको काटनेपर उसके मृतदेहमें हवनके योग्य पदार्थ रहता नहीं है, धान्य में वह सदा स्थिर रहता है, इस लिये हवन धान्यका ही होना चाहिये।

आजकल कई हिंदु वृष्टिके चार मास 'हविष्यान्न' का भक्षण करते हैं, इसमें मांस नहीं होता है, चावल, जौ, गेहूं, मूंग आदि पदार्थ ही होते हैं। यदि मांस हविष्यमें पहिलेसे होता तो इस हविष्यान्नमें उसकी गिनती हो जाती। परंतु किसी भी स्थानपर हविष्यान्न में मांस नहीं लिया जाता है।

पूर्वोक्त ब्राह्मण ग्रंथके वचन में स्पष्ट बताया है कि प्राणियोंके शरीर काटते ही उनमेंसे हवनीय पदार्थ भाग जाता है, उस मुर्दे शरीर में यज्ञीय पदार्थ मिलता नहीं है, यदि किसी स्थानपर हवनके योग्य पदार्थ मिलता है तो चावल, जौ आदि धान्य में ही मिलता है। यह वचन बडा बोधप्रद है। पाठक इसका खूब विचार करें।

यज्ञमें मांस की आहुतियां दी जाती थी इसविषयमें इतना कथन पर्याप्त है; अब देव मांस खाते थे या नहीं इस विषयमें कुछ विचार करना आवश्यक है-

(२५) देवोंके नाम।

देवोंके नामोंमें कई नाम ऐसे हैं कि जो निर्मांस भोजी ही देव थे ऐसा निश्चय कराते हैं, देखिये—

१ अ-मृतान्धसः = (अ-मृत-अन्धसः) मरा हुआ अन्न न खानेवाले। मृत शब्द मुर्देका वाचक है, इस लिये मुर्देका अन्न न खानेवाले यह इसका अर्थ होता है।

२ आज्यपाः देवाः = घी पीनेवाले देव। यह वर्णन वा० यजुर्वेद अ. २१ मंत्र४०में देखने योग्य है।

ये देवोंके नाम विचार करने योग्य हैं, ये देव निर्मांस भोजी थे यह बात स्पष्टरूपसे बताते हैं। देवों का एक भी नाम ऐसा नहीं है कि जो उनका मांसभोजी होना सिद्ध कर सके;

(३) हविर्भुजः= हविष्यान्न खानेवाले। हविष्यान्न का अर्थ म. मॉनियर वुइलियमने अपने कोश में यह दिया है- Food fit for an oblation (esp. rice or other kinds of grain clarified butter &c.) चावल तथा अन्य धान्य, घी आदि।

ये देवोंके वैदिक नाम देखिये और वेदमें आये राक्षसों के नामोंकी भी तुलना इन नामोंके साथ कीजिये। तो पता लग जायगा कि कौन मांसभोजी हैं और कौन नहीं है-

(२६) राक्षसोंके नाम।

१ क्रव्याद् = (क्रव्य + अद्) मांस खानेवाला,

२ पिशाच् = (पिशित + अश्) रक्त पीनेवाला,

३ असुतृप् = (असु + तृप्) दूसरोंके प्राण लेनेसे तृप्त होनेवाला। किंवा प्राणोंकी तृप्ति करने वाला।

४ गर्भाद = (गर्भ+ अद) गर्भ खानेवाला।

५ अण्डाद = (अण्ड+अद्) अण्डे खानेवाला।
६ मांसाद = (मांस+अद्) मांस खानेवाला।
७ कौणपः = (कुणपं) प्रेत खानेवाला।
८ आशरः = हिंसा करनेवाला।
९ कर्बुरः = हिंसक।

ये नाम राक्षसोंका मांस भोजी होना स्पष्ट सिद्ध कर रहे हैं। देवों के नामों में ऐसी व्यक्त हिंसा क्यों नहीं और राक्षसोंके नामोंमें स्पष्ट हिंसा क्यों है, इसका विचार करने से स्पष्ट पता लग जायगा कि देव मांस खानेवाले थे यह पक्ष सिद्ध होना कठिन है। हम जानते हैं कि कई आधुनिक कथाएं ऐसी हैं कि जिनमें देवों का मांसभक्षक होना बताया है, परंतु यदि देव सचमुच प्रारंभसे मांसभक्षक होते तो उनके नामों में मांसभक्षक एक तो नाम अवश्य आता, परंतु देवों का एक भी नाम ऐसा नहीं है, जिससे देव मांसभक्षक होनेकी बात सिद्ध हो सके। और साथ साथ राक्षसों के नाम तो स्पष्ट उनका मांसभक्षक होना सिद्ध कर रहे हैं।

यह देखने से पता लग जायगा कि देवों के उद्देश्यसे मांस की आहुतियां देनेकी संभावना सिद्ध होना कठिन है। अब अग्निके नाम देखिये।

१ क्रव्यात् = मांसभक्षक,
२ क्रव्यवाहनः = मांस लेजाने वाला,
३ विश्वाद् (विश्व + अद्)=सर्वभक्षक (ऋ०१० । १६ । ६)
४ उक्षान्नः (उक्षा + अन्नः) = उक्षा (बैल) खानेवाला,
५ वशान्नः (वशा + अन्नः)= गौ खानेवाला
६ घृतान्नः = घी खाने वाला,
७ सर्पिरन्नः = " "

ये अग्निवाचक शब्द हैं । अन्य भी बहुतसे शब्द हैं, परंतु उन सबका विचार इस समय करनेकी कोई आवश्यकता नहीं है। इन सात शब्दों में पहिले दो शब्द राक्षस वाचक ही हैं। अर्थात् इन शब्दोंका जैसा राक्षस अर्थ होता है, वैसाही अग्नि भी अर्थ है। दोनों का शब्दार्थ ' मांसभक्षक' ही है इसीलिये ये शब्द अग्नि पर भी लगते हैं और राक्षसपर भी लगते हैं। '

यहां युरोपीयनों की युक्ति यह है कि " जिस कारण अग्निके नामोंमें (१) क्रव्याद्, (२) क्रव्यवाहन, (३) उक्षान्नः, (४) वशान्नः ये शब्द हैं, उस कारण यह बात सिद्ध है कि अग्निमें मांसकी आहुतियां डाली जाती थीं और हुतशेष मांस खाया जाता था। "

यह युरोपीयनोंकी युक्ति ठीक नहीं है क्योंकि अग्निके नामों में जो क्रव्याद्, क्रव्यवाहन आदि शब्द आगये हैं, वे यद्यपि अग्निमें मांस जलाने की बात बताते हैं तथापि वह यज्ञमें आहुति डाले हुए मांस के जलाने की नहीं है। क्रव्याद् अग्निके विषयमें निम्न लिखित मंत्र देखने योग्य है —

(२७) मांसभक्षक अग्नि।

क्रव्यादमग्निं प्रहिणोमि दूरं यमराज्ञो गच्छतु रिप्रवाहः।
इहैवायमितरो जातवेदा देवेभ्यो हव्यं वहतु प्रजानन् ॥

ऋ. १० । १६ । ९

१ (क्रव्यादं अग्निं दूरं प्रहिणोमि) = मांसभक्षक अग्निको मैं दूर भेजता हूं।

२ (अयं इतरः जातवेदः देवेभ्यो हव्यं वहतु)=यह दूसरा जातवेद अग्नि है वह देवोंके लिये हवि लेजावे।

इस मंत्रमें दो अग्नि कहे हैं (१) एक क्रव्याद् अग्नि (२) और दूसरा जातवेद अग्नि जिसमें हवन किया जाता है। पहिला मांसभक्षक अग्नि दूर करना है और दूसरा धान्यभक्षक अग्नि पास रखना है। यह मंत्र विचार करने योग्य है। क्रव्याद् अर्थात् मांसभक्षक अग्नि वह है कि जिससे मुर्दे- प्रेत-मृत शरीर-जलाये जाते हैं। यह मुर्दे जलाने वाला अग्नि मनुष्यके पास रहना नहीं चाहिये। परंतु मनुष्यों की बस्ती से बहुत दूर रहना चाहिये। अर्थात् मृत शरीर का दाह करनेका स्थान मनुष्य वस्तिसे दूर होना चाहिये।

दूसरा अग्नि जो देवोंके पास हव्य ले जाता है वह धान्यभक्षक अग्नि घर घरमें, ग्राम ग्राममें रहना चाहिये।

इन दो अग्नियोंका विचार करनेसे पता लगता है कि मुर्दें जलानेके कार्य में प्रयुक्त होनेके कारण ही अग्नि का नाम क्रव्याद् (मांसभक्षक) हुआ है। इससे मुर्द्रें जलाने की वैदिक प्रथा सिद्ध होती है। दूसरा अग्नि होम हवन के लिये प्रयुक्त होता है, इसमें मांस नहीं डाला जाता, परंतु (हव्यं वहतु) हव्य, हविर्द्रव्य, हवनीय पदार्थ-अर्थात् धान्यादि पदार्थ-डाले जाते हैं। यदि इसमेंभी मांस डाला जाय तो दो अग्निमें भेद ही क्या होगा? इसलिये देवोंको हव्य देनेवाले अग्निमें मांस नहीं डाला जाता, इसका नाम जातवेद अग्नि है। यही निर्मांस भोजन करनेवाला अग्नि समझिये।

प्रेत जलानेवाला अग्नि मांस खानेवाला होता है यह बात स्पष्ट ही है। इसलिये यदि ‘ क्रव्यात् अग्नि ’ शब्द से मांस-भोजन सिद्ध करना हो तो वह मुर्देका मांस होगा। वास्तव में देखा जाय तो मरे हुए मनुष्यका प्रेत जलानेवाले अग्नि का नाम

क्रव्याद होनेसे वह मांस मनुष्यके भक्षण के लिये समझना असंभव है।

(२८) अन्त्य यज्ञ।

वैदिक धर्मके अनुसार मनुष्यका सब आयुष्य मिलकर एक बडा भारी यज्ञ है अर्थात् अपने संपूर्ण जीवन का सब की भलाई के लिये यज्ञ करना है, इसमें मनुष्यके प्रेतकी अंतिम इष्टि होती है। यह अंतिम आहुति-अपने शरीरकी अंतिम आहुति-डाल दी, तो जीवनभर चलनेवाले यज्ञकी पूर्णता हुई। यहां जीवन यज्ञमय करनेकी कितनी उच्च कल्पना है यह पाठक देखें। अर्थात वैदिक धर्मकी दृष्टिसे मुर्देका जलाना केवल उसकी राख करना नहीं है, परंतु वह एक अंतिम यज्ञ है और इसमें पूर्णाहुति होनेके कारण बडा भारी यज्ञ है। प्रज्वलित अग्निमें अपने देहकी ही अंतिम आहुति डालनी होती है, इस दृष्टिसे देखा जाय तो अग्निमें मांस की-अपने संपूर्ण देहकी-आहुति डालना तो वैदिक धर्म के अनुकूल है ही परंतु क्या इसको समांसयज्ञ कहा जा सकता है? आजकल समांस यज्ञ का जो तात्पर्य है, घोडा गाय बैल के मांसकी आहुतियां वेदीपर चढाना माना जाता है। वह इस अंतिम इष्टीसे सर्वथा भिन्न है। इस अंतिम इष्टिमें मनुष्य-देहकी या किसी अन्य देहकी जो आहुति डाली जाती है वह खानेके लिये डाली नहीं जाती। परंतु मुर्दा घरमें रखना नहीं होता है, इसलिये उसको जलाया जाता है और यह अंतिम यज्ञ माना गया है। इसलिये यदि कोई कहे कि यज्ञमें मांस प्रयुक्त होता है तो वह सत्य है, परंतु जिस भावमें वह कहा और समझा जाता है वह सत्य भाव नहीं है। अतः हम कहते

हैं कि अग्निका नाम ' क्रव्याद् ' होनेपर भी उससे मनुष्यके मांस भक्षणके विषयमें पुष्टि नहीं मिल सकती ।

वैदिक समयमें मुर्दे जलानेकी प्रथा होनेके कारण अग्निका नाम ' क्रव्याद ' हुआ है । सर्व साधारण रीतिसे मनुष्य मरते हैं, उनके मुर्दे जलाये जाते हैं, युद्धोंमें घोडे, बैल आदि अनेक पशुभी मनुष्योंके साथ मरते ही हैं, इन सबको वैदिक समयमें जलाया जाता था । यह प्रथा देखनेसे पाठक जान सकते हैं कि अग्नि का नाम क्रव्याद् होनेपर भी उससे मांसभक्षण सिद्ध नहीं हो सकता ।

युरोपीयन पंडितों का ख्याल है कि मुर्दा जलाने के पूर्व गौके मांससे लपेटा जाता था, वे कहते हैं-- ' The ritual of the cremation of the dead required the sloughter of a cow as an essencial part, the flesh being used to envelop the dead body " (Vedic index P. 147) अर्थात् 'अंत्येष्टि संस्कारके लिये गायकी कतल करना आवश्यक बात थी, क्योंकि गायके मांससे मुर्दा लपेटा जाता था । ' इसके प्रमाण के लिये उन्होनें निम्न लिखित मंत्र दिया है-

अग्नेर्वर्म परि गोभिर्व्ययस्व सं प्रोर्णुष्व
पीवसा मेदसा च । नेत्त्वा धृष्णुर्हरसा जर्हृषाणो
दधृग्विधक्ष्यन्पर्यङ्खयाते ॥ ऋ. १० । १६ । ७

" (अग्नेः वर्म) अग्निकी ज्वालाएं (गोभिः) गौओंसे (परिव्ययस्व) बचाओ, (पीवसा मेदसा च) गाढी चरबीसे (सं प्रोर्णुष्व)ठीक प्रकार आच्छादित करो। ऐसा करनेसे (हरसा धृष्णुः) तेजसे घर्षण करनेवाला (जर्हृषाणः) आनंदित होनेवाला (दधक् वि धक्ष्यन्) भस्म करनेवाला अग्नि (त्वा न इत् पर्यंखयाते) तुझे घेरकर नहीं जलावेगा ।"

यहां "गोभिः शब्द है इसलिये युरोपीयन लोग गौके मांस से मुर्देको लपेटनेका अनुमान करते हैं और ऐसे कार्य के लिये गौको काटना आवश्यक समझते हैं, भारतीय पंडितभी ऐसा ही मानते हैं!! परंतु यहां विचारणीय बात यह है कि इस मंत्रमें "गोभिः" शब्द बहुवचन में है, इसका अर्थ होता है "कमसे कम तीन गौओंसे" मनुष्यके एक मुर्देको मांस लपेटना हो तो क्या उस कार्य के लिये कमसे कम तीन गौवें आवश्यक होगीं? क्या यदि यह कर्म गोमांससे करना हो तो एक गौसे नहीं होगा? मनुष्यके शरीर के तीन चार गुणा गायका शरीर होता है, अतः मनुष्यके एक मुर्देको वेष्टन करनेके लिये कमसे कम तीन या अधिक गौओंकी आवश्यकता नहीं है।

इससे पाठकोंको पता लग जायगा कि यहां कुच्छ बात और ही होगी। "गौ" शब्दसे दूध, दही, घी, चमडा आदि पदार्थ लिये जाते हैं इस विषयमें इस से पूर्व बताया जा चुका है और यह बात युरोपीयन भी मानते ही हैं। इसलिये देखना चाहिये कि कौनसी चीज के लिये तीन या तीनसे अधिक गौओंकी आवश्यकता अंत्येष्टि कर्म में पड सकती है और जो कार्य केवल एक ही गौसे निभ नहीं सकता।

मांस, चर्म, चर्बी आदि एक गौकी पर्याप्त होना संभव है, परंतु केवल घी ही एक ऐसा पदार्थ है कि जो तीनसे अधिक गौवोंसे लेना आवश्यक होगा। मृत शरीरको अग्नि देनेके पूर्व उसको घीसे लिपटा देना आवश्यक ही होता है। जो लोग हवन करते हैं उन को पता है कि अग्निमें डालनेवाले हविर्द्रव्य पर घी छोडा जाता है, समिधाओं को भी घी लगा कर अग्निमें छोडी जाती हैं, फिर इस 'अंत्य हवन' में इस शरीर रूपी अंतिम समिधाको डालनेके समय घीकी आवश्यकता क्यों नहीं होगी? आजकल

समिधाएं घीमें भिगोने के लिये जितना घी चाहिये उतना नहीं होता इस लिये समिधाओंपर दो चार बूंद छिडका देते हैं, परंतु शरीररूपी श्रेष्ठ समिधा अंत्य यज्ञमें डालनेके समय, वैदिक समयमें, कि जिस समय घीकी ऐसी न्यूनता नहीं थी, शरीर भर घी डाला जाता होगा इसमें क्या आश्चर्य है? घीसे विष दूर होता है, शरीर जलनेके समय विषयुक्त वायु हवामें फैलते हैं, उनको शुद्ध करनेके लिये जितना घी डाला जाय उतना आवश्यक ही है इससे वायुशुद्धि भी होती है। शरीरके तोलके बराबर घी अंत्येष्टिमें बर्तना चाहिये ऐसी वैदिक प्रथा थी। आजकल यह कार्य दसपांच तोले घीसे हिंदू करते हैं, परंतु केवल आर्यसमाजी ही अंत्येष्टि के लिये बहुत घी बर्तते हैं।

'गौ' शब्दसे गौसे उत्पन्न होनेवाला घी लियाही जाता है, यह कोई नयी बात नहीं है और इसको सब एकमतसे मानते हैं। ऐसा होते हुए भी उक्त मंत्र से गौ काटनेका अनुमान निकाला जाता है यह बडा आश्चर्य है। गौके बहुवचन की ओर विद्वानों का ध्यान आकर्षित नहीं हुआ और इस कारण यहां के अर्थका अनर्थ हुआ यह स्पष्ट बात है। अस्तु।

इस मंत्रके देखनेसे भी गौ काटनेकी कल्पना वैदिक जमानेमें थी ऐसा सिद्ध नहीं हो सकता। एक बात यहां ध्यानमें धरनी चाहिये, वह यह है कि, आज कल के समान वैदिक समयमें गौ सुपूजनीय मानी जाती थी; परंतु आज कल मृत गौके चर्म, हड्डी, चर्बी आदि पदार्थोंका कोई उपयोग नहीं करता, वैदिक समयमें मरे हुए गौके देहसे जितने उपयोगी पदार्थ हो सकते हैं बनाये जाते थे। आजकल हिंदुओंमें एक जाती है कि जो इस व्यवसायको कर सकती है, परंतु ठीक रीतिसे यह व्यवसाय आजकल नहीं किया जाता। अतः चमडा, हड्डी, चर्बी

आदि पदार्थ व्यर्थ नाशमें जाते हैं ! पाठक विचार करें और इस रीतिसे गौके मृत शरीर से जो हो सकता है आर्थिक लाभ प्राप्त करने के व्यवहार से वंचित न रहें। अस्तु। इस प्रकार घनी चर्बीके गोले मृत शरीर पर रखे जाते थे यह बात पूर्वोक्त मंत्रके '(पीवसामेदसा संप्रोर्णुष्व) घनी चर्बीसे मुर्देको आच्छादित करो' इस भागमें स्पष्ट शब्दोंसे कही है। अर्थात् यह मंत्रभी गायका वध करनेकी आज्ञा नहीं दे रहा है। युरोपीयन लोग और उनके अनुयायी हमारे भारतीय भाई जिसको परिपुष्ट प्रमाण समझते हैं वह ऐसे ही कमजोर प्रमाण होते हैं !!!

(२९) यज्ञमें पशु।

यज्ञमें मनुष्य जो देवताओं के उद्देश्यमें देता है वह स्वयं खाता है, ऐसा मान कर युरोपीयन पंडित लिखते हैं–

'The usual food of the Vedic Indian, as far as flesh was concerned, can be gathered from the list of sacrificial victims: what man ate he presented to Gods--that is, the sheep, the goat, and the ox. (Vedic Index Vol. II. P. 143)'

अर्थात् – 'वैदिक समयका हिंदी मनुष्य कौनसा मांस खाता था यह देखना हो तो यज्ञिय पशुओं की नामावली देखें; जो मनुष्य खाता है वह देवताको समर्पण करता है अर्थात् मेंढी, बकरी, बैल।' इसका मतलब यह है कि ये पशु मार कर खाये जाते थे। ये युरोपियन लोग मानते हैं कि अश्वमेधमें घोडा मारा जाता था, परंतु इनका कथन है कि वैदिक समयके आर्य अधिक तर घोडेका मांस नहीं खाते है। यह युरोपीयनों की कृपा है कि उन्होंने घोडेके मांससे आर्योंको बचाया। नहीं तो जिसका यज्ञ

होता था वह खाया जाता था ऐसा माननेपर और यज्ञ-प्रक्रियामें घोडेको काटनेकी प्रथा थी ऐसा माननेपर युरोपीयनोंके सामनेसे आर्योंका बच जाना कठिन बात थी। परंतु 'वैदिक इन्डैक्स' पुस्तकमें घोडेका मांस खानेकी प्रथा नहीं थी ऐसा स्पष्ट लिखा है इस लिये हम उनके धन्यवाद गाते हैं। अब विचार करना है कि जिसका यज्ञ होता था वह खाया जाता था ऐसा तत्त्व माननेपर क्या क्या आपत्ति आती है। नरमेध में नरमांस और अश्वमेधमें अश्वमांस के विषयमें युरोपीयनों की संमति है कि इनका मांस नहीं खाया जाता था। यदि यह अपवाद मान लिया जाय तो मानना पडेगा कि देवताओं के उद्देश्यसे पशुसमर्पण करनेपर भी उसके मांस खानेका नियम नहीं है। तथापि क्षणभर के लिये मनुष्य और घोडेको हम एक ओर करते हैं; तो शेष रहे हुए यज्ञमें समर्पित होने वाले पशुआदिकों को निःसंदेह खाया जाता था ऐसा नहीं दिखाई देता। देखिये-

वाचे प्लुषीन्। चक्षुषे मशकान्। श्रोत्राय भृङ्गाः॥

यजु. २४।२९

'वाणीके लिये दीमक, आंखके लिये मक्खियां, और कानके लिये भ्रमरों का आलंभन करते हैं।'

"जो देवता के उद्देश्यसे दिया जाता था वह वैदिक आर्योंका अन्न था" यदि यह म० मैकडोनेल और कीथ का सूत्र सच्चा माना जाय तो 'दीमक, मक्खियाँ और भ्रमर' भी वैदिक आर्य खाते थे ऐसा मानना पडेगा!!! युरोपीयनों के अनुमान कितने भयंकर होते हैं इसका यह एक नमूना ही है। जो भारतीय भाई युरोपीयनोंके पीछे अपना कदम रखते हैं, उनको संभालकरही उनके पीछे जाना चाहिये। और देखिये—

ब्रह्मणे ब्राह्मणमालभते, क्षत्राय राजन्यम्
नृत्ताय सूतं, धर्माय सभाचरम् ॥ यजु० ३०।६

" ब्रह्मदेवता के लिये ब्राह्मण, क्षत्रदेवके लिये क्षत्रिय वीर, नृत्य देव केलिये सूत, धर्म के लिये सभासद का आलंभन किया जाता है ।"

यहां भी ब्राह्मण, क्षत्रिय, सूतऔर धर्म सभा के सभासदों का बलि उक्त देवताओं के उद्देश्यसे करने का विधान माना जाय तो " ब्राह्मण, क्षत्रिय, सूत और धर्मसभाके सदस्योंका मांस खानेकी प्रथा थी " ऐसा माननेमें क्या हर्ज होगा ?

देवताओं के उद्देश्यसे जो चढावा होता है वह उनका भक्ष्य अन्न था, यह युरोपीयनोंका सूत्र माना जाय तो ब्राह्मण से लेकर दीमक तक कोई भी प्राणी बचेगा नहीं। यह बात देखकर भी ऐसे अनुमान निकालनेसे ये लोग हटते नहीं और हमारे लोग युरोपीयनोंके अनुमान अंधविश्वाससे मानते हैं? " आलम्भन क्रिया का अर्थ देवताके उद्देश्यसे दी हुई भेंट, या वध " यह भाव वास्तविक नहीं है। उपनयनमें "हृदयालंभन" विधिमें हृदयका वध अर्थ नहीं है प्रत्युत हृदयस्पर्श, हृदयकी प्राप्ति ये अर्थ लिये जाते हैं। अथर्व वेद ७।१०९।७ में " अक्षान् यद्‌बभ्रूनालभते" यह वाक्य है उसमें 'भूरे रंगवाले पासोंका वध' इष्ट नहीं है परंतु 'स्वीकार' अर्थ इष्ट है। 'लभ्' धातुका अर्थ 'प्राप्ति' है। "आलभ्" का अर्थ "अत्यंत प्राप्ति" यही मुख्य अर्थ है। आगे इसका अर्थ वध हुआ। अब यह अर्थ लेकर पूर्वोक्त मंत्रोंका अर्थ देखिये-

१ ब्रह्मणे ब्राह्मणं आलभते = ज्ञानके लिये ज्ञानी को प्राप्त करता है।

२ क्षत्राय राजन्यं ,, = शौर्य के लिये शूर को प्राप्त करता है।

३ नृत्ताय सूतं आलभते = नाचनेके लिये सूत को बुलाता है।
४ धर्माय सभाचरं ,, = धर्मके ज्ञान के लिये धर्म सभा के सदस्यके पास जाता है।

इसके अर्थ यूरोपीयन और ही समझते हैं जैसा देखिये-
"For Brahman he binds Brahman to the stake"
अर्थात् "ब्रह्मदेवता के लिये वह ब्राह्मण को यूपके साथ बांध देता है।" पशु यूपके साथ बांधनेका तात्पर्य यही समझा जाता है कि आगे उसका वध करके उसके मांसका हवन हो। सरल अर्थ छोडकर तेढा मार्ग अवलंबन करनेसे कितना अर्थका अनर्थ हो सकता है यह बात यहां स्पष्ट विदित हो रही है। तथा और देखिये-

धूम्रान्वसन्तायालभते श्वेतान् ग्रीष्माय कृष्णान्वर्षाभ्यो अरु-
णान् पशरदेषतो हेमन्ताय पिशङ्गान्शिशिराय॥
यजु. २४। ११

"धूम्रवर्णवालोंका वसन्त ऋतु के लिये, श्वेत का ग्रीष्मके लिये, कालों का वर्षाके लिये, अरुण वर्ण वालों का शरदृतुके लिये, नानारंग युक्तोंका हेमन्तके लिये और लालयुक्त कपिल वर्णवालोंका शिशिरऋतुके लिये आलंभन करता है।"

यहां पशुओंका वध उस ऋतुके निमित्त समझा जाता है। परंतु पाठक कृपया यहां एक सर्व साधारण नियम ही देखें कि "गर्मीके दिनों में सफेद रंगके कपडे सुख देते हैं और सर्दी के दिनों में काले या नसवारी कपडे सुख देते हैं।" यह हर एक मनुष्य जानता है और इसी प्रकार बर्तता भी है। इस वेद मंत्रमें किस ऋतुमें कौनसे वर्ण को महत्त्व देना चाहिये यह बात लिखी है। कपडे लेनेके समय भी इस मंत्रका उपदेश ध्यानमें रहेगा तो भी लाभ होगा। इस सामान्य नियम को कई पंडित पशुपरक लगाते

हैं इसलये उनकी बुद्धिकी किस रीतिसे प्रशंसा की जाय यह हमारे समझ में नहीं आता है। इस यज्ञ प्रकरण की पशुगिनती का तत्त्व समझाने के लिये पाठकों के सन्मुख कुछ मंत्र रख देते हैं-

शार्दूलाय रोहित् । ऋषभाय गवयी ।

यजु. २४।३०

'व्याघ्रके लिये हिरन। बैलके लिये गाय।' पाठक थोडा विचार करें कि उसी पशुयज्ञके अध्यायमें ये मंत्र हैं। क्या यहां भाव है? व्याघ्र के लिये हिरन खानेके लिये देना है और बैलके लिये गाय प्रजा उत्पत्ति करनेके लिये देना है। पाठक यहां "आलंभ" शब्दका अर्थ अनुभव करें। पास पासके दो मंत्रोंमें भावार्थका इतना फर्क है। यदि यह अर्थभेद न देखा जाय तो अर्थ भी बन नहीं सकता। जिस बातके लिये शेर के सामने हरणी रखी जा सकती है उसी अर्थ के लिये बैलके सामने गाय रखी नहीं जा सकती। यदि इतना विचार पाठक करेंगे तो उनके सामने यह बात स्पष्ट हो जायगी कि जो समर्पित पशुओंका वध ही एक अर्थ सर्वत्र लेना है वह भ्रम ही है।

यहां देखा जाय तो 'बैलके लिये गाय समर्पित' करना लिखा है, परंतु वृषभदेव (बैलदेव) तो मांसभक्षक ही नहीं है फिर उसके लिये गोमांस क्या कामका होगा? इसलिये अर्थ करनेवाले युरोपीयन पंडित और तदनुसार चलनेवाले भारतीय विद्वान थोडा बुद्धीसे काम लेंगे तो अच्छा होगा। और देखिये—

मनुष्यराजाय मर्कटः।

य. अ. २४। ३०

'मनुष्यों के राजाके लिये बंदर' लिखा है। खानेके लिये या खेलने के लिये या उपदेश लेनेके लिये यह बात गुप्त है। राजा बंदर

के समान न बने, मनन शील बने। बंदरकी हलचल जैसी व्यर्थ होती है वैसी राजाकी न हो। यह उपदेश लेने के लिये राजगृहमें बंदर रहे। यदि इससे कोई यह अर्थ निकाले की राजा केवल बंदर काही मांस खाये और किसी जानवरका न खाय या धान्य भी न खाय तो भी अर्थका अनर्थ ही होगा। इस विषयमें और देखिये–

शार्दूलो वृकः पृदाकुस्ते मन्यवे।

य. अ. २४। ३३

'व्याघ्र, भेडिया और सांप ये तेरे क्रोधके लिये अर्पण हैं।' क्या यहां क्रोध देवकी प्रीतिके लिये व्याघ्र, भेडिया और सांप Tgier, wolf, viper) बलि दिये जाते थे और बलि देकर यज्ञशेष मांस खाया जाता था? वैदिक आर्य जो देवताओंके उद्देश्यसे समर्पित करते थे वही खातेथे यह युरोपीयनोंका अनुमान किस किस अनर्थ में पाठकोंको डालेगा, इसकी कोई हद नहीं है। क्रोधके लिये येही पशु क्यों हैं अन्य क्यों नहीं हैं? क्या इसका विचार नहीं होना चाहिये? वास्तव में वेदको इस मंत्र भाग के द्वारा यह उपदेश देना है कि जो कार्य क्रोध शरीरमें करता है वही देशमें शेर, भेडीया और सांप करते हैं। जिनको अपने अंदर के क्रोधका नाशक धर्म समझमें नहीं आता वे इस उदाहरण से समझें कि व्याघ्र, भेडिया और सांप जिस प्रकार अन्य प्राणियों का घातपात करते हैं उस प्रकार ही शरीर में क्रोध जीवनतत्त्वका नाश करता है।

इतने मंत्रभाग पर्याप्त हैं। इतने उदाहरणोंका ही विचार पाठक करेंगे तो उनको पता लग जायगा कि 'आलभते' क्रियाका अर्थ सर्वत्र "वध" करना कितना अनर्थकारक है और यहां के इस पशुसमर्पण अध्यायके मंत्रोंका भाव कुछ और ही है। इस

अध्यायसे वैदक आर्योंके मांसभोजन की कल्पना होना असंभव है। यहां संपूर्ण अध्याय की संगति लगानेके लिये हमारे पास समय नहीं है, इसलिये नमूनेके तौरपर यहां थोडेसे मंत्र बताये हैं। इनके विचारसे कहनेवाली बात स्पष्ट हो जायगी और युरोपीयनोंका मत बडा भ्रामक है यह बात भी व्यक्त हो जायगी। इसलिये उनके मत मानकर उससे वैदिक आर्योंके मांसभक्षक होनेका अनुमान कोई न निकाले। वेदोंका अध्ययन हमें अपनी दृष्टिसे करना चाहिये, वेदोंके तत्त्व अपने आंखसे देखनेका अभ्यास हमको अवश्य करना चाहिये। अन्यथा " अंधोंके पीछे चलनेवाले अंधोंकी अवस्था " हमारी बन जायगी, इसलिये यहां हम पाठकोंको सावधान करते हैं।

(३०) उक्षान्न और वशान्न।

अब यह बात रही है कि अग्निके नामोंमें जो 'उक्षान्न' और 'वशान्न' शब्द आये हैं उनका तात्पर्य क्या है? युरोपीयन लोग मानते हैं कि "उक्षान्न" का तात्पर्य बैलका मांस और 'वशान्न' का अर्थ गोमांस है। जिस कारण ये नाम अग्निके लिये वेदमें आये हैं उस कारण अग्निमें ये मांस डाले जाते थे और खाये भी जाते थे। यह युरोपीयनों का मत है। अग्निके नामोंसे यदि मनुष्यके भोजन की कल्पना की जाय तो अग्निका नाम 'विश्वाद्' है उसका अर्थ "सर्व भक्षक" है। देखिये—

युवानं विश्पतिं कविं विश्वादं पुरुवेपसम्।
अग्निं शुम्भामि मन्मभिः॥ ऋ. ८।४४।२६

'मैं तरुण, जगत्पति, कवि, (विश्व +अदं) सर्व भक्षक, बहुत हलचल करनेवाले अग्निकी उत्तम विचारोंसे प्रशंसा करता हूं।' इस मंत्रमें 'विश्वादं' शब्द अग्निके लिये प्रयुक्त हुआ है। अग्नि

(विश्व) सर्व(अद) भक्षक है, इससे मनुष्य सर्वभक्षक था, वैदिक कालके मनुष्य सर्व भक्षक थे ऐसे अनुमान निकालना अयोग्य है। अग्नि सर्वभक्षक है, उसमें जो डाला जाय वह भस्म करता है, परंतु इससे यह कैसा सिद्ध हो सकता है, कि उतनी चीजें मनुष्य अवश्य खाता था। •

सप्त वृक्षों की समिधाएं अग्निमें डाली जाती हैं तो क्या इससे आम्र, खादिर, बिल्व, पलाश, वट, अर्क आदिकी लकडियां भी वैदिक आर्य खाते थे यह अनुमान हो सकता है? अनुमान निकालनेकी यह भयानक रीति होगी !! इस लिये ' उक्षान्न और वशान्न ' शब्द अग्निवाचक वेदमें हैं इससे बैल और गाय का मांस वैदिक आर्य खाते थे ऐसा कहना अनुचित होगा।

पूर्व स्थानपर ' एकदेश के लिये संपूर्ण ' का ग्रहण होता है यह बात बता दी है, उसी नियम के अनुसार " वशान्न" शब्दका अर्थ ' गौ से उत्पन्न होनेवाले दूध, घी आदि पदार्थ खाने वाला अग्नि ' ऐसा होता है। इस विषयमें और उदाहरण देखिये --

ऋ. १। १३७। १ में निम्न लिखित शब्द हैं-- ' गोश्रीताः, गवाशिरः ' ये शब्द हैं। ये ' सोम ' के विशेषण हैं। इनका शब्दार्थ है (गो) गायसे(श्रीता) मिश्रित। तथा (गो) गायसे (आशिरः) मिश्रित। इन दोनों शब्दोंमें ' गो ' शब्द है, परंतु यहां कोई भी गोमांस नहीं लेते, परंतु गायका दूध ही लेते हैं। म. ग्रिफिथने ' गवाशिरः ' का अर्थ Bent with milk अर्थात् ' दूधसे मिश्रित ' ऐसा किया है। सोम रसमें गाय का दूध मिलाकर बडा मधुर पेय बनाया जाता है यह बात सब जानते ही हैं।

श्री० सायणाचार्य जी भी 'गोश्रीताः, गवाशिरः' शब्दोंके विषयमें निम्न प्रकार भाष्य करते हैं -- "विकारे प्रकृतिशब्दः। पयोभिः मिश्रिताः। गोभिः क्षीरैः आशिरो मिश्रिताः संजाताः।" (ऋ.१।१३७।१-२) अर्थात् यहां गौ शब्दसे दूध लिया जाता है, उससे मिश्रित सोम यहां इन शब्दोंसे बताया जाता है।

सोम के साथ निम्न पदार्थोंका मिश्रण करनेकी सूचना वेद मंत्रों में दी है—

१ गवाशिरः = गो दुग्ध से मिश्रित सोम (ऋ. १। १३७। १)
२ गोश्रिता = " " " "
३ दध्याशिरः = गौके दहीसे " " "
४ यवाशिरः = भूने जौ के आटेसे मिश्रित सोम (ऋ. १। १८७। ९)
५ त्र्याशिरः = दूध, दही और भूने हुए धान से मिश्रित सोम (ऋ. ५। २७। ५) Mixed with milk, curds & parched grain. (म. ग्रिफिथ)
६ रसाशिरः = रसोंसे मिश्रित सोम। (ऋ. ३। ४८। १)

सोमके साथ कितने पदार्थ मिलाये जाते थे यह बात यहां स्पष्ट हो गई है। सोम में मांस या रक्त मिलाने की बात कहीं भी नहीं है यह पाठक अवश्य ध्यानमें धारण करें।

सोम का नाम वेद में 'उक्षा' भी आता है। उक्षा शब्दका धात्वर्थ (Sprinkling) सिंचन करनेवाला है। सोमसे रसकी बूंदें निकलती हैं इस कारण उस को उक्षा कहते हैं यह पूर्वस्थल में बताया भी है। पूर्व वेदीमें सोमरस का हवन होता है। इस लिये सोम अग्निका अन्न है यही भाव "उक्षान्न (सोमही

अन्न) " शब्द में है । बैल अर्थ यहां अपेक्षित नहीं है । क्यों कि बैलके मांस का हवन होता ही नहीं, फिर वह अग्निमें जाय कहांसे ।

अब " वशान्न " शब्द रहा है । यहां वशा यह गौवाचक शब्द है और वह उस गौसे उत्पन्न होने वाले दूध अथवा घी आदि पदार्थोंका यहां वाचक है । अग्निमें घीका हवन होता ही है। " घृतपृष्ठ " शब्द अग्नि का वाचक है । इस का अर्थ 'घी है जिस के पीठ पर ' यह शब्द अग्निमें घी का हवन होता है यह भाव स्पष्ट बता रहा है । यज्ञमें गाय का ही घी बर्ता जाता है, इस लिये अंशके लिये पूर्ण का प्रयोग अर्थात् घी के लिये गो शब्दका प्रयोग यहां हुआ है । यह 'वशान्न' शब्दका अर्थ है । यदि वेदको वशान्न शब्दसे गोमांस अर्थ अभीष्ट होता और मांसहवन इष्ट होता तो किसी न किसी स्थानपर जैसा 'घृत-पृष्ठ' शब्द वेदमें प्रयुक्त हुआ है उसी प्रकार 'मांस-पृष्ठ' शब्द वेदमें अग्निके लिये प्रयुक्त होता। परंतु वैसा एकभी शब्द प्रयुक्त नहीं है । इसलिये हम कह सकते हैं कि वेदको मांसहवन अभीष्ट नहीं है । वेद को जो मांसहवन अभीष्ट है वह केवल मुर्दा जलानेके समय अंत्येष्टी में प्रेतका ही–अर्थात् मनुष्य देहका ही—हवन होता है। किसी अन्य पशुको काटना और उसके मांसका हवन करना वेदको संमत नहीं है। जो मांसवाहक या मांसभक्षक अर्थ वाले ' क्रव्याद, क्रव्यवाहन ' शब्द अग्निके लिये वेदमें प्रयुक्त हुए हैं वे मृत शरीर जलानेके कारण प्रयुक्त हुए हैं यह बात इससे पूर्व बतलाई जा चुकी है ।

यहां कई कहेंगे कि 'वशा' शब्दका अर्थ 'जन्मसे वंध्या गौ'ऐसा है इस लिये उससे दूध, घी, दही आदि निकलनेकी संभावना नहीं है, इस कारण वशान्न शब्दका अर्थ गोमांसभक्षक अग्नि ऐसा ही करना चाहिये । परंतु यह युक्ति ठीक नहीं है । 'वशा' शब्दके

अर्थ म. आपटेके संस्कृत इंग्लिशके कोशमें निम्न लिखित प्रकार है- (A woman) स्त्री, (a wife) धर्मपत्नी, (A daughter) पुत्री, लडकी, (a husband's Sister) पतिकी बहन, (a cow) गाय, (a barren woman) वंध्या स्त्री, (a barren cow) वंध्या गौ, (a female elephant) हाथीन ।

वशा शब्दके इतने अर्थ होते हैं यह बात सब युरोपीयन भी मानते हैं, इसलिये इस विषयमें किसी को भी शंका करना उचित नहीं है। इन अर्थों को देखनेसे पता लग जायगा कि वशा शब्दका अर्थ वंध्या गौ है और उसका दूसरा अर्थ नहीं यह गलत बात है। वंध्या होनेपर वह गौ निकम्मी है इस कारण उसको काटकर खायी जाय, यह युरोपीयनोंकी युक्ति यहां उक्त अर्थके कारण सजती नहीं है। वशा गौ के दूध का वर्णन अथर्व १० । १० । ३१ में देखने योग्य है। अतः वशान्न शब्दका अर्थ गौसे उत्पन्न होने वाले दूध, घी आदिका ही वाचक है इसमें संदेह नहीं।

इससे पूर्व 'उक्षान्न' शब्दका अर्थ 'सोम अन्न' बतायाही है । क्यों कि उक्षा शब्द सोमवाचक सब कोशकारोंने माना है। उक्षा शब्द जिस प्रकार बैलवाचक होता हुआ औषधिका वाचक होता है उसी प्रकार 'वृषभान्न' शब्द में 'वृषभ' शब्द बैलका वाचक होते हुए भी वनस्पतिका वाचक है। इस विषयमें इसी लेख में पहिले कहा जा चुका है। अब यहां इसका अर्थ श्री. सायणाचार्य कैसा करते हैं वह बताना है—

वृषभान्नाय बलवर्धकानि अन्नानि यस्य सः ।

ऋ. सा. भाष्य २ । १६ । ५

'वृषभान्न शब्दका अर्थ बलवर्धक अन्न जो भक्षण करता है ।' यह वृषभान्न शब्द ऋग्वेदमें इन्द्रका वाचक आया है, इस शब्दमें बैलके मांसकी बू किसी मांसपक्षी विद्वान को आजाय

इसलिये यहां इस शब्दका सायण भाष्यमें दिया हुआ अर्थ बताया है। वृष, वृषभ, ऋषभ आदि शब्द बलवानके वाचक प्रसिद्ध हैं, इसलिये " ऋषभान्न, या वृषभान्न का अर्थ बलवर्धक अन्नका सेवन करने वाला " ऐसा होता है। वृष, वृषण, वृषभ ये सब शब्द वीर्यवानके वाचक हैं। उक्षा शब्द भी "सिंचन करनेवाला, वीर्य का सिंचन करने में समर्थ " इस अर्थ में सब कोश कारोंने दिया है। सोम रसके समान वीर्यवर्धक,बलवर्धक तथा शक्तिवर्धक कोई अन्य वनस्पति नहीं है और मांस तो निश्चयसे ही नहीं है; इसीलिये उक्षा शब्द सोम का वाचक और ऋषभ, वृषभ, ऋषभक तथा वृषभक ये शब्द ऋषभक औषधिके नाम वेदमें हैं। इन शब्दों को केवल बैलके ही वाचक मानकर इन शब्दोंसे मांसभक्षण का मत सिद्ध करना पूर्वोक्त कारण से ही अयुक्त है।

युरोपीयन पंडितोंने तथा उनके अनुगामी भारतवर्षीय विद्वानोंने वैदिक आर्योंके गोमांसभक्षक होनेके विषयमें जो भी वेद मंत्रों के प्रमाणवचन दिये थे, उन सबका यहां तक विचार हुआ। उनके प्रकाशित सब प्रमाणोंका उत्तर यहां तकके लेखमें दिया गया । उन्होंने ब्राह्मण ग्रंथोंके आधार से जो जो विधान वैदिक आर्योंके मांसभक्षक होनेके विषयमें किये हैं उनका विचार हम आगे करेंगे। क्यों कि वेदमंत्रों का विचार परिपूर्ण होनेके पश्चात् ही ब्राह्मणग्रंथोंपर किये गये आक्षेपोंका उत्तर देना योग्य है।वेदमंत्रों पर-छंदोबद्ध मंत्रभाग पर किये गये अनुमानों का विचार यहांतक किया और उनका एक भी विधान उत्तर दिये विना नहीं रखा है। इससे स्पष्टतापूर्वक सिद्ध हो चुका है कि, वेदमंत्रों के प्रमाणों से वैदिक समय के आर्यों का मांसभक्षक या गोमांसभक्षक होना सिद्ध नहीं हो सकता।

अब हमें अपना पक्ष प्रदर्शित करना है । हमारा पक्ष यह है कि वैदिक मंत्रोंका उपदेश अहिंसा विषय में स्पष्ट है, यदि वैदिक मंत्रोंसे वैदिक धर्मी केलिये कोई योग्य भोजन सिद्ध हो सकता है, तो निर्मांस भोजनहीं है, विशेष कर गौको अवध्य कहने के कारण गोमांसका भोजन वेद मंत्रों से सिद्ध होना असंभव है ।

वेदमें उपदेश देनेके तीन प्रकार होते हैं । जो कहना है वह वेद सबसे प्रथम नामों द्वारा कहता है, पश्चात् वही बात मंत्रभागों द्वारा बताता है, नंतर वही बात पूर्ण मंत्रों द्वारा कही जाती है । इस प्रकार तीन केंद्रों द्वारा जो बात कही जाय वह वेदका महासिद्धांत कर के समझी जा सकती है । अब हम अपने पक्ष की सिद्धता इसी रीतिसे कैसी होती है वह बतायेंगे-

(३१) नामोंमें गौकी अवध्यता।

गौके नाम " अघ्न्या, अही, अदिति " ये हैं और ये गौ अवध्य है यह बात स्वयं प्रकट कर रहे हैं, यह इससे पूर्व इसी लेखमें बताया है (इसी लेख का प्रकरण १८ वां देखिये) ।

यद्यपि " अ-घ्न्या " शब्द " गौका अ-वध्यत्व " बताता है और निःसंदेह बता रहा है तथापि सब यूरोपीयनों को यह भी अर्थ पसंद नहीं है । सेंट पिटर्सबर्ग के प्रसिद्ध कोशमें इस शब्दका " (Hard to overcome) काबूमें रखने के लिये कठिन " यह अर्थ अधिक योग्य माना है । म. वेबर महोदयने " अघ्न्या " शब्दके स्थानपर " अहन्या " शब्द मान कर उसका तात्पर्य " (Bright coloured like day) दिनके समान तेजस्वी रंगवाली " किया है । परंतु हम नहीं समझते कि अघ्न्या के स्थानपर अहन्या मानने के लिये क्या प्रमाण है? वा सेंट पिटर्सबर्ग कोश में पसंद किये अर्थके लिये भी प्रमाण क्या है ?

वेदका अर्थ करनेके समय शब्दोंके मनमाने अर्थ नहीं किये जा सकते। यदि किसी शब्दके इस प्रकार अनेक अर्थ होने लगे और कौनसा अर्थ स्वीकार करने योग्य है और कौनसा नहीं इस विषय में संदेह हुआ, तो अन्यत्र आधे या पूरे मंत्र भागोंमें क्या उपदेश दिया है यह देखकर ही सत्य अर्थका निर्णय करना चाहिये। अघ्न्या शब्द के तीन अर्थ इस समय हमारे सन्मुख आगये हैं—

१ अघ्न्या = (अहंतव्या) अवध्य (श्री. यास्काचार्यादि भारतीय विद्वान)

२ " = काबूमें रखनेके लिये कठिन (सेंट पिटर्सबर्ग कोश)

३ " = दिनके समान तेजस्वी (म. वेबर)

अब देखना है कि इन तीन अर्थोंमें से कौनसा अर्थ वैदिक है और कौनसा अवैदिक है। इसका निर्णय अन्य मंत्रभाग देखनेसे ही हो सकता है। इस लिये गौविषयक अन्य आज्ञाएं अब हम देखते हैं--

(३२) गोवधनिषेधक वेदवचन।

गां मा हिंसीरदितिं विराजम् ॥ ४२ ॥
घृतं दुहानामदितिं जनाय...मा हिंसीः ॥ ४९ ॥

यजु. १३

" तेजस्वी अवध्य गौ है इस लिये उसकी हिंसा न कर। अवध्य गौ है और वह जनोंके लिये घी देती है, इसलिये गौकी हिंसा मत् कर। " इस प्रकार गायकी हिंसा करना मना किया है, यह हिंसा न करनेकी आज्ञा है, अब दूसरी रीतिसे भी यही उपदेश वेदमंत्रों में दिया है वे मंत्र देखिये--

आरे गो-हा नृहा वधो वो अस्तु...... ।

ऋ. ७ । ५६ । १६

आरे ते गोघ्नमुत पूरुषघ्नम्...... ॥

ऋ. १ । ११४ । १०

" गौका वध तथा मनुष्यका वध करनेवाला दूर रहे । " यह दूसरी रीतिका निषेध है।

इन मंत्रों के देखनेसे पता लग जायगा कि गाय का वध न करना ही वेदका धर्म है, वेदका उद्देश्य गोवध न हो यही है, इसलिये " गोघ्न, गोहा " अर्थात् गोघातकों को दूर करनेका उपदेश है। गोघातक मनुष्य हो तो भी उसको दूर करना है अथवा जिस किसी अन्य रीतिसे गौका वध होता हो तो उस को भी दूर करना है। सब प्रकार से होनेवाला गोवध दूर करने की आज्ञा वेद देता है इसी लिये ' अघ्न्या " शब्दके अन्य अर्थ वैदिक अर्थ नहीं हैं, परंतु " अवध्या " यही एक अर्थ वेदमें अभीष्ट है, क्योंकि वेदमें गोवध सब प्रकारसे निषिद्ध माना है।

जो तो प्र०वेबर महोदयने अघ्न्या शब्दका अर्थ दिनके समान तेजस्वी करके करनेका प्रयत्न किया है, वह अर्थ तो अन्य युरोपीयन भी पसंद नहीं करते हैं। इसलिये उसके विषयमें अधिक लिखनेकी आवश्यकता नहीं है।

यदि अ-घ्न्या, अ-ही, अ-दिति इन शब्दोंका अर्थ अवध्य गौ निश्चित ठहर गया, तो गौ काटने और गोमांस भक्षण करनेकी बात सिद्ध नहीं होगी, यह जिनको डर होता है वे ऐसे अर्थोंसे घबराते हैं। परंतु हमें वैसी घबराहटमें पडनेका कोई प्रयोजन नहीं है।

(३३) वेदमें अहिंसा ।

वेदमें केवल गौकी ही अहिंसा नहीं लिखी है परंतु सर्व साधारण द्विपाद चतुष्पादोंकी भी अहिंसा लिखी है। सब भूतोंको मित्रदृष्टि से देखनेका वेदका महा-सिद्धांत इससे पूर्व इस लेखके नवम प्रकरणमें बताया ही है। उसके साथ निम्न लिखित प्रमाणों का विचार कीजिये--

अश्वं...मा हिंसीः... ॥ ४१ ॥
अविं...मा हिंसीः... ॥ ४३ ॥
इमं मा हिंसीद्विपादं पशुम् ॥ ४७ ॥
इमं मा हिंसीः...वाजिनम् ॥ ४८ ॥
इममूर्णायुं...मा हिंसीः ॥ ५० ॥ यजु. १३
मा हिंसीः पुरुषम् ॥

यजु. १६ । ३

" घोडा, बकरा, द्विपाद पशु, ऊन देनेवाला तथा पुरुष इनकी हिंसा न कर। " ये मंत्र मित्रदृष्टिवाले मंत्रों के साथ पढनेसे वेदका अहिंसापूर्ण उपदेश स्पष्ट सामने आजायगा। सर्व साधारण प्राणियोंको मित्रदृष्टिसे देखो और इन प्राणियों की हिंसा तो कभी न करो, यह वेदका उपदेश मनुष्यों के लिये है। इतना होते हुए भी कई यूरोपीयन समझते हैं कि वेदमें अहिंसा का तत्त्व वैसा उत्कट नहीं है जैसा आगे बढ गया है।

यह माना जा सकता है कि जैन बौद्धों ने जिस प्रकार आत्यंतिक और ऐकान्तिक अहिंसा प्रचलित की वैसी वेद में नहीं थी, परंतु अहिंसाका सिद्धांत ही वेदमें नहीं था यह कहना अयुक्त है। वेद सर्व साधारण आचरण के लिये अहिंसाका ही उपदेश दे रहा है, परंतु प्रसंगविशेष में युद्धादि प्रसंगोंमें वध करनेसे पीछे

रहनेकी आज्ञा भी नहीं देता, अर्थात् वेद में इसी प्रकार की अहिंसा है जो मानते हुए राष्ट्रीय महायुद्धमें आवश्यक वध की भी उसमें संभावना है। परंतु कोई कहे कि अपने पेटके लिये दूसरों का वध किया जाय तो वैसी हिंसा करनेकी आज्ञा वेद नहीं देता है। यह भेद पाठकोंको अवश्य ध्यानमें धारण करना चाहिये।

पूर्वोक्त " अ-घ्न्या, अ-दिति, अ-ही " इन शब्दोंका अर्थ इस सब विचार के प्रकाश में ही देखना चाहिये। इसलिये हम कहते हैं कि इनका अर्थ "अवध्य-गौ" ऐसा ही है और दूसरा नहीं है। जिस समय ये शब्द गौ से भिन्न किसी दूसरे पदार्थ के लिये आ जांय उस समय बेशक इनका अर्थ दूसरा हो, परंतु इन गौ वाचक शब्दोंका अर्थ "अवध्य-गौ" इतना ही है। इस प्रकार हमने देखा कि वेदमें अघ्न्या आदि शब्दोंसे गौ का अवध्यत्व बताया है और मंत्र भागों द्वारा भी गौ का अवध्यत्व व्यक्त किया है, अब पूर्ण मंत्रों द्वारा गौ का अवध्यत्व वेद में बताया है वा नहीं यह देखना है —

(३४) अनुपमेय गौ ।

वेद का मत है कि अन्य सब पदार्थोंके लिये उपमा मिल सकती है, परंतु गाय के लिये कोई उपमा नहीं है, इतने गाय के उपकार मनुष्य जाती पर हैं, इस विषय में निम्न लिखित मंत्र देखिये—

ब्रह्म सूर्यसमं ज्योतिर्द्यौः समुद्रसमं सरः ।
इन्द्रः पृथिव्यै वर्षीयान् गोस्तु मात्रा न विद्यते॥

यजुर्वेद. २३ । ४८

" ज्ञान तेजके लिये सूर्य की उपमा है, द्युलोक के लिये समुद्र की उपमा है, तथा पृथिवी बहुत बडी है तो भी उससे इन्द्र अधिक समर्थ है, परंतु गौ के साथ किसी की भी तुलना नहीं होती। "

देखिये वेदमें गौका कितना महत्त्व वर्णन किया है। यद्यपि पृथ्वी के लिये भी गौ शब्द आया है तथापि गाय वाचकही गौ शब्द इस मंत्र में है और यहां व्यक्त शब्दों द्वारा उसकी निरुपमेयता बतायी है। इस विषय में और देखिये—

इडे रन्ते हव्ये काम्ये चन्द्रे ज्योतेऽदिते सरस्वती
महि विश्रुति। एता ते अघ्न्ये नामानि।

यजु० ८।४३

' इडा, रन्ता, हव्या, काम्या, चन्द्रा, ज्योति, अदिति, सरस्वती मही, विश्रुती ये नाम, हे (अघ्न्ये) अवध्य गौ! तेरे हैं। ' इन नामोंका अर्थ देखिये-

१ इडा (Refreshing draught) उत्साह वर्धक पेय देनेवाली
२ रन्ता (Delightful) आनंद बढानेवाली
३ हव्या (Worshipful) पूजा करने योग्य, सत्कार करने योग्य
४ काम्या (Loveable) प्रेम करने योग्य
५ चन्द्रा (Splendid) सुंदर, तेजस्वी
६ ज्योती (Shining one) प्रकाशमान्
७ अदिति (Inviolable) जिसके साथ क्रूर व्यवहार करने योग्य नहीं, अखंडनीय
८ सरस्वती (Full of sap) रससे युक्त, अमृतरूपी रस देनेवाली

९ मही (The Mighty One) विशेष महत्त्ववाली
१० विश्रुती (Most glorious) विशेष कीर्तियुक्त
११ अघ्न्या (Not to be killed) अवध्य ।

ये ग्यारह नाम जो वेदमें गौका महत्त्व वर्णन कर रहे हैं वह आजभी हमारे अनुभवमें आ रहा है, इसलिये इसका बिस्तार यहां अधिक करनेकी आवश्यकता नहीं है। ये अर्थ यूरोपीयनोंके स्वीकृतही अर्थ हैं, हमने इनके गूढार्थ जान बूझकर ही दिये नहीं हैं । पाठकही विचार करें कि जिस गौका इतना महत्त्व वेदमें वर्णन किया है उसका वध कैसे हो सकता है! देखिये और-

(३५) गौसे लाभ ।

दुहामश्विभ्यां पयो अघ्न्येयं सा वर्धतां महते सौभगाय ॥
ऋ. १ । १६४ । २७

" यह अवध्य गौ अश्विनी देवोंके लिये दूध देवे और वह हमारे बडे सौभाग्य के लिए बहुत बढे ।" इस मंत्रमें (सा अघ्न्या वर्धताम्) यह अवध्य गौ बढे ऐसा कहा है. यह मंत्र विशेष मनन करने योग्य है । इसका अर्थ म. ग्रिफिथ करते हैं- and may she prosper to cur high advantage अर्थात् " हमारे लाभ के लिए गौकी वृद्धि हो । " जब इस मंत्र द्वारा यह बात सिद्ध हुई की गौकी वृद्धिसे ही हमारा सौभाग्य बढना है तो गौ काटनेकी संभावनाही कहांसे हो सकती है ? गौकी संख्या और गौके गुण इनकी वृद्धि होनेसे मनुष्यका अगणित लाभ हो सकता है यह बात वेद मुक्तकंठसे अनेक प्रकारसे कह रहा है। इतना गौका महत्त्व वैदिक कालमें माना जाता था। इस लिए हम कह सकते हैं कि वैदिक कालमें गौकी उन्नति करने की ओर ही धार्मिक लोगों का प्रयत्न था । और देखिये—

सूयवसाद्भगवती हि भूया अथो वयं भगवन्तः स्याम।
अद्धि तृणमघ्न्ये विश्वदानीं पिब शुद्धमुदकमाचरन्ती।
ऋ. १।१६४।४०

" गौ उत्तम घास खा कर (भगवती) भाग्यवान बने और हम उस गौसे (भगवन्तः) भाग्यवान या धनवान हों। हे अवध्य गौ! तू सदा (तृणं अद्धि) घास ही खा और (आ - चरन्ती) वापस आते समय (शुद्धं उदकं पिब) शुद्ध जल पान कर। "

गौको क्या खिलाना चाहिये वह इस मंत्रमें सुंदर शब्दों द्वारा कहा है। गौ घास ही खावे, यदि गौ पालनी हो तो उत्तम घास उसे मिले ऐसी व्यवस्था करनी चाहिये। उत्तम घास और शुद्ध जल पीनेवाली गौसे जो दूध आ सकता है वही मनुष्यके लिये आरोग्यवर्धक हो सकता है। पका अन्न, धान्य, सडे पदार्थ तथा मनुष्यकी विष्ठा आदि गौको खिला कर जो दूध मिलता है वह उतना लाभदायक नहीं हो सकता। इस विषयमें निम्न लिखित मंत्र अवश्य देखिये-

यावतीनामोषधीनां गावः प्राश्नन्त्यघ्न्या यावतीनामजावयः।
तावतीस्तुभ्यमोषधीः शर्म यच्छन्त्वाभृताः॥
अथर्व. ८।७।२५

"जो जो औषधियां सदा अवध्य गौवें खातीं हैं और जो भेड बकरियां खातीं है वह सब औषधियां तेरा सुख बढावें।" इस मंत्रका अर्थ म० ग्रिफिथने किया हुआभी यहां देखिये-

The multitude of herbs whereon The Cows, whom none may slaughter, feed, all that are food for goats & sheep, so many Plants, brought hitherwards, give shelter and defence to thee.

इसका अर्थ ऊपर दिया ही है । इसमें "अघ्न्या" शब्द का अर्थ "whom none may slaughter अर्थात् जिनका कोई वध न करे" यह दिया है । यदि गौवाचक अघ्न्या शब्दका यह अर्थ है और उसका वध करना किसी को भी उचित नहीं तो फिर गोमांसभक्षण की प्रथा आर्यों में थी यह किस आधारसे यूरोपीयन विद्वान मानते हैं ?

(३६) अवध्य बैल ।

" अघ्न्या " शब्द जैसा गौ के लिये प्रयुक्त होता है वैसाही " अघ्न्य " शब्द बैलवाचक भी है। इस लिये गौ के समानही बैल भी रक्षणीय और वर्धनीय तथा अवध्य ही है, देखिये—

सं गाभ्यां रक्ष ऋषत्यवार्ति हन्ति चक्षुषा ।
शृणोति भद्रं कर्णाभ्यां गवां यः पतिरघ्न्यः ॥ १७ ॥
शतयाजं स यजते नैनं दुवन्त्यग्नयः ।
जिन्वन्ति विश्वे तं देवा यो ब्राह्मण ऋषभमा
जुहोति॥ १८

अथर्व० ९ । ४ ।

" जो गौवोंका पति (अ-घ्न्यः) अवध्य अर्थात् बैल है वह कानोंसे कल्याणकी बातें सुनता है, वह आंखों से अकाल के दुर्भिक्ष्य का नाश करता है और अपने सींगोंसे राक्षसोंको दूर भगाता है ॥ सौ यज्ञोंसे वह यजन करता है, (एनं) इस बैलको (अग्नयः न दुवन्ति) अग्नि जलाते नहीं हैं । सब देव उसे उन्नत करते हैं जो (ब्राह्मणे) ब्राह्मण को (ऋषभं) बैल (आजुहोति) अर्पण करता है । " इसमें निम्न लिखित बातें देखने योग्य है--

१ बैल का-नाम " अ-घ्न्य " है जिसका अर्थ " अवध्य " है ।

२ एक बैल ब्राह्मणको दान करना सौ यज्ञके बराबर है (मंत्र १८)। बैल का रक्षण करना, संवर्धन करना और दान करनेका इतना महत्त्व है।

३ उसको अग्नि जलाते नहीं हैं, इतना बैलका महत्त्व है। (मं०-१८)

४ बैल कभी कानोंसे बुरे शब्द सुनता नहीं, क्यों कि सब उसकी प्रशंसा ही करते हैं। (मं०-१७)

५ बैल अपने आंखसे अकाल के दौर्भिक्ष्यको दूर करता है (अवार्तिं हन्ति चक्षुषा)॥ बैल खेती द्वारा अकाल को दूर हटाता है। (मं०-१७)

यह बैलका वर्णन पढनेसे पाठकोंको पता लग जायगा कि बैल ऐसा उपयोगी है, इसलिये कौन उसको अपने पेटकी पूर्ति के लिये काटेगा और अकाल से त्रस्त होने के लिये तैयार होगा। यदि बैल अकाल को दूर करता है तो उसे सुरक्षित रखना ही आवश्यक है।

उक्त मंत्र १८ के उत्तरार्ध का भाषांतर युरोपीयन लोग कैसा करते हैं वह यहां देखिये--

म० ग्रीफिथ—All Gods promote the Brahman who offers the Bull in sacrifice.

म० विटनी-All Gods quicken him, who makes offering of a bull to a Brahman.

म. विटनीका अर्थ कुच्छ अंशमें ठीक है जो हमने अपने अर्थमें ऊपर दिया है। म. ग्रिफिथने बिलकुल उलटा अर्थ लिखा है। मंत्रमें " ब्राह्मणे आ जुहोति " है जिसका अर्थ " ब्राह्मणके लिये समर्पण करता है" ऐसा होता है, परंतु उन्होंने न समझते हुए ही मनमाना अर्थ लिख कर अर्थका अनर्थ किया है। ब्राह्मण के लिये

बैल समर्पण करनेकी बात इसी सूक्तमें अगले ही मंत्रमें कही है-

ब्राह्मणेभ्यो ऋषभं दत्त्वा वरीयः कृणुते मनः।
पुष्टिं सो अघ्न्यानां स्वे गोष्ठेऽव पश्यते ॥

अथर्व० ९।४।१९

" ब्राह्मणोंको बैल देकर जो अपना मन श्रेष्ठ बनाता है उसकी अपनी गोशाला में गौवें और बैल बढ गये हैं ऐसा वह शीघ्रही देखता है।' इस मंत्र से स्पष्ट पता लगता है कि ब्राह्मण को बैल दान देना एक वैदिक समय की प्रथा थी। ब्राह्मण को गौवें तो मिलती ही थी, परंतु गौवोंके पति के स्थान की पूर्ति करनेके लिये उनको उत्तम बैल की आवश्यकता होना स्वाभाविक है. वह बैल उनको इस प्रकार दान से प्राप्त होते थे।

इस प्रकार वेदमें बैल का महत्त्व वर्णन करके उसको अवध्य कहा है। इस कारण हम कह सकते हैं कि बैल का वध भी वेद-विहित नहीं है।

३७ गोवध प्रतिबंध ।

निम्न मंत्रमें गौका महत्त्व और उसका वध करने का प्रतिबंध स्पष्ट शब्दों में पाठक देख सकते हैं-

माता रुद्राणां दुहिता वसूनां स्वसादित्यानाममृतस्य नाभिः।
प्र नु वोचं चिकितुषे जनाय मा गामनागामदितिं वधिष्ट।

ऋग्वेद. ८।१०१।१५

" गौ रुद्रोंकी माता, वसुओं की पुत्री, आदित्योंकी बहन और अमृत का केन्द्र है। जो समझ सकता है उस मनुष्यसे कहता हूं कि (अनागां) निष्पाप (अ-दितिं) अवध्य गौ है इस लिये इस (गां मा वधिष्ट) गौका वध मत कर।"

इस मंत्र में सब समझदार मनुष्योंको आज्ञा सुनाई है कि " गौ सदा के लिये निष्पाप और अवध्य है अतः उसका वध कोई भी न करे। पाठक इस दूसरे चरण का बहुत विचार करें । इसका म. ग्रिफिथका किया अर्थ देखिये–to folk who understand, will I proclaim it-injure not Aditi the cow, the sinless. ' समझनेकी जिन मनुष्योंको अकल है उन सब मनुष्यों को वेदने यह आदेश सुनाया है कि गौ सदाके लिये निष्पाप और अवध्य है, अतः उसका वध कोई न करे। ' जिन मनुष्यों को ज्ञान बिलकुल नहीं है, जो अपना हित अहित नहीं समझ सकते और जो धर्मोपदेश का महत्त्व जान नहीं सकते, वे ही गोवध करते होंगे । क्यों कि वेद की इतनी स्पष्ट आज्ञा गोवध निषेध के विषय में होने पर वैदिक धर्मी किस प्रकार गोवध कर सकते हैं? इस लिये हम पहिले से लिखते आये हैं, कि वेदका शिष्ट संमत धर्म गोवध को प्रतिबंध करता है ।

३८ गायका प्रयोजन ।

गाय मनुष्यों के सुख के लिये ही रखनी है, वह सुख गायसे मिलनेवाले पदार्थों से प्राप्त होना है, इस विषय में निम्न लिखित मंत्र देखिये–

महान्तं कोशमुदचा नि षिञ्च स्यन्दन्तां कुल्या विषिताः पुर-
स्तात्। घृतेन द्यावापृथिवी व्युन्धि सुप्रपाणं भवत्वघ्न्याभ्यः॥
ऋ. ५ । ८३ । ८

" बडा बर्तन उठाओ, उसमें अमृतकी धाराएं चलती रहें; गौके घीसे द्युलोक और पृथिवी भर दो, गौओं से उत्तम पान प्राप्त हो । "

इस मंत्रमें गौरक्षाका प्रयोजन कह दिया है। गौसे बडे बर्तन भरने योग्य दूध मिलता रहे, उस से बहुत घी उत्पन्न हो, वह घी सबको खानेके लिये विपुल मिले। तथा गौओंका दूधभी उत्तम रीतिसे लोक अधिक प्रमाण में पीते जांय। गौका यह प्रयोजन है। गौओंकी उन्नति करके लोग यह बात सिद्ध करें।

(३९) मांसभक्षण निषेध ।

वेदमें मांसभक्षण निषेध स्पष्ट शब्दोंमें है। यह केवल मांस-भक्षण का ही निषेध नहीं है प्रत्युत "मांस वर्ग" के सब पदार्थोंका निषेध है। मांस, मद्य, जूआ और व्यभिचार ये चार बातें मांस वर्गकी हैं, इन चारोंके सेवन का निषेध वेदमें किया है, वह मंत्र अब देखिये--

यथा मांसं यथा सुरा यथाऽक्षा अधिदेवने ।
यथा पुंसो वृषण्यतः स्त्रियां निहन्यते मनः ॥

अ०६।७०।१

"जैसा मांस, जैसा मद्य और जैसा जूआ है उसी प्रकार पुरुषका मन स्त्रीमें (निहन्यते) निःसंदेह मारा जाता है।" अर्थात् जिन व्यवहारोंसे मनुष्यका मन गिर जाता है, मारा जाता है, या पतित हो जाता है वैसे चार व्यवहार हैं- मांसभक्षण, सुरापान, जूआ खेलना और व्यभिचार करना। इनसे मनुष्य पतित होता है इसकारण इनको कोई भला मनुष्य न करे। यह "वर्ग का निषेध" होनेके कारण इनमेंसे किसी एक का पूर्ण निषेध करनेसे सब अन्योंका निषेध स्वयं हो जाता है, देखिये एक का निषेध—

अक्षैर्मा दीव्यः कृषिमित्कृषस्व। ऋग्वेद. १०।३४।१३

"जूआ मत खेल, खेती कर" इस मंत्रमें जूआ मत् खेल यह पूर्ण निषेध है, यह जूआ पूर्वोक्त मांसवर्ग में तीसरा है। जब एक का पूर्ण निषेध होता है तो तत्सम अन्य जो जो उस वर्गमें परिगणित हों उन सब का निषेध स्वयं हो जाता है; इस पद्धतिसे पूर्वोक्त चारों का निषेध एकदम हो गया। यह बात युरोपीयनों नें भी स्वीकृत की है देखिये Its (of flesh) use, is disapproved, as in a passage of the Atharvaveda, (6-70-1) where meat is classed with Sura (सुरा) or intoxicating liqror, as a bad thing. अर्थात् "अथर्व वेदके कां०६-७०-१ मंत्रमें मांस भक्षणका निषेध किया है जहां मांस को मद्य के साथ लिख कर वह बुरा है करके जतलाया है।" इससे निःसंदेह सिद्ध हुआ कि मांसभक्षण, मद्यपान, जूआ खेलना और व्यभिचार करना ये चार बातें मनुष्यको गिरानेवाली हैं, इसलिये किसी को भी इसके साथ अपना संबंध रखना उचित नहीं है।

अब पाठक विचार करें कि जिस समय कि बुरे आचरण की एक वर्गमें परिगणना होती है और उस वर्गको ही संबंध रखने अयोग्य कहा जाता है, तथा उस वर्गके प्रत्येक बुरे आचरणसे मनका अधःपात (मनः निहन्यते) निःसंदेह होगा, ऐसी भयकी सूचनाभी दी जाती है तब मांस, मद्य, जूआ और व्यभिचार की बातें उस धर्ममें किस प्रकार आनेकी सभावना भी हो सकती है।

इस लिये हम कहते हैं कि वैदिक धर्म में उक्त चार दुराचारों की संभावना ही नहीं हो सकती। यहां कई लोग यह भी कहेंगे कि मांससे मद्य अधिक बुरा है, मद्यसे जूआ अधिक बुरा है और जूएसे व्यभिचार बहुत ही बुरा है, परंतु यह बुराई में तरतम भाव है। यह क्रम उलटा भी कहा जा सकता है, क्यों कि स्त्री

के कारण जूआ खेलने की और उससे धन कमानेकी आवश्यकता होती है इ० । परंतु इस प्रकार बुराई में तरतम भाव देखनेकी हमें कोई आवश्यकता नहीं है। बुराई यदि मनके अधः-पातके लिये कारण होनी है तो सर्वथा ही त्याज्य है। इस लिये उस में बारीकी देखनेकी आवश्यकता नहीं है।

अतः वेदकी दृष्टिसे मांसभक्षण उतनाही अधःपातका हेतु है जितना व्यभिचार, अतः उस मार्ग से कोई न जाय।

(४०) भ्रम क्यों होता है?

वेदका अर्थ यदि इतना स्पष्ट है तो उसके अर्थ के विषयमें भ्रम क्यों होता है? ऐसा यहां प्रश्न पाठकों के मनमें खडा रह सकता है, इसका उत्तर देनेके लिये एक उदाहरण यहां देते हैं । इस उदाहरण का विचार यदि पाठक करेंगे तो उनको अर्थविषयक भ्रम के कारण का पता लग जायगा। देखिये वह मंत्र—

शकमयं धूममारादपश्यं विषूवता पर एनावरेण।
उक्षाणं पृश्निमपचन्त वीरास्तानि धर्माणि प्रथमान्यासन् ॥४३॥

ऋ. १। १६४। ४३ ।अथर्व ९। १०। २५

इस मंत्रके विविध विद्वानोंके अर्थ यहां देते हैं-

(१) श्री सायणाचार्य का अर्थ-- (शकमयं) गोबरकी अग्निका (धूमं) धूवां (आरात् अपश्यं) समीपसे ही मैंने देखा। और (एना अवरेण) इस निकृष्ट (विषूवता) व्याप्तिमान धूमसे (परः) परे रहनेवाले अग्निको भी मैंने जाना वहां (वीराः) वीर लोग (पृश्निं उक्षाणं) श्वेत सोम औषधिका (अपचन्त) पाक कर रहे हैं, ये धर्म उत्कृष्ट थे॥

(२) श्री० स्वा० दयानंद सरस्वतीजी- मैं (आरात्) समीपसे (शकमयं) शक्तिमय समर्थ (धूमं) ब्रह्मचर्य कर्मानुष्ठान के अग्निको (अपश्यं) देखता हूं। (एना अवरेण) इस नीचे इधर उधर जाते हुए (विषूवता) व्याप्तिवान धूमसे (परः) पीछे (वीराः) विद्याओंमें व्याप्त पूर्ण विद्वान् (पृश्निं) आकाश और (उक्षाणं) सींचनेवाले मेघ को (अपचन्त) पचाते अर्थात् ब्रह्मचर्य विषयक अग्नि होत्राग्निसे तपते हैं, वे धर्म (प्रथमानि) प्रथम ब्रह्मचर्य संज्ञक (आसन्) हुए हैं ॥

(३) म० ग्रिफिथ— I Saw from far away the smoke of fuel with spires that rose on high o'er that beneath it. The mighty men have dressed the spotted bullock. These were the customes in the days aforetime.

[नोट = "The smoke of fuel" = arizing from burning cow-dung. "The spotted bullock" = The Soma. The whole may, perhaps, be a figurative description of the gathering of the rain clouds.]

(४) म० विल्सन्— I behold near (me) the smoke of burning cow-dung; I by that all-pervading mean (effect), discovered the cause (fire): the priests have dressed the Soma Ox, for such are their first duties.

अर्थात्= " गोबर की अग्निसे उठा हुआ धूवां मैनें देखा जो ऊपर उठा था। वीरोंने विचित्र बैलको (अर्थात् सोम औषधिको) सजाया था, वे रीतियां पहिले समयकी थी।"

[यहां " उक्षा " शब्द सोम का वाचक है। और सब मंत्र वृष्टि करनेवाले मेघका वर्णन पर भी माना जा सकता है।]

(५) **म० विटनी का अर्थ**– The dung made smoke I saw from far, with the dividing one thus beyond the lower; the heroes cooked a spotted ox; those were the first ordinances.

अर्थात्= " गोबरसे बने धूमको मैंने दूरसे देखा, जो नीचे वालेके परे भिन्न होता था। वीरोंने बैलको पकाया था, वे पहिले के धर्मविधि थे।"

यहां पांच अर्थ दिये हैं, वे एक दूसरेसे भिन्न हैं, परंतु पहिले चार अर्थोंमें जो बैल पकाने की स्पष्ट बात नहीं थी वह विटनेके पंचम अर्थमें आगई है। चार अर्थ लेखक जिस मंत्रमें बैल पकानेकी बात स्पष्टतासे देखते नहीं, उसी मंत्रमें चतुर्थ लेखक बैल पकाने की बू सूंघ रहा है। म० ग्रिफिथ अपने नोट में लिखते ही हैं कि इस मंत्रका " उक्षा " शब्द सोमका वाचक है और यह सब मंत्र वृष्टि करनेवाले मेघका अर्थही संभवतः आलंकारिक वर्णन कर रहा होगा। यह म० ग्रिफिथ का कथन कुछ अंशमें पूर्वोक्त दोनों भाष्यकारों के साथ मिलता जुलता है। परंतु म० विटने की बात तो नवीन है।

उक्षा शब्दका अर्थ सोमभी है और बैल भी है, तथा पच् धातुका अर्थ पकाना भी है और परिपक्व करना भी है। इस लिये हम यह नहीं कहते कि म० विटनीका अर्थ उन शब्दोंसे निकलही नहीं सकता। हमारा कथन इतनाही है कि इस मंत्रमें बैल पकाने का अर्थ पूर्वापर संबंध से अयुक्त है। ऊपरके यूरोपीयन पंडितों के अर्थोंमें देखने लायख बात हम पाठकों के सन्मुख लाना चाहते हैं वह यह है– म० ग्रिफिथ का ऋग्वेद और अथर्व-वेद दोनों का अर्थ प्रकाशित हुआ है। ऋग्वेद पाठ का अर्थ हमने ऊपर दिया है, परंतु येही महाशय अथर्व वेद के इसी मंत्रके अर्थ

करनेके समय अपना ऋग्वेदका अर्थ भूल कर बैलवाला अर्थ घुसेड देते हैं,देखिये The heroes cooked and dressed the spotted bullock अर्थात् वीरोंने बैलको पकाया और उसको ठीक किया। अर्थात् यह अर्थ म. विटनीके अर्थ के साथ मिलता जुलता है। यहां यह बात देखनी है कि इन्ही के इसी मंत्र के ऋग्वेदीय अर्थ में मांसकी स्पष्ट बू नहीं है, परंतु अथर्ववेद के अर्थ में मांस परकही अर्थ है। एक ही मंत्रके अर्थ में एकही लेखक कैसा भ्रममें पड सकता है देखिये। वास्तव में ऐसा होना नहीं चाहिये था, परंतु प्रत्यक्ष हुआ है।

जिस कारण अथर्व वेद के मंत्रके अर्थके विषय में ये दोनों पंडित " बैल पकाने वाला अर्थ " करते हैं उस कारण हमें इन मंत्रों का पूर्वापर संबंध देखना चाहिये और इनका अर्थ सत्य है वा नहीं यह बात निश्चित करना चाहिये, इस लिये देखिये पूर्वापर मंत्र—

ऋचो अक्षरे परमे व्योमन् यस्मिन्देवा अधिविश्वे निषेदुः। यस्तन्न वेद किमृचा करिष्यति य इत्तद्विदुस्त इमे समासते ॥ १८॥ ऋचः पदं मात्रया कल्पयन्तोर्धर्चेन चाक्लृपुर्विश्वमेजत्। त्रिपाद् ब्रह्म पुरुरूपं वितष्टे तेन जीवन्ति प्रदिशश्चतस्रः ॥ १९ ॥ विराड वाग्विराट् पृथिवी विराडन्तरिक्षं विराट् प्रजापतिः। विराण्मृत्युः साध्यानामधिराजो बभूव तस्य भूतं भव्यं वशे स मे भूतं भव्यं वशे कृणोतु ॥ २४ ॥ " शकमयं धूममारादपश्यं विषूवता पर एनावरेण। उक्षाणं पृश्निमपचन्त वीरास्तानि धर्माणि प्रथमान्यासन् ॥ २५ ॥" त्रयः केशिन ऋतुथा विचक्षते संवत्सरे वपत एक एषाम्। विश्वमन्यो अभिचष्ट शचीभिर्ध्राजिरेकस्य ददृशे न रूपम् ॥ २६ ॥ इन्द्रं मित्रं वरुणमग्निमाहुरथो दिव्यः स सुपर्णो गरुत्मान्। एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्त्यग्निं यमं मातरिश्वानमाहुः ॥ २७ ॥

अथर्व० ९। १०। मं० १८—२७.

विस्तार न हो इसलिये बीचके कुछ मंत्र दिये नहीं है, परंतु इन मंत्रोंसे आक्षिप्त मंत्रका पूर्वापर संबंध ठीक प्रकार ज्ञात हो सकता है । इनका अर्थ अब देखिये—

(ऋचः अक्षरे) मंत्रोंके परम अक्षरोंमें (विश्वे देवाः) सब देव (अधिनिषेदुः) रहते हैं (यः तत् न वेद) जो मनुष्य वह बात नहीं जानता वह मंत्रसे क्या करेगा ? (ये तत् विदुः) जो वह बात जानते हैं वे (समासते) इकट्ठे होकर विचार करने के लिये बैठते हैं ॥ १८ ॥ वे (ऋचः पदं) मंत्रोंके पादोंको मात्राओं के प्रमाणसे माप कर (अर्धर्चेन) आधे मंत्रसे उन्होंने(एजत् विश्वं) हिलने वाला सब विश्व बताया है । वह बहुत आकार वाला तीन पांवोंसे युक्त ब्रह्म सर्वत्र (वितष्ठे) फैला है जिससे सब दिशाएं जीवित हैं ॥ १९ ॥ विराट् ही वाणी, पृथिवी, अंतरिक्ष, प्रजापति, मृत्यु है वही साध्य देवोंका अधिराजा है, (तस्य वशे) उसी के आधीन भूत भविष्य वर्तमान सब रहता है, वह कृपा करे और मेरे आधीन मेरा भूत भविष्य वर्तमान करे ॥२४॥ शक्तिमान् धूवां मैंने देखा है जो व्यापक होता हुआ इस कनिष्ठसे परे है । वीर लोग सिंचन करने वाली प्रकाशमय शक्ति को पकाते थे वे मुख्य कर्तव्य थे ॥ २५ ॥ तीन (केशिनः) किरणों से युक्त तेजस्वी पदार्थ हैं, ऋतुओं के अनुसार वे प्रकाशते हैं । इनमें से एक वर्षमें बीज डालता है, दूसरा जगतको अपनी शक्तियों से चमकाता है, परंतु तीसरे का वेग ही अनुभवमें आता है, रूप नहीं ॥ २६ ॥ एकही सत्य वस्तुको ज्ञानी लोग विविध नामोंसे वर्णन करते हैं उसी को इन्द्र, मित्र, वरुण, अग्नि, दिव्य, सुपर्ण गरुत्मान, यम, मातरिश्वा कहा जाता है ॥ २७ ॥

इन पूर्वापर संबंध के मंत्रों को पाठक देखें और विचारें । तो उनको स्पष्ट पता लग जायगा कि यह अध्यात्मविषय का प्रकरण

है और बैल पकानेका यहां कोई संबंध नहीं है। इस २५ वे मंत्रमें बैल पकानेवाला अर्थ माननेपर इस प्रकरण में सजने योग्य कोई अर्थ बन ही नहीं सकता है। इस मंत्रमें जिस शक्तिमान धूंवेका वर्णन है वह प्रकृति की अग्निका धूवां है। जो प्रकृतिकी अग्निसे चारों ओर फैलता है और मनुष्योंके आंखोंमें घुसकर उनको अंध बना देता है। यह धूवां ही अधिक सताता है उतना मूल प्रकृतिका ताप नहीं है। इसलिये यह व्यापक भी है और उरे तथा परेभी है। जो धीर वीर लोग होते हैं वे इस धूवेंमें भी घुसते हैं परंतु धूवें को घबराते नहीं हैं। इस धूवेंके कष्टको शांत करनेके लिये इसके परे रहनेवाली (उक्षाणं पृश्नि) सिंचक तेजस्वी शक्ति को अपने अंदर परिपक्व करते हैं अर्थात् अपनी आत्मिक शक्ति को अपरिपक्व रहने नहीं देते। सिंचक शक्तिका अर्थ जीवन देने वाली तेजोमय आत्मशक्ति ही है। पृश्नि का अर्थ तेजका किरण, प्रकाशशक्ति आदि है, उक्षा का अर्थ सिंचन करनेवाला, भिगोनेवाला, जीवनका जल देनेवाला। ये अर्थ आत्मशक्ति को ही यहां बता रहे हैं। अपने अंदर इस को परिपक्व करना ही मनुष्यका प्रथम धर्म है, अर्थात् मुख्य कर्तव्य है। सताईसवे मंत्रमें कहा है कि एक ही आत्मा के इन्द्रादि अनेक नाम हैं, नामोंका भेद होनेसे मूल सत्य वस्तुमें कोई भेद नहीं होता है। यही एक आत्मतत्त्व पचीसवे मंत्रमें "पृश्नि उक्षा" नामसे वर्णित है। सोम भी इसी आत्माका एक नाम प्रसिद्ध ही है।

छब्बीसवे मंत्रमें चमकदार तीन पदार्थ हैं ऐसा कहा है। ये तीन पदार्थ दैवी प्रकृति, जीवात्मा और परमात्मा येही तीन हैं, इनमें प्रकृतिका अनुभव जगत में आता है, जीवात्मा का अनुमान हरएक प्राणिमात्रमें होता है, परंतु तीसरे सर्वव्यापक परमात्मा का अनुमान तर्कसे होता है, क्योंकि उसका प्रत्यक्ष दर्शन

नहीं होता जैसा दूसरोंका होता है।

इत्यादि वर्णन से ये मंत्र खुल जायंगे। अब पाठक देख सकते हैं कि क्या इसमें बैल पकाने का संबंध है? और बैल पकानेवाला अर्थ यहां सजता भी कहां है? इससे पाठकों के ध्यान में बात आगई होगी कि जो लोग प्रकरणानुकूल अर्थ नहीं देखते वे " उक्षाणं अपचन्त "शब्द देख कर बैल पकानेकी बात समझते हैं और अर्थ का अनर्थ करते हैं।

वेदमें दो सुपर्ण अर्थात् दो पक्षी इस रूपक से भी जीवात्मा परमात्मा का वर्णन है। यह मंत्र (द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया०। ऋ० १।१६४।२० तथा अथर्व० ९।९ (१४)।२०) इन पूर्वोक्त मंत्रों के थोडा पीछे ही है। यह ऋग्वेदमें और अथर्व वेदमें एक ही प्रकरण में है। यदि पाठक यह अध्यात्मपरक मंत्र देखेंगे तो उनका निश्चय ही हो जायगा कि यह बैल पकानेवाला मंत्र वास्तवमें अध्यात्मविषयका मंत्र है, और उसमें बैल पकानेका वास्तविक कोई संबंध नहीं है।

प्रकरणानुकूल मंत्र देखनेका इतना महत्त्व है। श्री० यास्काचार्य जीने भी इसी लिये निरुक्तके प्रारंभमें ही कहा है (प्रकरणशः एव निर्वक्तव्याः) मंत्रोंकी व्याख्या प्रकरण के अनुसार ही करनी चाहिये। इस से सिद्ध हुआ कि युरोपीयन लोगोंका अर्थ अत्यंत अशुद्ध है और वह विचार करने भी योग्य नहीं है। यहां हमने बताया कि भ्रम होने का कारण मंत्रोंका अर्थ प्रकरण के अनुकूल न करना ही है। कोई भी विद्वान यदि मांसपरक अर्थ इस प्रकरण में सजा कर बता सकेगा तो फिर और विचार किया जायगा। परंतु हमारा निश्चय है कि कोई भी विद्वान इस अध्यात्म प्रकरणमें मांसका अर्थ प्रकरणानुकूल बताही नहीं सकेगा। पाठक भी अपनी स्वतंत्रबुद्धिसे इस प्रकरण में इस मंत्र

को रख कर खूब विचार करें। कोई पक्षपात करने की यहां आवश्यकता नहीं है क्यों कि हमारा पक्ष इतना साफ है कि उसकी सिद्धता करनेके लिये हमें कोई कठिनता ही नहीं है। एक सत्य परमात्म तत्त्वके इन्द्र, अग्नि, सोम आदि अनेक नाम होते हैं यह बात सताइसवें मंत्रमें कही है, इसका स्पष्ट तात्पर्य यही है कि नामों का भेद होनेपर भी मुख्य वस्तुमें भेद नहीं होता यह उपदेश करनेके पूर्व जो मंत्र लिखे हैं वे श्रोताओं की मनकी तैयारी करने के लिये लिखे गये हैं। एक ईश्वरवाद का ग्रहण करने योग्य श्रोताओं की तैयारी करनेके मंत्रोंमें बैल पकाने वाला अर्थ किस प्रकार सज सकता है? यह पाठक ही देखें? तात्पर्य भ्रमका कारण प्रकरणकी ओर पूर्ण दुर्लक्ष्य करना ही एक मात्र है।

[४१] पकानेका तात्पर्य।

इस मंत्रमें " अपचन्त " शब्द है। यह शब्द पाठकों को भ्रममें डाल सकता है क्यों कि इसका अर्थ " पकाया " है। पकानेका स्पष्ट अर्थ चूलेपर हंडी रखकर उसमें पकाना सब जानते हैं, परंतु यदि पाठक इसका अधिक विचार करेंगे तो उनको पता लग जायगा कि यह व्यक्त अर्थ रहते हुए भी इसका सूक्ष्म अर्थ और ही है देखिये--

" तप् " शब्द भी तपाने के अर्थमें प्रयोग होता परंतु " तप " शब्द का अध्यात्म शास्त्रमें कितना व्यापक अर्थ हुआ है, यह पाठक जानते हैं। वह "तप" करता है, इसका तात्पर्य "वह आग पर कोई चीज तपाता है" यह नहीं लिया जाता, परंतु वह अपनी आत्म उन्नति करनेके लिये विशेष धर्म-नियमोंका आचरण करता है, यह "तप" शब्दका अर्थ सब लेते

हैं। वास्तविकमूल अर्थ "आगपर रखकर सेक देना" इतना ही तप शब्द में है, परंतु वेद और उपनिषद में इस शब्दका "आत्मोन्नति के नियम पालन करना" यह अर्थ रूढ हुआ है, पाठक शब्दके इस अर्थका ख्याल मनमें रखेंगे, तो उनको "पच्" धातुके अर्थ-का भी पता लग जायगा।

जीवात्मा शरीरमें है उसको ब्रह्मचर्य पालनादि सुनियमोंकी अग्निपर तपाकर विशेष शक्तिसे युक्त किया जाता है--

अतप्ततनूर्न तदामो अश्नुते ॥ ऋ० ९ । ८३ । १

"जिसके शरीरसे तपाचरण नहीं हुआ, वह उस आत्मिक सुख को प्राप्त नहीं कर सकता।" यह वेदका उपदेश तपाचरण के महत्त्वका वर्णन कर रहा है। मूल मंत्रके शब्दों का केवल शब्दार्थ ही देखा जाय तो ऐसा है- "जिसका शरीर तपा नहीं वह उस सुख को खा नहीं सकता।" यह शब्दार्थ ही लेकर कई लोग शरीर को सूर्य प्रकाशमें तपाते हैं और कई दूसरे धातुकी मुद्राएं तपाकर शरीर पर धारण करते हैं। परंतु यह मंत्रका आशय नहीं है। मंत्रका "तप्त" शब्द ब्रह्मचर्यादि सुनियमोंके आचरण का भाव बताता है, इससे भिन्न अन्य अर्थ अशुद्ध हैं। इसी प्रकार यहां "पच्" धातुका अर्थ केवल चूले पर हंडी रखकर पकाना नहीं है परंतु यहां आध्यात्मिक शक्तिको परिपक्व करना है।

शरीररूपी हंडीमें जीवात्मा रूपी स्वादु रस (सोम-उक्षा) रखा है, यह हंडी सत्वरजतम रूपी जगत्के पत्थरोंपर रखी है और नीचे से परमात्माग्नि की उष्णता दी गई है। इस प्रकार यहां बहुत मीठा पाक हो रहा है। यह आध्यात्मिक पकाना यहां है। पूर्वोक्त मंत्रमें पाठक यह अर्थ देखें-

"मैंने धूवाँ देखा और उससे अग्निका अनुमान किया जिस पर वीर सोम को पका रहे थे, वे पहिले कर्तव्य थे।"

धूवेंसे जैसा अग्निका अनुमान होता है उसी प्रकार जगत् के कार्य देख कर परमात्माग्निका अनुमान किया जाता है। उसी अग्निपर आत्मा को परिपक्व करनेका अनुष्ठान धीर लोग करते हैं, येही मुख्य कर्तव्य हैं। पाठक इस स्थानपर उक्त अलंकार देखें और वेदका आध्यात्मिक उपदेश ग्रहण करें। यहां यह आश्चर्य प्रतीत होता है कि इतना उत्तम अर्थ होते हुए उसको युरोपीयन लोगोंने कितना बिघाडा है? इससे अर्थका अनर्थ तो और कितना हो सकता है? अस्तु। अब " पच् " धातुका प्रयोग देखिये-

१ सस्यमिव मर्त्यः पच्यते ॥ कठ उ० १। ६

२ यश्च स्वभावं पचति। श्वे० उ. ५। ५

३ अन्नेनाभिषिक्ताः पचन्तीमे प्राणाः ॥ मैत्री उ. ६।१२

४ कालः पचति भूतानि ...महात्मनि।। " मैत्री ६।१५

" (१) फलके समान मर्त्य मनुष्य पकाया जाता है, (२) जो स्वभाव पकाता है, (३) अन्नके द्वारा अभिषिक्त हुए ये प्राण पकाते हैं, (४) काल पकाता है भूतों को... परमात्मामें। "

ये " पच् " धातुके उपनिषदों में प्रयोग देखनेसे पाठकोंको पता लग जायगा कि पच् धातु का आध्यात्मिक उन्नतिके विषयमें भी तात्पर्य है। इस पच् धातुका अर्थ कोशों में यह दिया है-to cook, to ripen, to develop (पकाना, पक्व करना, बढाना या उन्नत करना) अर्थात् पकानेके सिवाय दूसरे भी अर्थ कोशों में हैं और वे दूसरे अर्थ आत्मोन्नतिमेंभी लग सकते हैं।

इस से स्पष्ट हुआ कि " पच् " धातु का प्रयोग होनेपर भी केवल पकानेका ही भाव लेनेकी आवश्यकता नहीं है। जिस प्रकार " तप् " धातुका अर्थ तपाना होता हुआ भी उसका तात्पर्य

अध्यात्म में सुनियमों का पालन आदि लिया जाता है, उसी प्रकार " पच् " धातुका अर्थ पकाना होता हुआ भी इस का आध्यात्मिक तात्पर्य आत्मशक्ति की उन्नति करना, आत्मशक्ति का विकास करना, आत्मशक्तिको (develop) बढाना आदि प्रकार होता है। इस शब्द के प्रयोग भी देखिये-

१ अन्न पक्व हुआ, २ फल पक्व हुआ, ३ कर्म परिपक्व हुआ, ४ बुद्धि परिपक्व हुई, ५ आत्मा परिपक्व हुआ, इत्यादि वाक्योंमें एक ही " पच् " धातु के प्रयोग हैं, परंतु भौतिक और अभौतिक प्रसंगों के अनुसार उनके अर्थ भिन्न हैं। इतना पच् धातुके अर्थ के विषयमें लिखना पर्याप्त है। इस से पूर्व उपनिषदों के वचन भी दिये हैं जिनमें पच् धातुका प्रयोग अध्यात्म उन्नति दर्शाने के लिये किया गया है। ये सब प्रयोग देखनेसे इसके अध्यात्मिक अर्थ के विषयमें किसी को शंका नहीं हो सकती।

अब " उक्षा " शब्द का विचार करना चाहिये। उक्षा शब्द का अर्थ सोम श्री० सायणाचार्य करते हैं और कई युरोपीयनों ने भी यह अर्थ माना है। उक्षा और सोम ये पर्याय शब्द हैं इसमें किसीकोभी संदेह नहीं हो सकता। पूर्वोक्त मंत्रों में उक्षा, सोम, इन्द्र, अग्नि, मित्र, वरुण, गरुड, सुपर्ण आदि सब नाम उसी एक अद्वितीय सद्वस्तुके हैं यह बताया ही है। जितने भी देवतावाचक विशेष नाम वेद में आये हैं, वे सब उसी आत्मतत्त्वके वाचक होने में संदेह ही नहीं है, आत्मा के आत्मा और परमात्मा ये भेद हैं, परंतु दोनों में आत्मा शब्द समान ही है; इसी प्रकार अन्य भी प्रयोग हैं —

आत्मा	परमात्मा
ब्रह्म	परब्रह्म
"	ज्येष्ठ "

ब्रह्म	श्रेष्ठ ब्रह्म
इन्द्र	महेन्द्र
देव	महादेव

इस प्रकार प्रयोग छोटे आत्मा और बडे आत्माके वाचक हैं, परंतु छोटा और बडापन विचार में न लाया तो दोनों स्थानपर एकही शब्द लगता है। इसलिये सद्वस्तुके वाचक जितने भी शब्द हैं वे जैसे अन्य पदार्थों के वाचक होते हैं उसी प्रकार जीवात्मा परमात्मा के भी वाचक हैं। जीवात्मा छोटी शक्तिवाला और परमात्मा बडी शक्तिवाला है, परंतु शक्तियां बडी हों या छोटी हों दोनों स्थानोंमें समान हैं।

सोम शब्द सोमवल्ली, चंद्र, वनस्पति आदिका वाचक होता हुआ भी आत्मा परमात्मा का वाचक है, इन्द्र शब्द विद्युत का वाचक होता हुआ भी आत्मा परमात्मा का वाचक, अग्नि शब्द आगका वाचक होता हुआ भी आत्मा परमात्मा का वाचक है, इसी प्रकार उक्षा अथवा वृषभ या ऋषभ ये शब्द बैल तथा वनस्पति के वाचक होते हुए भी आत्मा परमात्मा के वाचक हैं। अर्थात् इस प्रकार के देवता वाचक सब शब्द उनके व्यक्त अर्थोंके वाचक होते हुए भी आत्मा परमात्माके वाचक हैं। यह वेद की परिभाषा जिनके मनमें ठीक प्रकार नहीं आती उनको अर्थका भ्रम होता है। ये अर्थके भ्रम होनेके कारण हैं। पाठक इन कारणोंका खूब विचार करें। अब "उक्षाणं अपचन्त" (बैल पकाया) इस मंत्रभाग का अथर्व वेदका प्रकरण देखिये—

१ द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषस्वजाते।
तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्त्यनश्नन्नन्यो अभिचाकशीति ॥ २० ॥
२ यस्मिन्वृक्षे मध्वदः सुपर्णा निविशन्ते सुवते चाधि विश्वे।
तस्य यदाहुः पिप्पलं स्वाद्वग्रे तन्नोन्नशद्यः पितरं न वेद॥ २१ ॥

३ यत्रा सुपर्णा अमृतस्य भक्षमनिमेषं विदथाभिः स्वरन्ति ।
एना विश्वस्य भुवनस्य गोपाः स मा धीरः पाकमत्रा
विवेश ॥ २२ ॥

अथर्व० ९। ९ ।१४

४ अनच्छये तुरगातु जीवमेजद ध्रुवं मध्य आ पस्त्यानाम् । जीवो
मृतस्य चरति स्वधाभिरमर्त्यो मर्त्येना सयोनिः ॥ ८॥
५ ऋचो अक्षरे परमे व्योमन् यस्मिन् देवा अधि विश्वे निषेदुः ।
यस्तन्न वेद किमृचा करिष्यति य इत्तद्विदुस्त अमी समा-
सते ॥ १८॥
६ विराड् वाग्विराट् पृथिवी विराडन्तरिक्षं विराट् प्रजापतिः ।
विराण्मृत्युः साध्यानामधिराजो बभूव तस्य भूतं भव्यं वशे
स मे भूतं भव्यं वशे कृणोतु ॥ २४ ॥
७ शकमयं धूममारादपश्यं विषूवता पर एनाऽवरेण । उक्षाणं
पृश्निमपचन्त वीरास्तानि धर्माणि प्रथमान्यासन् ॥ २५ ॥
८ त्रयः केशिन ऋतुथा विचक्षते संवत्सरे वपत एक एषाम् ।
विश्वमन्योऽभिचष्टे शचीभिर्ध्राजिरेकस्य ददृशे न रूपम् ॥ २६ ॥
९ चत्वारि वाक्परिमिता पदानि तानि विदुर्ब्राह्मणा ये
मनीषिणः। गुहा त्रीणि निहिता नेंगयन्ति तुरीयं वाचो मनुष्या
वदन्ति ॥ २७ ॥
१० इन्द्रं मित्रं वरुणमग्निमाहुरथो दिव्यः स सुपर्णो गरुत्मान् ।
एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्त्यग्निं यमं मातरिश्वानमाहुः ॥ २८॥

अथर्व० ९।१०।१५

अब इनका क्रमपूर्वक अर्थ देखिये—

(१) (सयुजा सखाया) समान मैत्री धारण करनेवाले (द्वा सुपर्णा) दोन गरुड पक्षी अर्थात् जीवात्मा और परमात्मा (समानं वृक्षं परिषस्वजाते) एक ही वृक्षपर अर्थात् प्रकृतिके

संसार वृक्षपर बैठे हैं (तयोः अन्यः स्वादु पिप्पलं अत्ति) उनमें से एक अर्थात् जीवात्मा इस वृक्षका मधुर फल खाता है, परंतु (अन्यः) दूसरा अर्थात् परमात्मा (अनश्नन् अभिचाकशीति) कुछ भी न खाता हुआ केवल प्रकाशता है या देखता रहता है। [यह मंत्र उपनिषदों में भी है। श्वेताश्व० ४।६, मुंडक० ३। १। १ इस कारण इसके अध्यात्मविषयक होने में शंकाही नहीं है ॥ २० ॥

(२) (यस्मिन् वृक्षे मध्वदः सुपर्णाः निविशन्ते) जिस प्रकृतिके संसार वृक्षपर मीठा फल खाने वाले उत्तम पंखवाले पक्षी अर्थात् जीवात्मा निवास करते हैं और (विश्वे अधि सुवते) सब प्रजा भी उत्पन्न करते हैं, (यत् तस्य अग्रे स्वादु पिप्पलं आहुः) जो उस संसार वृक्षके अंतिम भागमें मीठा फल है ऐसा कहा जाता है (तत् न उन्नशत्) वह फल उसके लिये नहीं प्राप्त होता है, कि (यः पितरं न वेद) जो परमपिता परमात्माको नहीं जानता ॥ २१ ॥

(३) (यत्र) जिस संसार वृक्षपर बैठे हुए (सुपर्णाः) अनंत पक्षी अर्थात् अनंत जीवात्मा गण (विदथा) परस्पर विचार करके (अ-निमेषं) बीचमें समय न छोडते हुए (अमृतस्य भक्षं अभि स्वरन्ति) अमृतके अन्नके भोग के लिये आवाज उठाते हैं, अर्थात् उसकी प्राप्तिके लिये ही शब्द करते हैं, (विश्वस्य भुवनस्य एना स धीरः गोपाः) सब भुवनों का वह ज्ञानी सबका पालक परमात्मा (अत्र मा पाकं आविवेश) यहां मुझ परिपक्व होनेवाले के जीवात्मा में प्रविष्ट होकर रहा है॥२२॥

[इस मंत्रमें (मां पाकं) ये शब्द बडे महत्त्व पूर्ण हैं " मां " शब्द " मैं जीवात्मा " इस अर्थ का द्योतक है और " पाकं " शब्द " पकने वाला, परिपक्व होने वाला, जिसको पकाकर परिपक्व बनाना है, अथवा जो पकाया जा रहा है, जो अपरिपक्व

है, परंतु पकाकर परिपक्व होनेवाला है। " इस अर्थ में आया है। पाठक यह शब्द स्मरण रखें, क्यों कि इसीका पाक होनेवाला है, इसी को आगे पकाया जायगा, इसी जीवात्मा को पकानेके बर्तन में रख कर आगे पकाया जायगा।]

(४)(पस्त्यानां मध्ये) प्राणियों के शरीरों के मध्यमें (अनत्) प्राण धारण करनेवाला, (तुर-गातु) चलनवलन करनेवाला, (जीवं) जीवनशक्तिसे युक्त, (एजत्) हलचल करनेवाला परंतु (ध्रुवं) अचल स्थिर, इन गुणोंसे युक्त आत्मा (आशये) रहा है। यह जीवात्मा (मर्त्येन सयोनिः)मर्त्य शरीरके साथ समान योनिमें उत्पन्न होने परभी (अ-मर्त्यः) मरण धर्म से रहित है, यह (मृतस्य जीवः स्वधाभिः चरति) मृत प्राणीका जीव मृत्यु के पश्चात् अपनी धारकशक्ति के साथ आकाश में भ्रमण करता है ॥ ८ ॥

[यहां जीवात्मा का वर्णन पाठक देखें, यह संसार में जन्ममरण के चक्रमें घूमनेवाले जीवात्मा का वर्णन स्पष्ट है।]

(५) (यस्मिन् ऋचः परमे अक्षरे व्योमन्) जिन मंत्रोंके श्रेष्ठ अक्षरों के अंदर (विश्वे देवाः अधि निषेदुः) सब देव निवास करते हैं, (यः तत् न वेद) जो यह गुह्य बात नहीं जानता वह अज्ञानी मनुष्य (ऋचा किं करिष्यति) मंत्र लेकर क्या करेगा ? (ये इत् तत् विदुः) जो निश्चय से उस बातको (जानते हैं (अमी ते समासते) वे इकठ्ठे होकर रह सकते हैं ॥ १८ ॥

इस में मंत्र के गुह्य ज्ञान के जाननेका महत्त्व वर्णन किया है इस ज्ञानसे ही मनुष्य की शक्ति विकसित हो सकती है।]

(६) वाक्, पृथ्वी, अंतरिक्ष, प्रजापति, मृत्यु साध्य देवोंका अधिराज विराट् ही है, उसके (वशे) आधीन भूत भविष्य वर्तमान है, उसकी कृपासे (मे वशे) मेरे आधीन अपना भूत भविष्य

वर्तमान होवे॥ २४॥

[व्यक्तिके अंदर विराट् (आत्मिक तेज) की शक्ति वाक् रूपसे है और वही शक्ति ब्रह्माण्ड में व्याप्त है, उस शक्तिके आधीन सब कुछ है, इसलिये मेरी शक्ति धर्मानुष्ठानसे बढे और मेरा अधिकार भी जितना हो सकता है उतना विस्तृत होवे। अर्थात् मैं मनुष्य जो इस समय अपरिपक्व अवस्था में हूं वह परिपक्व बनकर अधिक समर्थ होऊं। मैं अल्पज्ञ मनुष्य जो दैव के बलसे इधर उधर घुमाया जाता हूं वह मैं अपनी शक्तिसे चल फिर सकूं। यह इच्छा इस मंत्रमें की है। इसमें अपरिपक्व अवस्था से परिपक्व दशामें पहुंचनेकी उत्कट इच्छा दीखती है। इसकी परिपक्वता जिस प्रकारके पकाने से होगी वह पकानेकी रीति आगेके मंत्रमें देखिये-]

(७) (आरात् शकमयं धूमं अपश्यं) दूरसे मैंने शक्तिमान् धूवेको देखा (एना विषूवता अवरेण) इस व्यापक साधारण चिन्हके देखनेसे मैंने (परः) श्रेष्ठ आग्नेय शक्तिको जान लिया। इस श्रेष्ठ अग्निपर (वीराः उक्षाणं पृश्निं अपचन्त) वीर लोग शक्तिवाले बैल अर्थात् शक्ति देनेवाले आत्मा को परिपक्व बनाते हैं, या पकाते हैं (तानि धर्माणि प्रथमानि आसन्) येही धर्मविधि मुख्य हैं॥ २५॥

[धूम देखनेसे उस धूमके मूलमें अग्नि निःसंदेह है यह कल्पना दूरसे भी हो जाती है। इसी प्रकार प्रकृतिसे जगत्रूपी यह विशाल और व्यापक धूवां निकल रहा है जो हमारे आंखोंमें जाकर हमें अंध बना रहा है। जो ज्ञानी लोग हैं वे दूरसे ही इस धूवेंको देख कर इसकी जडमें एक शक्तिमान् अग्नि अर्थात् परम आत्मा निःसंदेह है ऐसा अनुमान निश्चित करते हैं। यद्यपि परमात्मा नहीं दिखाई देता, तथापि जगत् के कार्य को

देखकर उसके मूल कारण के स्थानपर एक अद्भुत शक्तिवाली चेतनशक्ति अवश्य चाहिये ऐसा निश्चय हो जाता है। यही परमात्मा है। इसी परमात्माकी आगपर वीर लोग इस जीवात्मरूपी पकाने योग्य, परिपक्व करने योग्य पदार्थ को पकाते हैं। मनुष्य की उन्नति के लिये जो योग्य और प्रधान धर्म हैं वे येही हैं अर्थात् मनुष्य को इन ही धर्मोंका पालन करना अत्यंत आवश्यक है]

(८) (केशिनः त्रयः ऋतुथा विचक्षते) तेजस्वी किरणोंवाले तीन पदार्थ हैं जो ऋतुओंके अनुसार चमकते हैं (एषां एकः) इन तीनोंमेंसे एक(संवत्सरे वपते) यज्ञमें बीज डालता है, (अन्यः शचीभिः विश्वं अभिचष्टे) दूसरा अपनी शक्तियोंसे विश्वको देखता है, परंतु (एकस्य ध्राजिः ददृशे, न रूपं) एक की केवल गति ही दिखाई देती है उसका रूप नहीं दिखाई देता ॥ २६ ॥

[चमक वाले तीन पदार्थ हैं एक दैवी तेजस्विनी प्रकृति, दूसरा बढनेकी शक्तिसे युक्त तेजस्वी जीवात्मा और तीसरा महाशक्ति शाली तेजस्वी परमात्मा। प्रकृतीकी चमक दमक सृष्टिमें चारों ओर सबको दिखाई देती है, हरएक इसका अनुभव कर सकता है। कई ज्ञानी लोग जीवात्माको अनुभव करते हैं, क्योंकि "मैं हूं" इस अनुभव से हरएक को इसका अनुभव होता है। यह देखनेवाला स्वयंही है। परंतु इस प्रकार परमात्माका रूप नहीं दिखाई देता, उसकी केवल गतिसे यह चल रहा है इसका अनुभव होता है, परंतु उसका रूप कैसा है यह समझना अति कठिन है।]

(९) (वाक् चत्वारि पदानि परिमिता) वाणी चार पदोंसे परिमित है (ये मनीषिणः ब्राह्मणाः ते तानि विदुः) जो ज्ञानी मननशील विद्वान हैं वेही उन चार पदोंको जानते हैं। इन चार

पदोंमेंसे (त्रीणि गुहा निहिता न इंगयन्ति) तीन पाद हृदयमें गुप्त रखे हैं वे प्रकट नहीं हैं परंतु (मनुष्याः तुरीयं वाचः वदन्ति) मनुष्य चतुर्थ अवस्था की वाणीको ही बोलते हैं ॥ २७ ॥

[इस मंत्रमें आत्माकी शक्ति वाणीमें परिणत होती है इसलिये वाणीका मूल आत्मामें देखना चाहिये यह उपदेश किया है। वाणीके चार रूप होते हैं, नाभि, हृदय, कंठ और मुख इन चार स्थानों में वाणी प्रकट होती है । पहिले तीन स्थानों में होने वाला नाद ब्रह्मज्ञानी समझ सकते हैं, परंतु मुखसे उच्चाराशब्द सब लोग जमझ सकते हैं। यद्यपि पहिले तीन स्थान का शब्द सब लोग नहीं समझ सकते तथापि वह है क्यों कि वह ज्ञानी मनुष्योंके अनुभवमें आता है । इस प्रकार वाणीमें आत्माका स्फुरण देखनेसे वाणीके द्वारा आत्माकी शक्ति प्रकट हो रही है इस बातका अनुभव होगा और मैं आत्मस्वरूप हूं इस बातका पता लग जायगा ।]

(१०) एकही सत्य आत्माको ज्ञानी लोग अनेक नामोंसे पुकारते हैं, उसीको इन्द्र, मित्र, वरुण, अग्नि, दिव्य सुपर्ण, गरुत्मान्, यम, मातरिश्वा आदि कहते हैं ॥ २८ ॥

[इस मंत्रमें न कहे हुए शब्द भी आत्माके वाचक हैं यह आशय यहां है, सोम, चंद्र, रुद्र, वृषभ, उक्षा, ऋषभ आदि अनेक शब्द हैं कि जो उसी अद्वितीय आत्माके वाचक वेद में आये हैं ।]

पाठक यहां देखें कि " उक्षाणं अपचन्त " का अर्थ प्रकरणके अनुकूल किस प्रकार होता है । परंतु युरोपीयनोंका किया हुआ अर्थ यदि यहां लिया जाय तो वह इस आत्मोन्नतिके प्रकरणमें बैठता ही नहीं है । भारतीय भाष्यकारोंमेंसे किसीनेभी युरोपीयनों के अर्थोंकी पुष्टि नहीं की है । बैलवाचक जहां शब्द आजाय वहां युरोपीयनोंको दूसरा तीसरा कुछ भी सूझताही नहीं है, एक मांस

काटना, पकाना और खाना, यही कल्पना युरोपीयनों के सन्मुख खडी हो जाती है। अर्थ करनेके समय प्रकरणानुकूल अर्थ करना भी आवश्यक है, यह सर्वमान्य बात भी जब ये लोग मन घडंत अर्थ करनेके समय भूल जाते हैं तब आश्चर्य ही होता है। इसलिये युरोपीयनों के अर्थों को स्वीकार करने वाले भारतीय विद्वानोंको ये अर्थ के अनर्थ देख कर बडा सावधान होना चाहिये। अब कई पाठकों को "वृषभ" शब्द के अर्थके विषयमें शंका हो सकती है इसलिये इस शब्द के वेद में अर्थ किस प्रकार होते हैं यह यहां देखना आवश्यक है, इसकारण इस शब्दका अर्थ बताते हैं-

[४२] "वृषभ" का अर्थ।

संस्कृत भाषामें "वृषभ" शब्द का अर्थ बैल है यह बात सब जानते ही हैं, परंतु वेद में केवल यही एक अर्थ नहीं है। वृषभ, ऋषभ आदि शब्द वेद में विलक्षण अर्थ से प्रयुक्त होता है, यह विषय अत्यंत महत्त्व का होने के कारण यहां इसका थोडासा विस्तार करनेकी आवश्यकता है, पहिले कई उदाहरण देखिये-

चत्वारि शृंगा त्रयो अस्य पादा द्वे शीर्षे सप्तहस्तासो अस्य।
त्रिधा बद्धो वृषभो रोरवीति महोदेवो मर्त्यां आ विवेश॥

ऋ० ४। ५८। ३

"चार सींगवाला, तीन पांव वाला, दो सीरवाला तथा सात हाथों से युक्त महादेव वृषभ तीन स्थानों में बंधा हुआ शब्द करता है वह मर्त्यों में प्रविष्ट होवे।"

यहां वृषभ शब्द का अर्थ बैल नहीं है परंतु "शब्द" है यह सब भाष्यकार मानते हैं। यहां बैल अर्थ लेनेसे कुछ तात्पर्य निकलेगा ही नहीं क्यों कि चार सींगवाला बैल होता ही नहीं। यहां के चार सींग व्याकरणके शब्द के चार विभाग - ' नाम,

" उक्षा जहां (अक्तोः परिधानं स्वं धाम) अंधकारका नाशक अपना प्रकाशमय स्थान (जरितुः ववक्ष) उपासक के पास करता है। "

यहां अंधकार का नाश करनेवाला उक्षा सूर्य समझिये अथवा अज्ञानान्धकार का नाशक परमात्मा समझिये, परंतु यहां उक्षा शब्दका अर्थ बैल नहीं हो सकता, इतनी बात सत्य है। इस उक्षा शब्दके विषयमें म० ग्रिफिथ क्या कहते हैं देखिये- " उक्षा " Bull, the strong God who protects his worshiper अर्थात् " यहां का बैलवाचक उक्षा शब्द उपासक की रक्षा करने वाला सर्व शक्तिमान परमेश्वर का वाचक है।" उक्षा सोम आदि शब्द परमात्माके वाचक हैं यह बात इससे पूर्व हमने बता दी है, तथा यह भी बताया है कि जो नाम परमेश्वरके वाचक हैं वे जीवात्मा के भी वाचक हैं। इससे उक्षा शब्द के जीवात्मा परमात्माके वाचक होने में किसीको शंका नहीं हो सकती।

यदि " उक्षा, वृषभ, ऋषभ " आदि बैलवाचक शब्दोंके ऐसे आध्यात्मिक अर्थ होते हैं यह बात सर्वमान्य है तो फिर किसी के सामने "उक्षाणं अपचन्त " शब्द आये तो पूर्वापर संबंध न देखकर ही बैल पकानेका भाव निकालनेका किसको कैसा अधिकार पहुंच सकता है ? परमात्मा परिपूर्ण है और उसकी उपासना करने द्वारा जीवात्मा पूर्ण होने की तैयारीमें है, इसलिये इस जीवात्माकी पूर्णता करनेके उपाय विविध अलंकारोंसे वेद में बताये हैं, उसमें " देहरूपी हंडीमें इस जीवात्माको पका कर परिपक्व बनानेको " भी एक आलंकारिक उपमा है। यह उपमा इतनी अर्थपूर्ण है कि जिस समय यह मनके सन्मुख ठीक प्रकार खडी हो जाती उस समय मन आश्चर्यचकित हो जाता है। वेद में केवल यही एक उपमा नहीं है, सैंकडों अन्य उपमायें हैं

और कईयोंमें स्पष्ट बातका उल्लेख है और कईयोंमें इसी प्रकार गुप्त उपदेश है।

अब पाठक पूछेंगे कि ऐसी उपमाएं और ऐसे अलंकार वेद में क्यों आये हैं? उत्तरमें निवेदन है कि यह कोई अस्वाभाविक अलंकार नहीं है । वेद में शब्दोंके यौगिक अर्थ प्रधान होते हैं इसलिये केवल रूढ अर्थ को लेकर वेद पढने वाले ही इस प्रकार भ्रममें पडते हैं, परंतु जो लोग यौगिक अर्थ लेते हैं वे सुगमता से वेदका अर्थ समझ सकते हैं। अब अपने प्रचलित उक्षा शब्द का अर्थ ही देखिये—

" उक्ष् सेचने " धातुसे " उक्षन् " शब्द बना है, इसलिये " सिंचन करने वाला " यह अर्थ इसका मूल यौगिक है । यह मूल अर्थ इंग्लिश कोशोंमें (Sprinkling) सिंचन करनेवाला, ऐसा दिया है । यही इस शब्द का अर्थ मुख्य है, अन्य सब इसी के भाव हैं । अब इनके अर्थ देखिये---

मेघ जलका सिंचन करता है, जलसे पृथ्वीको भिगोता है इस लिये मेघका नाम " उक्षा " है। इन्द्र वृष्टिसे जगत्को भिगोता है इसलिये इन्द्र का नाम उक्षा है । परमात्मा संपूर्ण स्थिरचर जगत् को जीवन के अमृतसे भिगा देता है इस लिये परमात्माका नाम उक्षा है । कर्मफलोंको देनेके कारण भी उस को उक्षा कहते हैं। जीवात्मा अपने शरीरको अपनी प्राणशक्तिसे भिगा देता है इसलिये उसको उक्षा कहते हैं । इस प्रकार विविध महान शक्तियों का नाम उक्षा है । न इस में कोई अत्युक्ति है और ना ही खीचा-तानी है, यह तो शब्दका वास्तविक अर्थ है। जो मनुष्य शब्द के वास्तविक अर्थ को समझ नहीं सकता उसने अपने अज्ञान के कारण यदि किसी वेद मंत्रके अर्थ का अनर्थ किया, तो वह उस अज्ञानीका दोष है उसमें वेदके वर्णनमें दोष किस प्रकार

आसकता है ? इस लिये आवश्यक है कि जो वेदका अध्ययन करना चाहते हैं वे वेदके मूल संज्ञाको जानें, वैदिक शब्दोंके अर्थ देखें और वेदके वर्णनशैलीसे परिचित हों और पश्चात् वेद पढें । ऐसा करनेसे अर्थका अनर्थ नहीं होगा अन्यथा इसी प्रकार अर्थके अनर्थ बनेंगे । यह तो अज्ञानका चमत्कार है ।

उक्षा शब्दका मुख्य यौगिक अर्थ सिंचन करने वाला है, जो सिंचन करता है उसमें शक्ति की अधिकता होती है । जिस प्रकार उक्षा शब्द सिंचन करनेवाला है उसी प्रकार वृषभ, वृषा ये शब्द वृष्टि करनेवाले के द्योतक हैं । इसलिये जो 'उक्षा' शब्द के वाचक हैं वे ही वृषभ और वृषा शब्दके भी वाचक हैं । अतः इन्द्र, परमात्मा, सूर्य, मेघ आदि अर्थ इस शब्दके भी हैं । पूर्वोक्त प्रमाण वचनों में एक मंत्रमें " पति " के लिये वृषभ शब्द आगया है वहां " वीर्यप्रदान करनेमें समर्थ " यह अर्थ है । जैसा मेघ जल प्रदान करनेमें समर्थ होता है उसी प्रकार पति वीर्य प्रदान करनेमें समर्थ होना चाहिये । पाठक इस वर्णन से जान सकते हैं कि एकही उक्षा या वृषभ शब्द ऐसे विभिन्न अर्थोंका वाचक कैसा बन सकता है । अब पाठकोंके सन्मुख इन शब्दोंके कुछ उदाहरण रखते हैं जिनके विचार से पाठक जान सकते हैं कि इन शब्दोंके अर्थ कैसे विलक्षण होते हैं और इनका अर्थ केवल बैल ही नहीं है-

वृषभा ये स्वराजः । ते वर्षन्ति ते वर्षयन्ति०॥

अथर्व० ९ । १ । ९

' जो (स्व-राजः) अपने तेजसे युक्त (वृषभाः) मेघ हैं वे (वर्षन्ति) वृष्टि करते हैं, वे वृष्टि कराते हैं । ' यहां वृषभ शब्द बैलवाचक नहीं है, मेघका वाचक है क्यों कि इसमें वृष्टिका संबंध है । और देखिये —

पर्वतस्य वृषभस्याधिपृष्ठे नवाश्चरन्ति
सरितः पुराणीः॥ अथर्व० १२।२।४१

"(वृषभस्य पर्वतस्य पृष्ठे) जिसपर वृष्टि होती है ऐसे पर्वतपर से (पुराणी सरितः नवाः चरन्ति) पुराणी नदियां नई बनकर बहतीं हैं!" यहांका वृषभ शब्द बैलका वाचक नहीं है परंतु (Raining mountains) वृष्टि होनेवाले तथा बादलोंसे घिरे पर्वतशिखरोंका वाचक है। यह शब्द निःसंदेह सिद्ध करता है कि वृषभ शब्द वेदमें सर्वत्र बैलवाचक नहीं है। और एक अद्भुत मंत्र देखिये-

तं हि स्वराजं वृषभं तमोजसे धिषणे निष्टतक्षुः। अ० २०।११३।२

इसका अर्थ म० ग्रिफिथ यह करते हैं- For him, strong independent Ruler, Heaven and Earth have fashioned forth for power and might. अर्थात (तं वृषभं स्वराजं) उस बलशाली स्वतंत्र राजाको द्युलोक और पृथ्वी लोकोंने शक्ति (ओजसे) और बल के लिये बनाया है। इस मंत्रका वृषभ शब्द स्वतंत्र साम्राज्य के चालक सम्राट् के लिये आया है। आजकल यदि कोई मनुष्य किसी सम्राट् को "वृषभ" (बैल) करके पुकारेगा तो वह जेलका हकदार होगा, परंतु वैदिक जमानेमें "वृषभ" का बैल अर्थ विशेष करके नहीं था, परंतु "शक्ति शाली, बलवान आदि अर्थ" प्रचलित थे, इसलिये यह शब्द सम्राट् के लिये वेदमें प्रयुक्त किया है। इससे स्पष्ट सिद्ध होता है कि वृषभ आदि बैलवाचक शब्द वैदिक समयमें प्रशंसावाचक माने जाते थे और उनका उपयोग सम्राट् की प्रशंसा करनेमें भी किया जाता था। और एक मंत्र देखिये--

ब्रह्मणस्पतिर्वृषभिर्वराहैर्घर्मस्वेदेभिर्द्रविणं व्यानट्।
अथर्व० २०।९१।७

बृहस्पतिने (घर्म स्वेदेभिः) जिसमें पसीनेकी बूंदें आती हैं ऐसे (वृषभिः वर+अहैः) शक्ति शाली दिनोंके द्वारा (द्रविणं व्यानट्) धन प्राप्त किया। अर्थात् जिन दिनों में ऐसे बडे प्रयत्न किये जाते थे उन दिनोंके प्रयत्नोंसे उसको धन प्राप्त होता है। इस मंत्रका " वृषा " शब्द बैलवाचक नहीं है प्रत्युत शक्तिके कर्म बताता है। तथा " वराह " शब्द भी सूवरका वाचक नहीं है प्रत्युत वह " वर+अह " अर्थात् उत्तम शुभ दिनोंका वाचक है। यदि ये सत्य अर्थ न लिये जांय तो कोई वेदका अनभिज्ञ ऐसे अनुमान कर सकेगा कि " बृहस्पतिने बैल और सूवर बेचकर गर्मीके दिनोंमें बहुत धन कमाया!! " यह मंत्र इस लिये यहां बताया है कि वास्तविक अर्थका अनर्थ अज्ञानके कारण कैसा हो सकता है इसका ठीक अनुमान पाठकोंको हो जाय। सूवरवाचक वराह शब्द " उत्तम दिन " का वाचक वेद मंत्रमें मिलता है। अब पाठक देख सकते हैं कि इतना अर्थ का सूक्ष्म विचार करना आवश्यक होता है, अन्यथा जो अनुमान होंगे वे अनर्थकारकही होंगे। परमात्मा के लिये वृषभ शब्द उसके अगाध बलके दर्शाने के लिये वेदमें प्रयुक्त होता है, देखिये--

वृषाऽसि दिवो वृषभः पृथिव्याः वृषा सिंधूनां
वृषभस्तियानाम्॥ ऋ० ६। ४४। २१

" तू द्युलोक, पृथिवी, समुद्र तथा स्थिर जलोंका वृषभ अर्थात् शक्ति दाता हो। " बलकी वृष्टि करने वाला इस अर्थमें यह शब्द यहां आया है।

इतने उदाहरण देखनेके पश्चात् किसीको संदेह नहीं हो सकता कि वेद में वृषभ, उक्षा आदि बैल वाचक शब्द किस किस अर्थमें प्रयुक्त हैं। जो केवल बैल ही उनका अर्थ करते हैं वे कैसे गलतीपर हैं यह भी यहां स्पष्ट होगया है। अब प्रसंगसे

प्रास एक बातको यहां विशेष रूपमें बताना है पाठक उसका भी विशेष विचार करें, क्यों कि संपूर्ण वैदिक यज्ञ क्रिया के साथ उसका संबंध है। देखिये

४४ एक और अनेक ।

गोमेध आदि यज्ञोंमें गायका बली दिया जाता था और यज्ञशेष मांस खाया जाता था ऐसा कथन मांसपक्षी लोग करते हैं। इस लिये संक्षेपसे यज्ञका तत्त्व यहां अब देखना है। यह यज्ञका तत्त्व देखनेके लिये वेद में एक और अनेकों का संबंध जिस ढंगसे वर्णन किया है वह ढंग समझ लेनेकी बडी आवश्यकता है। यह संबंध बडा महत्त्वका है और पूर्ण रीतिसे बताना हो तो बडे लंबे लेख की आवश्यकता होगी, परंतु इतना स्थान यहां नहीं है. अतः अति संक्षेपसे इसके मूलभूत सिद्धांत को ही यहां बताते हैं। वेदमें देवतावाचक नामोंमें एकही देवता एक वचन और अनेक वचनमें आती है जैसा —

१ एक एव रुद्रः। तै. सं. १।८।६।१

२ असंख्याताः सहस्राणि ये रुद्राः अधिभूम्याम् ॥

य० अ० १६।५४

(१) एकही रुद्र है। (२) असंख्यात हजारों ये रुद्र भूमिपर हैं।

वेदमें रुद्र एक है ऐसा भी कहा है और रुद्र अनेक हैं ऐसा भी कहा है। यह एक रुद्र कहां है और अनेक रुद्र कहां है इसका विचार करनेके समय हमें निम्न लिखित मंत्र सहायता दे सकते हैं-

१ रुद्रं रुद्रेषु रुद्रियं हवामहे ॥ ऋ० १०।६४।८।

२ शं नो रुद्रो रुद्रेभिर्जलाषः ॥ ऋ० ७।३५।६॥

३ रुद्रो रुद्रेभिर्देवो मृळयाति नः ॥ ऋ० १०।६६।३॥

४ रुद्रं रुद्रेभिरावहा बृहन्तम् ॥ ऋ० ७ । १० । ४।

(१)(रुद्रेषु रुद्रं) अनेक रुद्रोंमें रहने वाले एक रुद्र की हम प्रार्थना करते हैं। (२) अनेक रुद्रोंके साथ रहनेवाला एक रुद्र हमें शांति देनेवाला हो। (३) अनेक रुद्रोंके साथ रहने वाला एक रुद्र हमें सुखी करे। (४) अनेक रुद्रोंके साथ एक बडे रुद्र की पूजा करो।

इत्यादि अनेक मंत्रोंमें अनेक रुद्रोंके साथ रहने वाले एक महान् रुद्रका वर्णन पाठक देखें। इस का आगे संबंध आनेवाला है इस लिये इस एक और अनेक देवोंका स्मरण रखें। इसी प्रकार अग्निका भी वर्णन देखिये—

विश्वेभिरग्ने अग्निभिरिमं यज्ञमिदं वचः।
चनो धाः सहसो यहो। ऋ० १ । २६ । १०
अग्ने विश्वेभिरग्निभिर्देवेभिर्महया गिरः।
षुयज्ञे ये उ चायवः॥ ऋ० ३ । २४ । ४

इन दोनों मंत्रोंमें (विश्वेभिः अग्निभिः अग्निः) अन्य अनेक अग्नियोंके साथ रहनेवाले एक अग्नि का वर्णन देखने योग्य है। पाठक इन मंत्रोंमें कही बात और पूर्वोक्त रुद्रमंत्र में कही बात तुलना करके देखें तो उसमें उनको अपूर्व साम्य नजर आवेगा। यहां दोनों देवताओं के वर्णनमें "एक देव अनेक देवोंके साथ है" यह बात पाठक देखें। अब निम्न मंत्र भाग भी पूर्वोक्त मंत्रोंके साथ देखें—

१ देवो देवान् क्रतुना पर्यभूषत् ॥ ऋ० २ । १२ । १
२ देवो देवान् परिभूर्ऋतेन ॥ ऋ० १० । १२ । २
३ देवो देवान् यजत्वग्निरर्हन् ॥ ऋ० २ । ३ । १
४ देवो देवान् यजसि जातवेदः ॥ ऋ०१०।११०।१
५ देवो देवान् स्वेन रसेन पृञ्चन् ॥ ऋ०९।९७।१२

(१) एक देव अनेक देवोंको ऋतुसे भूषित करता है, (२) एक देव अनेक देवोंको ऋतसे घेरता है, (३) एक योग्य देव अग्नि अनेक देवोंका सत्कार करे, (४) एक जातवेद देव अनेक देवोंका सत्कार करे, (५) एक देव अनेक देवोंको अपने रससे तृप्त करता है।

पूर्वोक्त मंत्रोंपर ये मंत्र बहुत ही प्रकाश डालते हैं। एक देव मुख्य है और उसके आश्रयसे अनेक देव रहते हैं। " एक परमात्माके आश्रयसे अनेक जीवात्मा रहते हैं " यह तात्पर्य ध्यानमें धर कर यदि पूर्वोक्त मंत्र देखे जांय तो उनका अर्थ अधिक स्पष्ट हो जायगा। यहां यही विषय प्रतिपादन करना नहीं है, अन्यथा इस विषयके अनेक प्रमाण दिये जा सकते हैं, परंतु यहां जो बात बतानी है वह इतने प्रमाणोंसे स्पष्ट हो जायगी, इसलिये इस विषयको अधिक लंबा करनेकी इच्छा नहीं है। जितने मंत्र यहां दिये हैं उनके ही मननसे अध्यात्मविषयकी एक महत्त्वपूर्ण बात कि "एक परमात्माके आधारसे अनेक जीवात्मा रहते हैं' यह बात वेदमें किस ढंगसे लिखी है यह बात पाठकों को स्पष्ट हो जायगी।

४५ यज्ञका तत्त्व ।

उक्त बातमें एक महत्त्वपूर्ण यज्ञका तत्त्व है। परमात्मा अपनी शक्तिका यज्ञ अनंत जीवोंके उद्धार के लिये करता है, संपूर्ण ब्राह्मण ग्रंथोंमें प्रायः यज्ञका वर्णन करते हुए पहिले समय में यह यज्ञ परमात्मा ने इसप्रकार किया ऐसा लिखा होता है। इसका उद्देश यह ही है कि अनंत जीवात्मा भी उसी प्रकार परोपकार करने और दूसरोंका उद्धार करने के लिये उक्त यज्ञ करें। परमात्मा का जो सब का उद्धार करने का महायज्ञ चल रहा है उसमें संपूर्ण

जीवात्माएं अपनी संपूर्ण शक्ति लगा कर समर्पित हों। जिस प्रकार राष्ट्रोद्धार के महायुद्ध में राजा अपनी संपूर्ण शक्ति लगाता है, उस समय सब सैनिकोंको तथा सब प्रजाजनोंको भी अपनी सब शक्ति लगाकर संमिलित होना चाहिये; ऊसी प्रकार परमात्मा अपनी शक्ति लगाकर जो सबके उद्धार के यज्ञ कर रहा हैं उन यज्ञोंमें जीवोंको भी आत्मसमर्पण करना चाहिये। यहां यज्ञ यही है कि " एक अनेकों के लिये समर्पित हो रहा है, अतः अनेक भी एकके लिये समर्पित हों। "

अपने शरीरमें भी देखिये कि यह एक जीवात्मा अपनी सब शक्ति शरीरके संपूर्ण अनेक अवयवों, अनेक अंगों और अनेक इंद्रियों में डालता है और इस जडको जीवनपूर्ण करता है, इस लिये इन अनेक इंद्रियों को संयमादि द्वारा जीवात्माके उद्धारके तपादिके कर्मके लिये अपने आपको समर्पित होना चाहिये। यह यज्ञ शरीरमें चल रहा है।

जो यज्ञ परमात्माकी शक्तिसे जगत् में हो रहा है वही अल्प क्षेत्रमें जीवात्माकी शक्ति से शरीरमें बन रहा है और वही मनुष्यों को जगत् में करना चाहिये।यहां भी एक अनेकोंके लिये समर्पितहो रहा है और अनेक एक के लिये समर्पित हो रहे हैं। यह " एक और अनेक " का संबंध पाठक ध्यानमें धारण करें।

वेद में जीवात्मापरमात्माके एक ही नाम होते हैं यह बात इस से पूर्व बतायी ही है, इसी लिये एक रुद्र और अनंत रुद्र के वर्णनमें एकही रुद्र शब्दसे, तथा एक ही अग्नि शब्दसे जीवात्मा और परमात्मा का वर्णन होता है। इसी प्रकार इन्द्र, सोम, वृषभ आदि शब्दों के विषयमें जानना चाहिये। इतनी बात जानने के पश्चात् निम्न लिखित दो मंत्र देखिये—

४६ एक वृषभके साथ अनेक वृषभ ।

आ चर्षणिप्रा वृषभो जनानां राजा कृष्टीनां पुरुहूत इन्द्रः ॥१॥
ये ते वृषणो वृषभास इन्द्र ब्रह्मयुजो वृषरथासो अत्याः ।
तां आतिष्ठ तेभिरा याह्यर्वाङ् हवामहे त्वा सुत इन्द्र सोमे ॥२॥

ऋ० १।१७७।१-२

" (जनानां वृषभः) लोगोंका बैल जैसा बलवान (कृष्टीनां-राजा) प्रजाओंका राजा इन्द्र है ॥ १ ॥ हे इन्द्र ! जो तेरे (वृषणः वृषभासः) बलवान अनेक वृषभ (ब्रह्मयुजः) ज्ञानसे युक्त हैं उनके साथ यहां (आयाहि) आओ ।"

इन मंत्रों में एक वृषभ (इन्द्र) के साथ अनेक वृषभ (वृषभासः = इन्द्राः) रहनेका वर्णन है। जो भाव अनेक रुद्रोंके साथ एक रुद्रका है, तथा जो भाव अनेक अग्नियोंके साथ रहने वाले एक अग्निका है, वही भाव एक वृषभ या इन्द्र के साथ रहनेवाले अनेक वृषभ या इन्द्रमें निःसंदेह है। एक परमात्मा के साथ अनेक जीवात्माओंका होना इस प्रकार वेद में वर्णन किया है । और इनका यज्ञ पूर्वोक्त लेखमें बतायी रीतिके अनुसार हो रहा है ।

एक परमात्माके नाम इन्द्र, अग्नि, रुद्र, सोम, वृषभ आदि हैं और ये ही नाम अनेक वचनमें आगये तो जीवात्मा के वाचक होते हैं । इन नामोंके साथ ही निम्न लिखित नामभी देखने योग्य हैं—

" अज " शब्द बकरे का वाचक होता हुआ भी " अ+ज " अर्थात् अ-जन्मा ईश्वर का वाचक है और साथ साथ "अ-जन्मा जीवात्मा"का भी वाचक है ।"अज"शरीरमें रहनेवाले जीवात्मा का, जगत् में व्यापने वाले परमात्माका तथा बकरेका वाचक है।

" वृषभ " शब्द बैलका वाचक होता हुआ भी यौगिक अर्थके बलसे शक्ति शाली होनेका भाव बतानेके कारण परमात्माका तथा शरीरमें जीवात्मा का वाचक है। पीछे इन्द्र शब्द का वाचक वृषभ शब्द अनेक वार दियां है और इन्द्र शब्द जीवात्मा परमात्माके लिये प्रसिद्ध है। इसी प्रकार " ऋषभ और उक्षा " शब्दके भी दोनों अर्थ हैं।

" अश्व " शब्द घोडेका वाचक होता हुआ भी पूर्वोक्त प्रकार जीवात्मा परमात्मा का वाचक है, परमात्मा का वाचक होते हुए इसका अर्थ (अश्नुते व्याप्नोति) सर्वत्र व्यापक है और जीवात्मा वाचक होने के प्रसंगमें (अश्नाति) फल भोग करता है, या फल खाता है यह अर्थ होता है। अर्थात् एक ही अश्व शब्दका अर्थ जीवात्मा और परमात्मा होता है।

ये सब शब्द इन अर्थोंके साथ ध्यानमें धरनेसे किसी मंत्रमें " अज " शब्द आया, किसीमें " अश्व " आगया अथवा किसी में " वृषभ " शब्द आया, या इसी प्रकार का कोई अन्य शब्द आया तो आगे पीछे का विचार न करते हुए एकदम मांस भक्षण परके ही अर्थ निकालनेकी आवश्यकता नहीं है, यह बात इतने विवरण से पाठकोंके सन्मुख हो जायगी।

मनुष्य मात्र या प्राणिमात्र के अंदर जो जीवात्मा है वह जन्ममरण रहित हाने से " अ-ज " अर्थात् अजन्मा है, वह युवा शरीरमें रहता हुआ वीर्यसिंचन करने द्वारा प्रजाकी उत्पत्ति करता है, इस लिये इस को " वृषा, वृषभ, उक्षा. " आदि नाम होते हैं, यह कर्मफल भोग करता है इसलिये इसको "अश्व" कहते हैं, यह अपने इंद्रिय गणोंको अपने वशमें रख सकता है, इसलिये इसीको 'वशा' कहते हैं। अर्थात् ये नाम इसकी विशेष उन्नतिकी अवस्था बताते हैं। इस प्रकार का जीवात्मा आपने आपकी शक्ति सर्वस्वक

परम भक्तिके साथ परमात्मार्पण करता है, यह इसका महायज्ञ है, इतना विवरण मननपूर्वक देखने के पश्चात् निम्न मंत्र देखिये—

यस्य वशास ऋषभास उक्षणो यस्मै मीयन्ते स्वरवः स्वर्विदे ।
यस्मै शुक्रः पवते ब्रह्मसंमितः स नो मुञ्चत्वंहसः ॥

अथर्व० ४ । २४ । ४

" जिसके लिये वशा, ऋषभ, उक्षा आदि हैं, जिस तेजस्वी के लिये यज्ञ किये जाते हैं (ब्रह्मसंमितः शुक्रः) ज्ञानसे पूर्ण पवित्र सोम भी जिसके लिये है वह (नः अंहसः मुञ्चतु) हम सबको पाप से छुडावे । "

ऐसे मंत्रोंमें मांसपक्षी लोग समझते हैं कि (वशा) गौवें, (ऋषभ) बैल, (उक्षा) बैल आदि प्राणि यज्ञमें बली चढाये जाते थे और उनका मांस यज्ञशेष मांस खाया जाता था । परंतु इतनी कल्पना करनेके लिये इस मंत्रमें कोई शब्द नहीं है । परमात्मा देव के लिये वशा ऋषभ उक्षा आदि हैं, इन्द्रके लिये थे हैं, इतना कहने मात्रसे उनकी हिंसा करके आहुति डालनेका विधान कहां और कैसे होता है ? यदि स्थूल हवन ही यहां अभीष्ट लिया जाय, और इससे पूर्व लिखा आध्यात्मिक यज्ञ न लिया जाय, तो भी वशा शब्दसे गौका दुग्ध लिया जा सकता है । इस विषयमें पहिले प्रमाण बताये जा चुके हैं । वृषभादि अन्य पशुओं की आवश्यकता यज्ञमें अन्य रीतिसे भी होती है । यज्ञमें गाडी खींचने, वीरोंको ले आने और ले जाने आदिके लिये बैल और घोडों की आवश्यकता होती ही है, इसलिये यज्ञमें जहां जहां पशुओंका उल्लेख आजाय वहां वहां हवनके लिये ही है ऐसा मानना अनुचित ही होगा । वेदमें—

यस्तन्न वेद किमृचा करिष्यति । ऋ० १ । १६४ । ४३

" जो उस आत्मतत्त्वको नहीं जानता वह वेदके मंत्र लेकर क्या करेगा " ऐसा जो कहा है वह निःसंदेह बता रहा है कि वेदका मुख्य तात्पर्य अध्यात्मज्ञान देना ही है । वेद प्रतिपादित यज्ञयाग आदि सब इसीलिये हैं। यह अध्यात्मदृष्टि रखकर 'अज अश्व, वृषभ ' आदि शब्दोंके जो भाव अध्यात्मविद्यामें समझे जाते हैं, और उनके यज्ञसे जो भाव अध्यात्म में लेना है वह ऊपर लिखा है। परंतु संभव है कि कई कारणोंसे किसी विद्वानको यह भाव लेना पसंद न हो और केवल स्थूल भाव लेनाही पसंद हो तो, यद्यपि वैसा स्थूल अर्थ लेना इस मंत्रके भावसे सर्वथा विपरीत है. तथापि हम इस पर अधिक बल न देते हुए, इतनाही कहते हैं कि स्थूल दृष्टिसे भी यज्ञमें पशुसमर्पित करने और उसका मांस अंतमें भक्षण करनेके लिये जो मंत्र ऊपर बताये गये हैं वे उनका पक्ष सिद्ध नहीं करते हैं। " इन्द्रके लिये वशा, वृषभ, ऋषभ हैं " इतना कहने मात्रसे यह बात किसी भी रीतिसे सिद्ध नहीं हो सकती कि इन पशुओंके मांसका समर्पण, हवन और भक्षण किया जाय। अपने मनकी बात वेदपर लगाना नहीं चाहिये। देखिये यदि पूर्वोक्त मंत्रके " वशा, ऋषभ. उक्षा " ये शब्द गाय और बैलके वाचक मानते हैं तो उसीके पूर्व के मंत्रमें " वृषभ " शब्द आया है उसका अर्थ देखिये—

यश्चर्षणि प्रो वृषभः स्वर्विद् यस्मै ग्रावाणः प्रवदन्ति नृम्णम्।
यस्याध्वरः सप्त होता मदिष्ठः स नो मुञ्चत्वंहसः ॥

अथर्व० ४ । २४ । ३

इसका म० ग्रिफिथ का ही अर्थ देखिये-

Ruler of men, finder of light, the hero: the pressing stones declare his valour, master of sweetest

sacrifice with seven Hotars. May he deliver us from greef and trouble.

इसमें " वृषभ " शब्दका अर्थ 'वीर' (hero) किया है, यह देखने योग्य है, इसी के आगेके मंत्रमें ही वशा, ऋषभ, उक्षा ये शब्द पडे हैं। यदि पूर्व मंत्रके " वृषभ " शब्दका अर्थ वीर होता है तो उसके अगले ही मंत्रमें वृषभ जातीके ही " वशा, ऋषभ, और उक्षा " शब्दके अर्थ " वीरा, वीर, नायक " माने जानेमें क्या हानी होगी ? इस तीसरे मंत्रमें वृषभ शब्दका अर्थ बैल किसी भी प्रकार किया ही नहीं जा सकता, यह देखकर यदि इसी प्रकरण के इसके अगले ही मंत्रमें वीर (hero) ही अर्थ किये जांय तो कितना उत्तम सजता है। यह उत्तम अर्थ छोड कर ये ही म० ग्रिफिथ आगेके मंत्रका अर्थ

यस्य वशास ऋषभास उक्षणः। अथर्व० ४।२४।४

" The lord of barren cows and bulls and oxen."
ऐसा किया है। यहां वशा शब्दका अर्थ वंध्या गौ किया है, परंतु इसी अथर्व वेदमें वशा गौका दूध पीनेका उल्लेख है। यदि वशा शब्दका अर्थ वंध्या गौ अथर्व वेदमें होता तो उसके दूध की संभावना न होती। संस्कृत भाषामें वशा का अर्थ वंध्या गौ हो, परंतु वेदमें यह अर्थ नहीं है। अब पूर्वोक्त मंत्रका अर्थ देखिये-

" (यः) जो (चर्षणि-प्रा) जनताका पालन करनेवाला, (स्वः-विद) आत्मज्ञानके तेजसे युक्त (वृषभः) वीर पुरुष है (यस्मै) जिसके (नृम्णं) शौर्यकी (ग्रावाणः) पत्थर दिलवाले मनुष्य भी (प्रवदन्ति) प्रशंसा करते हैं तथा जो सप्त होता यज्ञका स्वामी है-वह हमें पापसे बचावे। "

यहां " एक और अनेक " का पहिले बताया हुआ संबंध भी देखने योग्य है। (मं० ३ में) एक वृषभ का वर्णन है और (मंत्र ४ में) अनेक वशासः ऋषभासः, उक्षणः अर्थात् अनेकों का वर्णन है। इसलिये भी जो पहिले मंत्रमें वृषभसे अर्थ लिया जाय वही अगले मंत्रमें लेना उचित है।

४७ आलंकारिक गौ और बैल।

वेद में आलंकारिक भाषामें गौ बैलोंका वर्णन आया है वह भी यहां देखना आवश्यक है। इस विषयको संक्षेपसे बतानेके लिये यहां कुछ मंत्र उद्धृत करते हैं-

सहस्त्रशृंगो वृषभो यः समुद्रादुदाचरत् ॥ अ० ४।५।१

सहस्त्रशृंगो वृषभो जातवेदाः। अथर्व० १३।१।१२

" हजार सींगवाला वृषभ समुद्रसे ऊपर आया। हजार सींगवाला वृषभ जिससे वेद बने हैं। " इन मंत्रोंमें निःसंदेह वृषभ शब्द बैलवाचक नहीं है तथा-

यत्र गावो भूरिशृंगा अयासः ॥ ऋ० १।१५४।६

" जहां बहुत सींगवाली गौवें हैं। " इस मंत्रमें भी बहुत सींग वाली गौवोंका वर्णन किया है, जिस जातिके बैल ऊपरवाले मंत्रमें हैं उसी जातिकी गौवें इस मंत्रमें वर्णन की हैं। निःसंदेह ये गौवें और ये बैल आलंकारिक हैं। हमें यहां इन मंत्रोंका विशेष अर्थ बताने की आवश्यकता नहीं है,केवल इतना ही बताना है कि बैलवाचक शब्द वेदमें केवल बैल वाचक नहीं हैं। यह बात वास्तविक रीतिसे स्पष्ट है, परंतु मांस पक्ष के लोग विनाकारण अर्थका अनर्थ करते हैं, इसलिये हरएक विषयके संबंधमें इतना लिखना आवश्यक होता है। अब इस विषयमें एक और मंत्र देखिये—

वत्सो विराजो वृषभो मतीनामा रुरोह शुक्रपृष्ठोऽन्तरिक्षम् ।
घृतेनार्कमभ्यर्चन्ति वत्सं ब्रह्म सन्तं ब्रह्मणा वर्धयन्ति

अथर्व० १३ । १ । ३३

" (मतीनां वृषभः) बुद्धियोंका वृषभ यह (विराजः वत्सः) विराट् का वत्स है। वह (शुक्र पृष्ठः) तेजस्वी पृष्ठवाला अंतरिक्षमें चढा है। घीसे (अर्कं वत्सं) पूजनीय वत्सकी (अभ्यर्चन्ति) पूजा करते हैं (ब्रह्म सन्तं) स्वयं ब्रह्म होते हुए (ब्रह्मणा-वर्धयन्ति) ब्रह्मसे बढाते हैं । " यह मंत्र वृषभ शब्दका आध्यात्मिक महत्त्व अच्छी प्रकार सूचित करता है ।

इस मंत्र में जिस वृषभ का वर्णन है वह विराट् (विराजः वत्सः) पुरुष परमात्माका बच्चा है । विराट् पुरुष या परमात्मा-का बच्चा जीवात्मा है इस विषय में किसीको कोई शंका नहीं हो सकती । तथा यह (मतीनां वृषभः) बुद्धियोंकी वर्षा करनेवाला है, वृद्धि देनेवाला है, यहां वृषभ शब्दका अर्थ वृष्टि करनेवाला है । आत्मा और परमात्मा बुद्धियोंको देते हैं या बुद्धियोंको प्रेरित करते हैं यहबात गायत्री मंत्रमें (धियो यो नः प्रचोदयात्) जो हमारी बुद्धियों को प्रेरित करता है इस मंत्रभागसे व्यक्त हो गई है । जीवात्मा परमात्माका पुत्र होनेसे परमात्माके गुणधर्म अंश-रूपसे जीवात्मामें हैं। परमात्मा स्वयं ब्रह्म है इसी प्रकार उसका पुत्र जीवात्मा भी उसके ब्रह्मगुण से अंशतः युक्त है, यही भाव व्यक्त करनेके उद्देश से (ब्रह्म सन्तं ब्रह्मणा वर्धयन्ति) जीवात्मा स्वयं ब्रह्म होते हुए भी ज्ञानी ब्रह्मकी उपासनासे उसको बढाते हैं। अर्थात् उसकी शक्तिका विकास करते हैं ।

यदि यह मंत्र विशेष रीतिसे देखा जाय तो पाठकों का इस विषय में निश्चय होगा कि यहां का वृषभ शब्द जीवात्मा का वाचक ही है. क्यों कि इसकी सूचक तीन बातें इसमें लिखी हैं- (१)

यह (विराट्) पुरुष परमात्माका पुत्र है, (२) यह बुद्धियोंका प्रेरक है और (३) इसकी उन्नति ब्रह्मकी उपासनासे होती है। ये तीनों बाते स्पष्ट हैं और ये तीनों बातें यहां के वृषभ शब्दका अर्थ जीवात्मा है यह स्पष्ट बता रही हैं। यह हृदयरूपो अंतरिक्षमें रहता है इस लिये इसको अंतरिक्षमें रहा है ऐसा इस मंत्रमें कहा है। वृषभ शब्द इस प्रकार यहां जीवात्मवाचक होने के पश्चात् यदि पाठक यही बात हमारे पूर्व स्थानमें बताये यज्ञ विषयक लेख के साथ तुलना करके देखेंगे, तो निःसंदेह उनके ध्यानमें जीवात्माओंका परमात्माके लिये समर्पित होना, अनेक देवोंका एक देवके लिये समर्पित होना ही यज्ञ का मुख्य तात्पर्य है यह हमने पूर्वस्थान में बताई बात ही स्पष्टता पूर्वक आजायगी। जो बात सत्य होती है वह अनेक प्रकारसे स्वयं खुल जाती है इसमें कोई संदेह नहीं है। इसी विषयमें निम्न लिखित मंत्र देखिये-

अंहोमुचं वृषभं यज्ञियानां विराजन्तं प्रथममध्वराणाम्॥ अपां न पातमश्विना हुवे धिय इन्द्रियेण त इन्द्रियं दत्तमोजः॥
अथर्व. १९।४२।४

(अंहोमुचं) पापसे छुडाने वाले (अध्वराणां प्रथमं विराजन्तं) यज्ञोंमें प्रथम स्थानमें विराजमान (यज्ञियानां वृषभं) यज्ञियों में मुख्य (अपां न पातं) जीवन जलको न गिराने वालेकी (धियः हुवे) बुद्धिकी प्राप्ति के लिये हम प्रार्थना करते हैं। (ते इंद्रियेण) तेरी इंद्रशक्तिके द्वारा (इंद्रियं ओजः) इन्द्र की दर्शन स्पर्शन आदि कर्म रूप शक्ति हमें प्राप्त हो।

यह मंत्रभी पूर्वोक्त बातही स्पष्ट कर देता है और वृषभ शब्दका जीवात्म-परमात्म-परक होना बताता है।

४८ गौमाता को खा जाना।

वेद में माता को खाजाना और गौमाता को भी खाजाना लिखा है इस विषयमें अब थोडासा लिखना आवश्यक है। इस संबंधमे निम्नलिखित मंत्र बडा विचार करने योग्य है-

प्र सूनव ऋभूणां बृहन्नवन्त वृजिना। क्षामा ये
विश्वधायसोऽश्नन्धेनुं न मातरम्॥ ऋ० १०।१७६।१

(सूनवः) पुत्र (ऋभूणां वृजिना) ऋभुओंके पराक्रम बडे वर्णन करते हैं (ये विश्वधायसः) जो सबका धारण करनेवाले हैं वे (क्षामा धेनुं मातरं न अश्नन्) भूमि, गौ को माताके समान ही खा जाते हैं, भोग करते हैं।

यहां माता, गौ और भूमिको खा जानेका वर्णन है। पाठक पहिले देखें कि माता को किस प्रकार लडके खाते हैं, पाठक समझ ही गये होंगे कि लडके माताका दूध पीते हैं यही माताको खा जाना है। इस ढंगसे हरएक मनुष्य अपनी माताको तथा अपनी धाई को खाजाता है तथापि मातृवधका दोषी नहीं होता है। अर्थात् वेदको गौमाताको खा जाना भी ऐसा मंजूर है कि जिसमें गोवध न हो, गौका हवन भी ऐसा स्वीकार है कि जिसमें गौकि हिंसा न हो। जिस प्रकार लडका माताका दूध पीता है उसी प्रकार गौमाता का भी दूध पीये। भूमिका दूध भी धान्य और फल है वह खाये। तीनों माताओंको खा जानेका यही वैदिक विधि है, इसमें माताकी हिंसा नहीं होती परंतु माताका अमृत रस ही पीया जाता है। पाठक सोचें तो सही कि यह कितनी अद्भुत कल्पना है। वेद कहता है कि-

इह पुष्टिरिह रसः ॥ अथर्व० ३।२८।४

यहां माता के स्तनोंमें-भूमि माता, गौमाता और सच्ची मातामें पुष्टि देनेवाला अमृत रस है। यह धान्य, फल, दूध रूपसे हमें प्राप्त होता है इस लिये उसको लेना चाहिये। गौवें अनेक हैं-

पृथिवी धेनुः ॥ २ ॥ अंतरिक्षं धेनुः ॥ ४ ॥
द्यौर्धेनुः ॥ ६ ॥ दिशो धेनवः ॥ ८ ॥ अथर्व० ४।३९

" पृथ्वी, अंतरिक्ष, द्यौ और दिशा ये सब गौवें हैं। " इनके जो विविध रस हैं वे खाने ही चाहियें और इस प्रकार माताः का भक्षण करना चाहिये । पृथ्वीका रस अन्न, अंतरिक्षका रस जल, द्युलोकका रस प्रकाश, इस प्रकार इन धेनुओंके रस हैं,इनके खाने से ही मनुष्य आरोग्य संपन्न होकर जीवित रहता है । उसलिये कहा है —

४९ एक साधारण नियम ।

पुष्टिं पशूनां परिजग्रभाहं चतुष्पदां द्विपदां यच्च
धान्यम् । पयः पशूनां रस ओषधीनां बृहस्पतिः
सविता मे नियच्छात् ॥ अथर्व० १९।३१।५
पयो धेनूनां रस ओषधीनां जवमर्वतां
कवयो य इन्वथ । अथर्व ४।२७।३

(अहं पशूनां पुष्टिं परिजग्रम) मैं द्विपाद चतुष्पाद्पशुओं से पुष्टि लेता हुं, और धान्य भी लेता हूं । (पशूनां पयः) पशुओंसे दूध लेता हूं, (ओषधीनां रसः) औषधियोंसे रस लेता हूं, यह (सविता मे नियच्छात्) सविता देवने मुझे दिया है । (धेनूनां पयः) गौओंसे दूध, (ओषधीनां रसः) औषधियों से रस, (अर्वतां जवं) घोडों से वेग कवि लोग प्राप्त करते हैं।

इसमें सर्व साधारण नियम बताया है कि जहां पशु लेनेका वेदमें कथन हो वहां उस पशुका दूध (पशूनां पयः) लिया जावे, जहां औषधि लेनेका वेदमें कथन हो वहां (औषधीनां रसः) औषधीयोंका रस लिया जावे। वेदमें सोम शब्द से सोमवल्लीका रस लेना चाहिये, और गौ आदि शब्दोंसे उनका दूध लेना चाहिये। यह वेद की संज्ञा वेदने ही इन मंत्रों द्वारा स्पष्ट की है, इतना स्पष्ट कर देनेपर भी जब कोई गौ आदि शब्द देखकर उसके मांसकी कल्पना करे तो उसमें वेदका दोष क्या हो सकता है ? पाठक ही विचार करें किसीको संदेह न हो इसलिये वेदने स्वयं अपना संकेत स्पष्ट शब्दोंमें बताया है । पाठक इस को देखें और विचारें।

इतने विवरणसे पाठकोंका निश्चय हो जायगा कि वेदके जिन मंत्रोंके आधार पर से वेदमें गोमांस भक्षण की आज्ञा है, अथवा जिन प्रमाणोंसे वैदिक समयमें गोमांस भक्षण की प्रथा थी, ऐसा मांसपक्षी लोग मानते आये हैं, उन प्रमाणोंसे उनका पक्ष सिद्ध नहीं होता; प्रत्युत निर्मांस पक्ष ही पुष्ट होता है। अतः कोई भी पाठक गोमांस भक्षण के विषयमें मनमें शंका भी न लावे यह तो सर्वथा वेद विरुद्ध ही बात है। अब गोमेध के विषयमें लोग शंका करते हैं इस लिये उसका विचार करते हैं-



गो-मेध ।

१ वेदका संकेत ।

वेदमें पशुओंके नाम आते हैं, इसलिये साधारण लोग, कि जो वेदकी वर्णन शैलीसे अनभिज्ञ होते हैं, वे समझते हैं कि यहां उक्त पशुका मांसही लेना चाहिये, परंतु यह उनका भ्रम है, क्यों कि इस शंका का समाधान वेदने ही स्वयं किया है—

पुष्टिं पशूनां परिजग्रभाहं चतुष्पदां द्विपदां यच्च धान्यम्।
पयः पशूनां रसओषधीनां बृहस्पतिः सविता मे नि यच्छात् ॥
अथर्व. १९।३१।५

"मैं (पशूनां पुष्टिं) पशुओंकी पुष्टि लेता हूं, द्विपाद और चतुष्पादों से भी पुष्टि लेता हूं और धान्य भी लेता हूं। पशुओं से दूध, औषधीयोंसे रस बृहस्पति सविता देवने मुझे दिया है।"

यह मंत्र वेदका संकेत स्पष्ट करता है। पशु शब्द आनेसे पशु शरीर के किस पदार्थका ग्रहण करना चाहिये तथा औषधि शब्द आनेसे औषधिके कौनसे पदार्थका ग्रहण करना चाहिये यही विचार का प्रश्न यहां है। पशुके शरीरमें रक्त, मांस, हड्डी, चर्बी, दूध आदि बहुतसे पदार्थ होते हैं. इनमेंसे किस पदार्थ का ग्रहण करना चाहिये? तथा औषधिमें फूल, पत्ते, त्वचा, जड, रस, आदि बहुतसे पदार्थ होते हैं, इनमेंसे कौनसे पदार्थका स्वीकार

करना योग्य है, इस शंका का उत्तर इस मंत्रने स्पष्ट शब्दों द्वारा दिया है। यह मंत्र कहता है कि जहां वेदमें पशुवाचक शब्द आया हो वहां (पशूनां पयः) पशुओंका दूध ही लेना चाहिये, तथा जहां औषधि वनस्पति का नाम आया हो वहां (ओषधीनां रसः) औषधियोंका रस लेना चाहिये । यह वेदका संकेत यदि लोग ध्यानमें धारण करेंगे तो उनको भ्रम नहीं हो सकता। वेदमें लुप्त तद्धित प्रत्यय होते हैं. यह बात इससे पूर्व बतायी गई है, इस पद्धतिसे पशुसे उत्पन्न होनेवाले पदार्थोंके लिये पशुके ही नाम का प्रयोग होता है। पशु शब्द पुल्लिंग में प्रयुक्त हुआ हो या स्त्रीलिंगमें प्रयुक्त हुआ हो, दोनों पक्षमें पशुका दूध ही लेना चाहिये। अर्थात् किसी स्थानमें पुल्लिंगी "अज" शब्दका प्रयोग वेदमें आया हो तो वहां बकरेका बोध नहीं लेना चाहिये, प्रत्युत बकरीके दूधका आशय लेना चाहिये। यह वेदकी परिभाषा या संकेत है। गौ, वृषभ आदि शब्दोंसे भी यही तात्पर्य है। उक्त मंत्रमें " पशूनां पयः " अर्थात् पशुओंका दूध ये शब्द प्रयोग बताते हैं कि किसी भी पशुका नाम आया हो उस जाती के स्त्रीपशुका दूध, घी आदि वेदमें अभीष्ट है, न की उसका मांस। यह वेदका संकेत हरएक को अवश्य ध्यानमें धरना चाहिये, अन्यथा अर्थका अनर्थ होगा।

जहां जहां इस वैदिक संकेत की ओर पाठकोंका दुर्लक्ष्य हुआ है वहां वहां अर्थका अनर्थ हुआ है। गोमांस भक्षण वाले अर्थकी अथवा अनर्थकी उत्पत्ति इसप्रकार इस संकेतके अज्ञानमें है, यह बात यहां ध्यानमें धारण करनी चाहिये। इसी उद्देश्यसे अथर्व वेदमें कहा है—

आहरामि गवां क्षीरमाहार्षं धान्यं रसम् ॥

अथर्व. २। २६। ५

संसिंचामि गवां क्षीरं समाज्येन बलं रसम् ॥
अथर्व० २ । २६ । ४

इह पुष्टिरिह रसः ॥ अथर्व. ३ । २८ । ४

"मैं गौओं से दूध लेता हूं तथा भूमीसे धान्य और औषधियोंसे रस लेता हूं ॥ मैं गौओंके दूधसे सिंचन करता हूं तथा घीसे बलवर्धक रस लेता हूं । यहां गौके अंदर पुष्टि है और यहां गौके अंदर रस है ॥"

यहां भी गौसे दूध, भूमिसे धान्य और औषधीसे रस लेनेकी कल्पना स्पष्ट है । जो पूर्व स्थलमें दिये हुए संकेत मंत्रमें बताया है वही इस मंत्रमें अन्य शब्दोंसे व्यक्त हुआ है । इसलिये वेदका यह आशय ध्यानमें धरकर ही मंत्रोंका अर्थ लगाना चाहिये । यह अर्थ छोड कर जो गौ आदि पशुओं के अंगोंका हवन करते हैं उनको वेदने "मूर्ख" कहा है, देखिये-

२ मूढ याजक ।

मुग्धा देवा उत शुना यजन्तोत
गोरंगैः पुरुधा यजन्त । अथर्व० ७।५।५

यह मंत्र विशेष ध्यानसे देखने योग्य है । इसमें प्रारंभमेंही "मुग्धा देवाः" शब्द हैं, यहां "मुग्ध" शब्दका अर्थ, (Perplexed, foolish, ignorant, silly, stupid, simple, erring, mistaken) घबडा हुआ, मूर्ख, अनाडी, नादान, बुद्धिहीन, भोला, बहका हुआ, अपराध या अशुद्ध कार्य करनेवाला । ये मुग्ध शब्द के अर्थ यहां बता रहे हैं कि यहां का यज्ञ करनेवाले अनाडी ही हैं । अब इस मंत्रका अर्थ देखिये--

" (मुग्धाः देवाः) मूढ याजक ही (शुना यजन्त) कुत्तेके अवयवों से यज्ञ करते हैं (उत) तथा (गोः अंगैः) गौके अवयवोंसे भी (पुरुधा यजन्त) बहुत प्रकारसे यज्ञ करते हैं । "

यहां का देव शब्द याजकों का वाचक है। जो मूढ, अनाडी, अपराध करनेवाले याजक होते हैं, वेही कुत्तेके मांससे अथवा गौके मांससे हवन करते हैं, किंवा कुत्ते से लेकर गौतक के त्रिविध पशुओं के मांसोंसे मूढ ही हवन करते हैं । परंतु जो ज्ञानी होंगे वे कदापि ऐसा कुकर्म कर नहीं सकते । वे तो गौके दूधका तथा उसके घीका ही हवन करते हैं। यहां मूढ याजक और ज्ञानी याजक का भेद वेदने ही स्पष्ट किया है । ज्ञानी याजक वे हैं कि जो पशुशब्द से दूधका ग्रहण करते हैं और मूढ याजक वे हैं कि जो वेदका उक्त संकेत न समझनेके कारण भ्रांत होकर पशुमांस का हवन करते हैं । पाठक ही विचार करें कि यहां कौनसा यज्ञ वैदिक धर्मके अनुकूल सिद्ध हुआ है और किस का खंडन वेदने किया है। समांस यज्ञका खंडन और निर्मांस यज्ञका मंडन इस प्रकार वेदने स्वयं किया है। इतना होने पर भी जो लोग समांस यज्ञको वेदानुकूल समझते हैं उनको क्या कहा जाय यह समझमें ही नहीं आता । वास्तवमें इस मंत्रने समांस यज्ञ करनेवालों को " मूढ याजक " कह कर समांस यज्ञका प्रबल निषेध किया है, और हमारे विचार में इससे अधिक प्रबल निषेध करनेकी कोई आवश्यकता ही नहीं है ।

गायका नाम " अ-घ्न्या " (अवध्य) है, यज्ञका नाम " अ-ध्वर "(अहिंसामय कर्म) है, और इस मंत्रमें समांस याजकोंको "मुग्ध देव " (भूले भटके प्रमादी याजक) कहा है । येह सब प्रमाण अहिंसा पूर्ण कर्म करने के वैदिक धर्म के महासिद्धांत की सिद्धि ही कर रहे हैं। पाठक इसका खूब विचार करें ।

गोत्र ।

वेदमें " गो-त्र " शब्द " पर्वत, जंगल, वन, घांसवाली भूमि, गौवों के लिये खास कर रखी भूमि, मानवकुल, मानव-वंश" आदिका, वाचक है। यह शब्द सिद्ध करता है कि (गो-त्र) गौओंका पालन करनेका खास प्रबंध वैदिक समयमें था अथवा वेदके धर्मको गौपालन का विशेष प्रबंध करना संमत है। अन्यथा " गो-त्र" शब्द इसप्रकार प्रचार में भी न आता। किसी अन्य पशुके नामसे इस प्रकार का कोई शब्द वेदमें या भाषामें बना नहीं है। गोत्र शब्दका अर्थ " गौका रक्षक अथवा गौद्वारा रक्षित " है। यह शब्द पर्वत को लगाया जाता है तथा वंशके लिये भी प्रयुक्त होता है। अर्थात् खास पर्वत अथवा भूमि गौओं केलिये अलग रखी जाती थी। पश्चात् पर्वत का ही यह नाम पडा और मनुष्यों के वंश का भी नाम गोत्र हुआ, क्यों कि मानवोंका वंश गौओंसे रक्षित होता है। यह संस्कृत में और वेद की भाषामें "गो-त्र" शब्द का अस्तित्व गौका महत्त्व सिद्ध करता है। जिस समय मनुष्य के वंशके पालनका संबंध गौसे होने की संभावना मानी जाती थी और उस कारण मानववंश का भी नाम "गो-त्र" रखा गया था, उस समय गौ की हिंसा कैसी होना संभव है यह हमारे समझमें नहीं आता। गौके वध का ही अर्थ मानवकुल-का वध है, यह बात यहां स्पष्ट होती है, मानव वंशकी संरक्षक शक्ति " गौ " है, इस लिये वंशका नामभी " गो- त्र " अर्थात् " गौ द्वारा पालित होनेवाला मानव कुल " है। इससे और अधिक गौकी महिमा तो क्या कही जा सकती है? जगतीतलपर कई भाषाएं इस समय प्रचलित हैं, उनमें गौका संबंध इस प्रकार मानवजातिके साथ बताया नहीं है, परंतु संस्कृत के " गो-त्र "

शब्द में यह सब महिमा वर्णन हुई है, पाठक इसका मनन अवश्य करें।

३ गोतम।

ऋषियों के नामों में "गोतम अथवा गौतम" एक सुप्रसिद्ध नाम है। इसका अर्थ "जिसके पास बहुत गौवें हैं" ऐसा होता है। जिस प्रकार "रथतम या रथितम" शब्द बहुत रथ पास रखनेवालेका वाचक है, उसी प्रकार गोतम शब्द बहुत गौएं पास रखनेवालेका वाचक है। ऋषिनामों के अंदर यह नाम आता है और वेद मंत्रों में भी इसका कई वार प्रयोग हुआ है, यह शब्द सिद्ध करता है कि गौवें अपने पास अधिक होना एक विशेष प्रतिष्ठाका लक्षण वैदिक समय में था, अन्यथा ऐसे शब्द प्रयुक्त होना असंभव है। घरघर में गौका पालन वैदिक समय में होता था, इस विषय में किसीको भी शंका नहीं हो सकती, इस विषय में यहां प्रमाण भी देनेकी आवश्यकता नहीं है तथापि एक मंत्र उदाहरण के लिये देखियें-

स्व आ दमे सुदुघा यस्य धेनुः
स्वधां पीपाय सुभ्वमन्नमत्ति॥ ऋ. ९२।३५।७

"(यस्य स्वे दमे) जिस के अपने घरमें (सुदुघा धेनुः) सुगमतासे दूध देनेवाली गौ रहती है वह प्रतिदिन (स्वधां पीपाय) अमृत ही पान करता है और वही (सुभ्वं अन्नं अत्ति) बल बढानेवाला अन्न खाता है।"

घर में गौका होना इस प्रकार वेदमें प्रशंसाकी बात मानी है। जिसके घरमें गौ होती है वह अमृतपान करता है और अपना बल भी बढाता है। यह भाव वैदिक समयमें था इसलिये ऋषिलोग अपने पास बहुत गौवें रखते थे और जिसके पास

बहुत गौवें होती थी उसका एक प्रकार से आदरभी होता था। यह बात यदि ठीक प्रकार देखी जाय तो पता लग जायगा कि गौ एक संमान बढानेवाली वस्तु वैदिक समय में समझी जाती थी, इतनाही नहीं परंतु वंश वाचक गोत्र (गो + त्र) शब्द के मननसे स्पष्ट हो जाता है कि मानववंशका संरक्षण करनेका महत्त्वपूर्ण कार्य गौ ही करती थी, इसलिये वैदिक धर्मका पालन करने वाले सज्जन गौको केवल दूध देनेवाली धेनु ही समझते नहीं थे, प्रत्युत अपने वंशका संरक्षण करनेवाली यह गौ अपनी " परम माता " है ऐसा समझते थे। जन्मदात्री माता एक का ही रक्षण करती है, परंतु यह माता गौ संपूर्ण वंशका, संपूर्ण कुलका और वंशके संपूर्ण स्त्री, पुरुष, बाल, तरुण, वृद्ध आदिका विशेष प्रकार रक्षण करती है, इसलिये जन्म दात्री मातासे भी गौ मनुष्योंकी परमश्रेष्ठ माता है। इस प्रकार जो धर्म गौको " वंशरक्षक " मानता है वह उसका वध करनेकी आज्ञा कैसी दे सकता है, इसका विचार पाठक अवश्य करें। इसी लिये वेदने कहा है—

धेनूर्जिन्वतमुत जिन्वतं विशो हतं रक्षांसि सेधतममीवाः ॥

ऋ० ८।३५।१८

" (धेनूः जिन्वतं) गौओंको बढाओ, (विशः जिन्वतं) प्रजाओं को पुष्ट करो, (रक्षांसि हतं) रोग बीजोंका नाश करो और(अमीवाः सेधतं) आमसे उत्पन्न होने वाली, अजीर्णसे बनने वाली बीमारियोंको दूर करो। "

ये चार वेद की आज्ञाएं हरएक आर्य सज्जन को मनन करने योग्य हैं। घरमें गौओं को संख्या बढाओ और गौओं को पुष्ट रखो उनके दूधसे प्रजाओंकी पुष्टि बढाओ, रोग के कारण दूर करो और अजीर्णादिको दूर रखो। ये चार आज्ञाएं वैदिक समयका गौका महत्त्व वर्णन कर रहीं हैं। वंशका रक्षण

गौ किस प्रकार करती है यह यहां स्पष्ट होता है। हृष्टपुष्ट गौके उत्तम दूधसे प्रजा पुष्ट होती है, उससे शरीरमें एक प्रकारका जीवनरस उत्पन्न होता है जो रोगबीजों को दूर करता है और रोगप्रतिबंधक शक्ति भी उत्पन्न करता है। जो इतना जानता है वह मांसके लोभसे कभी गोवध नहीं कर सकता। गौमांस से तो नाना प्रकार के रोग होनेकी संभावना है और गो दुग्धसे तो रोग कम होते हैं और आरोग्य बढता है। इसलिये वेदकेलिये गोमांस भक्षण की अपेक्षा गोदुग्धपान ही अधिक अभीष्ट है यह बात संदेहरहित ही है।

४ दुग्ध पान।

उक्त मंत्र देखनेसे स्पष्ट हो जाता है कि वैदिक समयमें गौके दूध पीनेकी प्रथा बहुत थी। आजकल जिस प्रकार चा काफी पीते हैं उसी प्रकार उस समय गौका दूध पिया जाता था। छोटे मोटे घडों में दूध भरकर रखा जाता था और वही लोग आनंद से पीते थे। आजकल छोटे छोटे कौलों में जैसा पीते हैं वैसा नहीं, परंतु दुग्धपानके लिये भी बडे बर्तन बर्तें जाते थे, इस विषयमें यहां एक मंत्र देखिये-

अध श्वेतं कलशं गोभिरक्तमापिप्यानं मघवा
शुक्रमन्धः। अध्वर्यु॑भिः प्रयतं मध्वो अग्रमिन्द्रो
मदाय प्रतिधत्पिबध्यै शूरो मदाय प्रतिधत्पिबध्यै॥

ऋ. ४।२७।५

(अध) अब (श्वेतं कलशं) श्वेत घडा अर्थात् चांदीका घडा (गोभिः अक्तं) गौओंके दूधसे भरा हुआ जो (शुक्रं अंधः) तेजस्वी अन्नसे परिपूर्ण है उसका (मघवा आपिप्यानं) इन्द्र स्वीकार करे, पीये। अध्वर्यु आदि याजकों द्वारा बनाया हुआ यह

(मध्वः अग्रं) मधुर रस आनंदके लिये इन्द्र पीये तथा शूर पुरुष भी आनंदके लिये पीवे ।

इस मंत्रमें स्पष्टशब्दोंसे बताया है कि याजक लोग अनेक गौओं के दूधसे उत्तम सोनेचांदीके घडे भरकर रखते हैं और वीर पुरुषोंके श्रमपरिहारके लिये उनको पीनेके लिये देते हैं। वीर पुरुष उस दूधको पीते हैं और अपना बल बढाते हैं। इस मंत्रमें (गोभिः अक्तं कलशं) " गौओं द्वारा परिपूर्ण कलश " ये शब्द हैं। यहां हरएक अर्थ करनेवाले यूरोपीयन और भारतीय लेखकने " गौ " शब्दका अर्थ गौका दूधही माना है किसीने भी गोमांस माना नहीं है। नहीं तो केवल गो शब्द देखनेसे ये लोग गोमांसकी भी कल्पना कर सकते हैं, अर्थात् ऐसे स्थानों में आनेवाला केवल गौ शब्द गौके दूधका वाचक है इस में किसी को भी संदेह नहीं है। यदि मांस पक्षवाले लोक यही विचारपद्धति अन्यत्र भी लगा देंगे और सर्वत्र पूर्वापर संबंध युक्त अन्नवाचक प्रकरण में गो शब्द से गौका दूध ही लेंगे तो कोई मतभेदही नहीं होगा।

प्रायः प्रत्येक यज्ञमें यह गोदुग्धपान एक महत्त्वका भाग था। अनेक सूक्तोंमें इसका उल्लेख है, अतः उनमें से एक मंत्र देखिये-

प्रति त्यं चारुमध्वरं गोपीथाय प्रहूयसे ।

ऋ० १। १९। १

इंद्र (चारुं अध्वरं) सुंदर यज्ञमें (गो-पीथाय) गोदुग्धपानके लिये (प्रहूयसे) बुलाया जाता है।

यज्ञमें देवताओंको बुलाना और उनको बहुत दूध पिलाना यह एक वैदिक कालकी विशेष बात थी। अतिथि आनेपर उसको भी गौका ताजा दूध पिलानेकी वैदिक रीति थी। और इसीलिये घर घरमें गौओंकी पालना होती थी, घरकी शोभा

गौओंद्वारा बढती है, ऐसा माना जाता था और हरएक मनुष्य गौको अपनी और अपनी जातीकी माता मानता था। इसीलिये गोहत्यारेको वधदंड वेदमें कहा है-

यदि नो गां हंसि यद्यश्वं यदि पूरुषम्।
तं त्वा सीसेन विध्यामो यथा नोऽसो अवीरहा ॥
अथर्व० १।१६।४

" यदि तूं हमारी गौ, घोडे और मनुष्यका वध करेगा तो सीसेकी गोलीसे तेरा वेध हम करेंगे।" यहां मनुष्य, घोडा और गौके वधके लिये मृत्युका ही दण्ड कहा है। अर्थात् मनुष्य वधके लिये जो दण्ड है वही गोघात के लिये दण्ड कहा है जिससे गौकी योग्यता मनुष्यके इतनी वेदकी दृष्टिसे सिद्ध होती है। गौ मानवजातीकी माता होनेसे ही उस गौकी इतनी योग्यता मानी गई है। हिंदु लोग आजकल गौको माता मानते ही हैं, यह माता माननेकी प्रथा वेदके समान अतिप्राचीन है यह बात पूर्वोक्त मंत्रोंसे सिद्ध होती है।

५ विश्वरूपी गौ।

वेदमें जो गौकी महती वर्णन की है वह किसीभी अन्य पुस्तकमें नहीं है। गौका नाम सूर्यचंद्रभूमि आदि देवताओंको भी दिया गया है, यह निःसंदेह गौ के महत्त्वका सूचक है; अन्यथा सूर्य-चंद्रभूमि आदिको गौ किस प्रकार कहा जा सकता है, देखिये -

पृथिवी धेनुः ॥ २ ॥ अंतरिक्षं धेनुः ॥ ४ ॥
द्यौर्धेनुः ॥ ६ ॥ दिशो धेनवः ॥ ८ ॥ अथर्व० ४।३९

" पृथिवी, अंतरिक्ष, द्युलोक और दिशाएं ये सब धेनुएं अथवा गौवें हैं।" पाठक यहां यह बात अवश्य देखें कि गौकी उपयुक्तताके समान उपयुक्तता इनकी होनेसे ही इनका नाम गौ

हुआ है। अर्थात् आदर्श उपयुक्तता गौकी प्रत्यक्ष है। जिस प्रकार गौ दूध देती है और वह दूध हमारा पोषण का हेतु है, उसी प्रकार पृथ्वी, धान्य तथा औषधि वनस्पतियोंका रस देती है जिससे हमारा पोषण होता है, इसी रीतिसे अंतरिक्षलोकसे मेघोंकी वृष्टिद्वारा जल मिलता है, यह जीवनरस नामसे प्रसिद्ध ही है। इसी प्रकार द्युलोक धेनु है वहांसे जीवन शक्तिसे परिपूर्ण सूर्यका प्रकाश पृथ्वीपर आता है जो प्राणियोंके जीवनको सहायक होता है। दिशायें भी गौवें इसलिये हैं कि उनमें से ही सब खानपानके पदार्थ मिलते हैं। ये सब नामाभिधान गौके आदर्शसे ही दिये गये हैं, जैसा गौ रस आदि देकर हमें पुष्ट करती है, उसी प्रकार भूमि भी करती है, इसलिये उसको अलंकार की दृष्टिसे गौ कहा। सूर्य चंद्रादिकोंको भी इस प्रकार गौ कहना स्पष्टतापूर्वक गौका अत्यधिक महात्म्य वर्णन करता है। जिस समय इतना गौका महात्म्य होगा उस समय उस पवित्र गौमाता की हत्या होना किस प्रकार संभव माना जा सकता है ?

वेदमें गौको केवल पृथ्वी अंतरिक्ष और द्युलोक के साथही मिलाया नहीं है, प्रत्युत संपूर्ण ब्रह्माण्ड के साथ तथा संपूर्ण देवदेवताओंके साथ भी मिला दिया है, इस विषयका सूक्त देखने योग्य है-

६ गौका विश्वरूप।

प्रजापतिश्च परमेष्ठी च शृंगे, इन्द्रः शिरो, अग्निर्ललाटं, यमः कृकाटम् ॥ १ ॥ सोमो राजा मस्तिष्को द्यौरुत्तरहनुः पृथिव्यधरहनुः ॥ २ ॥ विद्युज्जिह्वा मरुतो दन्ता रेवतीर्ग्रीवाः कृत्तिकाः स्कंधा घर्मो वहः ॥ ३ ॥ विश्वं वायुः स्वर्गो लोकः कृष्णद्रं विधरणी निवेष्यः ॥४॥ श्येनः क्रोडोऽन्तरिक्षं पाजस्यं

बृहस्पतिः ककुद् बृहतीः कीकसाः ॥५॥ देवानां पत्नीः पृष्ठय
उपसदः पर्शवः ॥ ६ ॥ मित्रश्च वरुणश्चांसौ त्वष्टा चार्यमा च
दोषणी महादेवो बाहू ॥ ७ ॥ इन्द्राणी भसद् वायुः पुच्छं
पवमानो बालाः ॥ ८ ॥ ब्रह्म च क्षत्रं च श्रोणी बलमूरू ॥ ९ ॥
धाता च सविता चाष्ठीवन्तौ जङ्घा गंधर्वा अप्सरसः
कुष्ठिका अदितिः शफाः ॥ १० ॥ चेतो हृदयं यकृन्मेधा व्रतं
पुरीतत् ॥११॥ क्षुत्कुक्षिरिरा वनिष्ठुः पर्वताः प्लाशयः ॥१२॥
क्रोधो वृक्कौ मन्युराण्डौ प्रजा शेपः ॥ १३ ॥ नदी सूत्री
वर्षस्य पतयः स्तनाः स्तनयित्नुरूधः ॥ १४ ॥ विश्वव्यचाश्च-
र्मौषधयो लोमानि नक्षत्राणि रूपम् ॥ १५ ॥ देवजना गुदा
मनुष्या आन्त्राण्यत्रा उदरम् ॥१६॥रक्षांसि लोहितमितरजना
उबध्यम् ॥ १७ ॥ अभ्रं पीवो मज्जा निधनम् ॥ १८ ॥
अग्निरासीन उत्थितोऽश्विना ॥ १९ ॥ इन्द्रः प्राङ् तिष्ठन्
दक्षिणा तिष्ठन् यमः ॥ २० ॥ प्रत्यङ् तिष्ठन् धातोदङ् तिष्ठ-
न्त्सविता ॥ २१ ॥ तृणानि प्राप्तः सोमो राजा ॥ २२ ॥ मित्र
ईक्षमाण आवृत्त आनन्दः ॥ २३ ॥ युज्यमानो वैश्वदेवो युक्तः
प्रजापतिर्विमुक्तः सर्वम् ॥ २४ ॥ एतद्वै विश्वरूपं सर्वरूपं
गोरूपम् ॥ २५ ॥ उपैनं विश्वरूपाः सर्वरूपाः पशवस्तिष्ठन्ति
य एवं वेद ॥ २६ ॥ अथर्व० ९।७ (१२)

इस सूक्त में गौका तथा बैलका विश्वरूप बताया है। भगवद्गीता में श्रीकृष्ण भगवान ने अपना विश्व रूप बताया है उसी प्रकारका विश्वरूप गौके विषय में यहां इस सूक्तमें वर्णन किया है। म. ग्रिफिथ इस सूक्तके विषयमें लिखते हैं- The hymn is a glorification of the typical Bull and Cow अर्थात यह सूक्त गौ अथवा बैलकी प्रशंसापर है। अब इस सूक्तमें कही प्रशंसा देखिये;-

"प्रजापति और परमेष्ठी इसके दो सींग, इन्द्र सिर, अग्नि ललाट और यम गलेका संधि है ॥१॥ सोम मस्तिष्क, द्युलोक, ऊपरका जबडा और भूमि निचला जबडा है ॥ २ ॥ बिजुली जिव्हा मरुत दांत, रेवती नक्षत्र गला, कृत्तिका नक्षत्र कंधा और गर्मीका समय कंधेकी हड्डी है ॥ ३ ॥ वायु इसका सब कुछ है, इसका लोक स्वर्ग है और पृष्ठवंश की हड्डी कृष्णद्र है॥ ४ ॥ श्येन इसकी छाती, अंतरिक्ष इसका पेट, बृहस्पति इसका कूब है और बृहती इसकी छाती की हड्डी हैं ॥ ५ ॥ देवोंकी स्त्रियां इसकी पसलियां हैं और उनकी सेविकाएं अन्य साथवाली हड्डियां हैं ॥ ६ ॥ मित्र और वरुण कंधे हैं, त्वष्टा और अर्यमा हाथ हैं और महादेव इसके बाहू हैं ॥ ७ ॥ इन्द्राणी इसका पिछला भाग है, वायु इसकी पूंच्छ और पवमान इसके बाल हैं ॥८॥ ब्राह्मण और क्षत्रिय इसके कूले हैं, बल जंघा है ॥९॥ धाता और सविता घुटनेकी हड्डीयें हैं, गंधर्व जंघा हैं, अप्सराएं छोटी हड्डीयें और अदिति खुर हैं ॥ १०॥ चित्त हृदय है, बुद्धि यकृत है, व्रत हृदयके पास की आंतें हैं ॥११॥ भूख ही पेट है, पेय आंतरिक आंतें हैं, और पर्वत आंतरिक भाग हैं॥१२॥ क्रोध मूत्राशय है, मन्यु अण्ड और प्रजा प्रजननका इंद्रिय है ॥१३॥ नदी गर्भाशय है, वर्षाके अधिकारी देव स्तन हैं, गडगडाहट करने वाले मेघ ही दुग्धाशय है ॥१४॥ व्यापिनी शक्ती चर्म है, औषधियां केश हैं, नक्षत्र इसका रूप है ॥१५ देव जन इसकी गुदा है, मनुष्य इसकी आतें हैं, अन्य प्राणी इसका उदर है ॥१६॥ राक्षस इसका रक्त है, अन्य लोग इसका पेट है ॥१७॥ मेघ इसकी चर्बी है, विश्राम इसकी मज्जा है ॥१८॥ बैठनेके समय यही अग्नि है, उठनेपर अश्विदेव हैं॥ १९ ॥ पूर्वकी ओर देखनेके समय इन्द्र, दक्षिणकी ओर यम ॥ २० ॥ पश्चिमकी ओर धाता, उत्तरकी ओर ठहरनेके समय यही सविता है ॥ २१ ॥

जब यह घास लेती है तब वही सोमराजा बनती है ॥ २२ ॥ जब वह देखती है तब उसका नाम मित्र होता है, जब घूमती है तब वही आनंद है ॥ २३ ॥ जब बैल जोता जाता है तब वह विश्वेदेव होता है, जब जोता होता है तब वह प्रजापति और जब खुला होता है तब सब कुछ बनता है ॥२४॥ यही (विश्वरूपं) विश्वरूप अर्थात् (सर्वरूपं) सर्वरूप है और इसीका नाम (गोरूपं) गौका रूप है ॥ २५ ॥ जिसको इस विश्वरूपका ठीक ज्ञान होता है उसके पास विविध आकारवाले अनेक पशु होते हैं ॥ २६ ॥ ''

यह सूक्त विशेषकर (गोरूपं) गौके रूपका वर्णन करता है, परंतु इस सूक्तमें कई मंत्र हैं कि जो बैलके लिये ही हैं। अन्य मंत्र दोनोंके लिये समान हैं और कई केवल गौके वर्णन पर ही हैं। यहां गौका विभूति योग ही वर्णन किया है। इस सूक्तका कई प्रकारसे विचार किया जा सकता है, परंतु यहां केवल एक दो मुख्य बातों को ही बताना है, संपूर्ण सूक्तके सब कथनोंका विचार करनेका यहां प्रयोजन नहीं है। इस सूक्तके विचारणीय भाग जो अपने प्रचलित विषयके साथ उपयोगी हैं, अब यहां दिये जाते हैं-

१ (मंत्र ९) ब्राह्मण और क्षत्रिय चूतर हैं।

२ (मंत्र १०) गंधर्व जंघाएं और अप्सराएं छोटी हड्डियें हैं।

३ (मंत्र १६) देव इसकी गुदा हैं, मनुष्य आंतें हैं
और अन्य प्राणी पेट हैं।

४ (मंत्र १७) राक्षस रक्त है, इतर मनुष्य पेट हैं।

ब्राह्मण, क्षत्रिय, (इतर जनाः) वैश्य, शूद्र, नि-षाद, गंधर्व, अप्सरा, देव, मनुष्यमात्र, राक्षस अन्य प्राणी ये सब गौका रूपही है। यह भाव उक्त मंत्रों में हैं। ये मंत्र इस वर्णनमें इसलिये आये हैं कि संपूर्ण जनता हृदयसे समझे कि हम सब मनुष्यमात्र गौके

शरीरके अंगही हैं, हम ही उस गौमाताके शरीरके भाग हैं, गौमाताके शरीर में और हमारे शरीरमें इस प्रकार एकरूपता देखें। गौके शरीरको कष्ट होनेसे वह कष्ट गौपर नहीं प्रत्युत हमपर है यह भाव मनमें धारण करें। यदि कोई मनुष्य गौको अधिक कष्ट देगा, या काटेगा या अन्य प्रकार दुःख देगा तो वह मनुष्य केवल गौकोही दुःख देता है और गौके दुःखी होते हुए हम सुखी रह सकते हैं, यह हीन भाव मनसे हटा दें। चूंकि गौका हमारे साथ अवयवी और अवयवोंका संबंध है, हमही गौके अंग हैं इसलिये जो दुःख गौको मिलता है वह हमें ही मिला है ऐसा मानना चाहिये। और इसी भावनासे गौकी पालना और रक्षा करना चाहिये। अर्थात् जिस भावनासे अपनेपर दुःख आनेपर प्रतिकार किया जाता है उसी तीव्रतासे गौके कष्टोंको दूर करनेका यत्न करना चाहिये।

गौकी पालना, रक्षा और वृद्धि भी उक्त विचार मनमें जाग्रत रख करही करनी चाहिये। गौ केवल एक दूध देनेवाला पशुही नहीं है, प्रत्युत वह अपने कुटुंबका एक हकदार है अथवा वह कुटुंबका मालिक है और हम उसके परिवारके आदमी हैं, यह भाव मनके अंदर जीवित और जाग्रत रहना चाहिये।

ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, निषाद, राक्षस आदि सभी जातियोंके मनुष्योंमें यह विचार जाग्रत रहना चाहिये। ऐसा होनेसे संपूर्ण जगतीतल के ऊपर गौमाताकी ही पूजा होगी। यह संपूर्ण जगत् ही " गोरूपं " अर्थात् गौका रूप है इसलिये इस गौके साथ किसी अन्य पदार्थकी तुलना होही नहीं सकती। हरएक अन्य पदार्थ के लिये विविध उपमाएं दीं जा सकती हैं, परंतु गौही ऐसी है कि जो अनुपम है, क्यों कि वह संपूर्ण प्राणिमात्र की निरुपम माता है, मानव वंशोंका पालन करनेवाली और संपूर्ण

मानव जातीही जिसके एक प्रकारसे अंग और अवयव है, ऐसी एकमात्र गौ है ।

पाठक विचार करेंगे और गौके उपकारोंका मनन करेंगे तो यह वेदका कथन उनके मनमें ठीक रीतिसे आ सकता है । कई पूछेंगे कि इतने वर्णनसे वेदने किस बातकी शिक्षा दी है ?

इस प्रश्नके उत्तर में निवेदन है कि वेदने इस सूक्तद्वाराअहिंसा का उत्तमोत्तम उपदेश दिया है । कोई मनुष्य या कोई प्राणी अपने आपकी हिंसा नहीं करता । शेर हो या बबर हो जगत् के अन्य प्राणियोंका घातपात करते हैं , जो राक्षस हैं वेभी दूसरोंको खा जाते हैं परंतु ये दूसरे के देहपर उपजीविका करनेवाले क्रूर प्राणीभी अत्यंत भूखलगनेपर अपने ही देह के अवयवोंको कभी काटकर खाते नहीं हैं । व्याघ्र या सिंह कितना भी भूखा क्यों न हो, उसने कभी अपने देहका मांस खाया नहीं है, किसी राक्षसने भी अपने देहका मांस नहीं खाया है । इस लिये इस स्वाभाविक प्रवृत्तिको लेकर ही वेद मनुष्योंको इस सूक्त के वर्णन के द्वारा गाय और बैलके मांस से पूर्णतया निवृत्त करना चाहता है, यह बात इस सूक्तके वर्णन से स्पष्ट हो जाती है ।

जिस समय संपूर्ण मनुष्य अपने आपको गौके शरीर के अवयव ही हृदयसे मानेंगे, तो वे इस विचारको मनमें रखनेवाले लोग गौका मांस या बैलका मांस किस प्रकार खा सकेंगे ? क्यों कि कोई भी अपने शरीर का ही मांस कभी नहीं खाता । पूरा मांस भोजी मनुष्य अथवा नरमांसभोजी मनुष्य भी अपने शरीर का मांस नहीं खाता, इस लिये यदि मनुष्य अथवा जो मनुष्य अपने आपको गौके शरीरके अवयव मानेंगे तो वे मनुष्य गोमांस भक्षण से पूर्णतया निवृत्त ही होंगे । देखिये कितनी प्रबल युक्तिसे वेदने लोगोंको, मांसभोजी राक्षस श्रेणीके लोगों को भी निर्मांस

भोजी बनानेका यत्न किया है। इतनी प्रबल यह युक्ति है कि यदि इस प्रकार का विचार मनमें स्थिर हो जाय तो कभी कोई गोमांस खावे ही नहीं। इतनी प्रबल युक्ति देनेपर भी कई युरोपीयन इस समयतक मानते हैं कि वैदिक कालमें गोमांस भक्षण की प्रथा थी और बैल का भी मांस खाया जाता था। इन लोगोंसे हमारी प्रार्थना है कि वे इस प्रबल युक्तिका अधिक मनन करें और पश्चात् अपना मत बनावें।

गौ मेरे से भिन्न नहीं, मैं उस गौके शरीरका एक भाग हूं इस लिये मुझे अपनी रक्षा करनेके समान ही गौ की भी अवश्य रक्षा करनी चाहिये। यह कितना उच्चतम उपदेश है। पाठक भी इस उपदेश का महत्त्व देखें।

दुराचारी मनुष्य भी जिस समय किसी स्त्रीको माता कहता है तो उसकी दृष्टीमें तत्काल पवित्रता आ जाती है। अर्थात् माता कहनेका तात्पर्य ही यह है कि उसकी ओर पवित्रता की दृष्टिसे देखना। गौको माता कहनेका अर्थ ही यह है कि गौको पवित्र और पूज्य दृष्टिसे देखना है। अपनी साक्षात् पूजनीय वंदनीय और पालनीय परम माता यह है यह भाव मनमें हर समय रखना चाहिये। पाठक इस सूक्तका मनन इस दृष्टीसे करें। इन्द्रादि देव किसी भी अन्य स्थानमें नहीं है वे जीवित और जाग्रत गोमाताके देहमें हैं, जहां इन्द्रादि देव रहते हैं वही स्वर्ग है, अर्थात् "गौ" ही स्वर्ग लोक है, यही भाव पूर्वोक्त सूक्त के चतुर्थ मंत्रमें कहा है।

ये सब भाव इस समय हिंदुलोगोंके मनमें बीज रूपसे देखे जा सकते हैं। यद्यपि इस समय पुराने अथवा नये ख्यालवाले हिंदु लोग इस अथर्व वेदके सूक्तको जानते भी नहीं हैं तथापि

उनके अंदर प्राचीन कालसे वैदिक धर्मके संस्कार रहनेके कारण उनके मनमें ये वैदिक संस्कार सुप्त अवस्थामें इस समय दिखाई देते हैं। वे गौको माता कहते हैं, गौके शरीरमें नाना देवताओंका होना मानते हैं, गौको देवता भी मानते हैं, यह सब मानते हुए भी उक्त उपदेश न समझनेके समान ही उनका आचरण होता है। इसका कारण उनका धर्म विषयक अज्ञान ही है। यदि वेदका यह उपदेश उनके मनमें जागता रहेगा तो वे गौकी रक्षा उत्तम प्रकार कर सकेंगे।

यह सूक्त गौके जिस गौरव का वर्णन कर रहा है वह गौरव जिस कालमें जनतामें होगा उस काल में गौका वध होना ही असंभव था। यह बात अब अधिक विस्तृत कहनेकी आवश्यकता ही नहीं है। ऐसी अवस्थामें मांस पक्षी लोगोंका कैसा साहस होता है और वे किस आधारपर कह सकते हैं कि, वैदिक कालमें यज्ञोंमें गाय और बैलका मांस बर्ता जाता था और यज्ञशेष मांस खाया भी जाता था।

आजकल जो समांस यज्ञ करते हैं वे भी यज्ञशेष समझ कर जो मांस खाते हैं वह मांस प्रत्येक ऋत्विज के लिये दोतीन रत्ती भर भी नहीं मिलता है, प्रायः तीन चावलोंके बराबर ही वे लेते हैं। परंतु हमारा ख्याल यह है कि इतना मांस लेना भी वेदके मंत्र-भागसे सिद्ध नहीं होता है। परंतु इतनेसे मांसके लिये यज्ञयागका हजारों रु० का व्यय क्यों किया जाय अर्थात् जो समांस यज्ञ करते हैं वे भी मांसकी लालचसे निःसंदेह नहीं करते, क्यों कि एकदो रत्ती मांस प्राप्त करनेसे लालचकी तृप्ति कैसी हो सकती है ? अर्थात् उनके अंदर मांसकी लालच नहीं होती, वे समझते हैं कि समांस यज्ञ करना वैदिक धर्म के अनुकूल है। इस लिये जो ऐसा मानते हैं उनको इस सूक्तका अच्छा विचार करना

चाहिये। और वेदका अहिंसाही पक्ष है यह बात उनको अवश्य ध्यानमें धरनी चाहिये।

इतने विचार से यह बात सिद्ध हो चुकी है कि वेदमंत्रों के आधारसे गोमांस भक्षण की प्रथा वैदिक समयमें थी, यह बात सिद्ध नहीं हो सकती, परंतु वेदमंत्रोंके प्रमाण से यह सिद्ध हो सकता है कि उस समय निर्मांस भोजन की प्रथा थी। शिष्टसंमत वैदिक यज्ञमें गौमांस का प्रयोग होनेकी संभावना भी वैदिक कालमें दिखाई नहीं देती, इसलिये कि गोमांस का यज्ञ करने वालेको वेद मंत्रने ही " मूढ याजक " कहा है, अर्थात् जो याजक मूढ नहीं वह यज्ञमें मांसका प्रयोग नहीं करेगा। मूढ मनुष्य जो करता है उसका नाम धर्म नहीं हो सकता, इसलिये वैदिक काल में मूढ पागल मनुष्य क्या करते थे और क्या नहीं, इसका विचार करनेकी हमें कोई आवश्यकता नहीं है, क्यों कि हमें वैदिक समयका शिष्टसंमत धर्मही देखना है। परंतु यदि किसीको देखना हो तो वह माने की वैदिक कालके मूढ लोग कुत्ते और गौके अवयवोंसे यजन करते थे। इससे इतनाही सिद्ध होगा कि यह धर्म शिष्ट संमत वैदिक धर्म नहीं था। मूढ लोग कभी धर्मके आदर्श नहीं होते हैं। वेदमें कई लोगोंका वर्णन है, कई राक्षस मनुष्यमांस खाते थे, पिशाच खून पीनेवाले थे, कई गर्भ को खानेवाले भी थे, कई अन्यान्य जानवरों को भी खाते होंगे, परंतु इन सबको दूर करनेके लिये ही वेदने कहा है, इनका यह व्यवसाय आदर्श करके वेदने नहीं कहा है, परंतु वेदने यह व्यवसाय ऐसा कहा है कि जिससे धार्मिक लोग अपने आपको दूर रखें।

इससे वेदका धर्म अहिंसावादी सिद्ध होता है। इस लेखमें जितने प्रमाण दिये हैं, उनको देखनेसे और अधिक प्रमाण देनेकी अब

कोई आवश्यकता नहीं है, तथापि अथर्ववेद में गोमेध विषयक दो सूक्त हैं जिनको मांसपक्षी लोग गोमांस भक्षण परक लगाते हैं, इसलिये उनका विचार अब करना आवश्यक है, देखिये अब वे दो सूक्त-

७ गोमेध के सूक्त ।

अथर्ववेद कांड १० में सूक्त ९ और १० ये दो सूक्त हैं, इनका अब अर्थ देखिये-

अघायतामपि नह्या मुखानि सपत्नेषु वज्रमर्पयैतम् ।
इन्द्रेण दत्ता प्रथमा शतौदना भ्रातृव्यघ्नी यजमानस्य गातुः ॥

(अघायतां मुखानि) पाप करने वालोंके मुंह (अपि नह्य) बंद करके (सपत्नेषु एतं वज्रं अर्पयत) शत्रुओंपर यह शस्त्र चलाओ। (यजमानस्य गातुः) यजमानको यश देनेवाली (भ्रातृव्यघ्नी) शत्रु का नाश करनेवाली (प्रथमा शतौदना) पहिली शतौदना गौ (इन्द्रेण दत्ता) इन्द्रने दी है॥ १ ॥

इस मंत्र में पापी लोगोंके मुख बंद करो और शत्रू पर शस्त्र चलाकर उनको दूर भगा दो, ये दो उपदेश सबसे प्रथम कहे हैं, इस से यह सिद्ध होता है कि, इस सूक्त में जो आगे कथन होनेवाली बात है उसमें (अघायत्) पापी लोगों का कोई प्रयोजन नहीं है। पाप वृत्तिवाले जो लोग होते हैं वे अच्छे कार्य को भी बिगाड देते हैं, इस लिये किसी अच्छे कार्यके साथ पापी मनुष्योंका संबंध न आजाय इस विषय में सावधानी रखनी चाहिये। पापी मनुष्यों को दूर करना और शस्त्रों द्वारा उनको सदा दूर रखना और पश्चात् अच्छा कार्य प्रारंभ करना चाहिये, नहीं तो पापवृत्तिवाले मनुष्य अच्छे से अच्छे कार्यकाभी बिगाड करेंगे ।

यहां से अब गोमेध का प्रकरण शुरु होता है, इस लिये इस पवित्र गोमेधमें (अघायत्) पापकर्म करनेवाले मूढ याजक (मुग्धा देवाः) न आवें और गोमेध की पवित्रता को न बिगाडें, इस लिये वेदने यहां इनको दूर भगानेकी सूचना सबसे प्रथम दी है।

इस मंत्रमें और इस सूक्तमें " शतौदना गौ " का वर्णन है। यह शतौदना गौ कौन है इसका अब विचार करना चाहिये। (ओदन) चावलोंके (शत) सौ भोजन देनेवाली गौ जो होती है उसका नाम शतौदना गौ है। एक साधारण मनुष्य के लिये पर्याप्त होने वाले चावलों का नाम " एक ओदन " है, तथा सौ मनुष्यों के लिये पर्याप्त होनेवाले चावलोंका नाम " शत ओदन " है। मान लें कि सौ मनुष्य केवल दूध चावलही खानेवाले हैं। जिस एक गौका एक दिनभर का दूध सौ मनुष्योंके पके चावलोंको भिगा सकता है उसका नाम " शतौदना गौ " है। अच्छी गौ प्रतिवार दस या पंद्रह सेर दूध देती है, और सवेरे, मध्यदिनमें और सायंकाल को अर्थात् यज्ञके तीन सवनोंमें तीनवार दूध निचोडा जाय तो तीस सेर से अधिक और पचास सेरसे कम दूध मिल सकता है। इतना दूध उक्त सौ मनुष्योंके चावलोंको भिगोने के लिये पर्याप्त है। यह एक गौके दूधका प्रमाण है। जिसप्रकार आजकल यंत्रकी शक्ति घोडोंके प्रमाणोंसे देखी जाती है उसी प्रकार वैदिक कालमें गौकी दूध देनेकी शक्ति "इतने ओदन दूध देनेवाली" इस प्रमाणसे देखी जाती थी। जैसा शतौदना गौ, पञ्चौदना अजा इ०। पञ्चौदन अज का वर्णन अथर्ववेद (काण्ड ९।५ तथा काण्ड ४।१४) में आया है। बकरीका अधिक से अधिक दूध " पांच ओदन" के लिये पर्याप्त होता है और गायका अधिकसे अधिक दूध " सौ ओदन " के लिये पर्याप्त होता है। बकरीको " पंचौदन "

और गौको "शतौदन" शब्द क्यों प्रयुक्त हुए हैं इस का स्पष्टीकरण यह है। यह दूधका प्रमाण आजभी ठीक प्रतीत होता है। बकरीकी अपेक्षा वीस गुणा दुध गौ दे सकती है इस विषयमें किसीको शंका नहीं हो सकती।

इस मंत्रमें कहा है कि ऐसी उत्तम शतौदना गौ इन्द्रने सबसे पहिले (दत्ता) दान दी थी, तबसे शतौदना गौ दान देनेकी प्रथा शुरू हुई। इस मंत्रमें "दत्ता" शब्द है जो दान देनेका सूचक है, यह बात पाठक स्मरण रखें, क्यों कि इसका आगे बहुत संबंध है। आगे भी—

(१-३) यो ददाति शतौदनाम् ॥ अ.१०।९।५,६,१०
(४) ब्राह्मणेभ्यो वशां दत्त्वा सर्वांल्लोकान्त्समश्नुते ॥
अ. १०।१०।३३

"(१) जो शतौदना गौको दान देता है। (२) ब्राह्मणोंको वशा गौ दान देनेसे संपूर्ण लोकों की प्राप्ति होती है।"

इन मंत्रों में अर्थात् इसी गोमेधके सूक्तोंमें ब्राह्मणों को शतौदना वशा गौ दान देना लिखा है। जो लोग गोमेधमें गोवध होता है ऐसा मानते हों उनको ये मंत्र ध्यानमें रखना चाहिये। जिस प्रकार इन पांच मंत्रों में गोदान करनेका भाव है उसी प्रकार इन्हीं सूक्तों में आगे गौका दान स्वीकार करनेका भी वर्णन है। इस विषयमें और एक मंत्र भी देखीये—

आपो देवीर्मधुमतीर्घृतश्चुतो
ब्रह्मणां हस्तेषु प्र पृथक् सादयामि ॥ अ. १०।९।२७

"ब्राह्मणोंके हाथोंमें अलग अलग घीके समान मधुर दिव्य जल छोडता हूं।" अर्थात् पूर्वोक्त गौके दान करनेके समय मैं हरएक ब्राह्मणको अलग अलग गौ देता हूं और दानका सूचक उदक भी मैं हरएक ब्राह्मणके हाथ में छोडता हूं। यह उदक सिंचन पूर्वक दान की

प्रथा आज तक चली आरही है। यह बात पाठक स्मरण रखें। जिस प्रकार गोमेध में गौका दान करने की विधि है उस प्रकार यह शतौदना वशा गौ कौन ले सकता है इस विषय में भी कुच्छ नियम इसी गोमेध सूक्तमें लिखे गये हैं वे मंत्र अब देखिये-

(१) शिरो यज्ञस्य यो विद्यात्स वशां प्रतिगृह्णीयात्॥

(२) य एवं विद्यात्स वशां प्रतिगृह्णीयात् ॥

(३) य एवं विदुषे वशां ददुस्ते गतास्त्रिदिवं दिवः॥

(४) सा वशा दुष्प्रतिग्रहा॥ अ० १०।१०।२,२७,३२,२८

(१) जो यज्ञके सिरको जानता है वह वशा गौका दान लेवे, (२) जो पूर्वोक्त ज्ञान जानता हो वह वशा गौका दान लेवे, (३) जो ऐसे विद्वान को वशा गौ दान देते हैं वे स्वर्ग में जाते हैं। दूसरों के लिये (४) वशा गौ दान में लेना अयोग्य है।"

इन मंत्रों में विशेष तत्त्वज्ञानी ब्राह्मणही वशा गौको दानमें लेवे ऐसा स्पष्ट कहा है । जो ऐसा ज्ञानी ब्राह्मण न हो वह गौका दान लेनेका अधिकारी नहीं है । दान देनेवाला यजमान भी कौनसा ब्राह्मण गौ दान देने योग्य है इसका निश्चय इन कसौटियोंसे करे। लेनेवाला भी अपनी योग्यता होगी तो लेवे अन्यथा न लेवे ।

गोमेध सूक्तों में गौके दान के विषय के ये मंत्र सूचित कर रहे हैं कि गोमेधमें ब्राह्मणको गौ दान देनेकी बात अवश्य है । गोमेधसे गोमांस हवन की बात ही माननेवाले विद्वान इन मंत्रोंका अवश्य ही विचार करें और गोमेधमें गोदान है यह समझें । सर्वमेधमें अपने सर्वस्वका दानही दिया जाता है इसी प्रकार गोमेध में गौका दान देना संभवनीय उक्त मंत्रों के प्रमाणसे माना जा सकता है । इस प्रकार प्रथम मंत्रका विचार करनेके बाद अब आगेके मंत्र देखिये-

वेदिष्टे चर्म भवतु बर्हिर्लोमानि यानि ते ।
एषा त्वा रशनाऽग्रभीद्ग्रावा त्वैषोऽधि नृत्यतु ॥ २ ॥
बालास्ते प्रोक्षणीः सन्तु जिह्वा सं मार्ष्ट्वघ्न्ये ।
शुद्धा त्वं यज्ञिया भूत्वा दिवं प्रेहि शतौदने ॥ ३ ॥
यः शतौदनां पचति कामप्रेण स कल्पते ।
प्रीता ह्यस्यर्त्विजः सर्वे यन्ति यथायथम् ॥ ४ ॥
स स्वर्गमारोहति यत्रादस्त्रिदिवं दिवः ।
अपूपनाभिं कृत्वा यो ददाति शतौदनाम् ॥ ५ ॥
स तांल्लोकान्त्समाप्नोति ये दिव्या ये च पार्थिवाः ।
हिरण्यज्योतिषं कृत्वा यो ददाति शतौदनाम् ॥ ६ ॥

अथर्व. १० । ९

"हे गौ ! तेरा चर्म वेदी बने, जो (लोमानि) लोम हैं वे यज्ञकी बर्हिके स्थानपर हों यह रसी तुझे ठीक रीतिसे धारण करे और यह यज्ञका ग्रावा तेरे ऊपर (नृत्यतु) नाचता रहे॥ २ ॥ तेरे बाल पवित्र जलके स्थान पर समझे जांय, हे(अ-घ्न्ये) हनन करने अयोग्य गौ ! तेरी जिह्वा (सं मार्ष्टु) तुझे स्वच्छ करे । तू शुद्ध और यज्ञिय होकर, हे (शतौदने) शतौदन गौ! तू (दिवं प्रेहि) स्वर्ग को जा ॥ ३ ॥ (यः) जो (शतौदनां पचति) शतौदनाको परिपक्व बनाता है (सः कामप्रेण लभते) उसकी इच्छा पूर्ण होती है । इसके सब ऋत्विज संतुष्ट होकर जहां इच्छा हो वहां जाते हैं ॥ ४ ॥ (स स्वर्गं आरोहति) वह उस स्वर्ग पर पहुंचता है कि (यत्र अदः दिवः त्रिदिवं) जहां द्युलोक का तीसरा स्वर्ग है। (यः अपूपनाभिं कृत्वा) जो मिठे वडे बनाकर (शतौदनां ददाति) शतौदना गौको दान देता है ॥ ५ ॥ जो सोनेके चमकदार गहने पहनाकर शतौदना गौका दान करता है वह इह परलोक में श्रेष्ठ लोक प्राप्त करता है ॥ ६ ॥"

इन मंत्रोंमें दो वाक्य हैं कि जो शंका करने योग्य समझे जाते हैं वे वाक्य ये हैं-

१दिवं प्रेहि शतौदने ॥३॥ २यः शतौदनां पचति० ॥४॥

"(१) हे शतौदने! तू स्वर्गको जा। (२) जो शतौदनाको पकाता है।" साधारण लोग समझते हैं कि पहिले वाक्य में "गौको स्वर्गको जा" कर के जो कहा है वह गोवध का सूचक है तथा दूसरे वाक्यमें "शतौदनाको पकानेका वर्णन स्पष्ट है।" यह मांसपक्षियों का कथन बिलकुल अयोग्य है देखिये इसके हेतु-

यदि पहिले वाक्यमें "(दिवं प्रेहि शतौदने) शतौदने! तू स्वर्गको जा" इस कथनसे गौको काटनेका अनुमान करना है तो ऊपरके ही पंचम मंत्रमें "(स स्वर्ग आरोहति) वह यजमान स्वर्ग पर चढता है" यह कथन है, क्या इससे यजमानको भी काटने का अनुमान करना है? दोनों विधानोंसे एकही अनुमान निकल सकता है। स्वर्गमें जानेकी बातही यहां माननी हो तो जिस स्वर्गमें शतौदना गौ तत्काल जाती है, उसी में तत्काल ही यजमान पहुंचता है क्यों कि स्वर्गमें चढनेके क्रियापद वर्तमान कालके ही बोधक हैं। आज गौको काटेगा वह यजमान मरणके पश्चात् स्वर्गको जायगा यह मंत्रका कथन नहीं है, परंतु कथन यह है कि "जो शतौदना का पाक करेगा वह स्वर्गके तीसरे लोकमें उसी समय चढता है। (मंत्र. ५)" अर्थात् यजमानकी तो उसी समय स्वर्गप्राप्ति है! इस लिये यहांके शब्द प्रयोग विचारके साथ देखने योग्य हैं-

१ दिवं प्रेहि शतौदने ॥ (मंत्र ३)

२ स (यजमानः) स्वर्गमारोहति ॥ (मंत्र ५)

प्रथम वाक्यमें शतौदनाको कहा है कि "तू स्वर्गको जा।" यहां ऐसा नहीं कहा कि शतौदना गौ तत्काल स्वर्गको जाती है। परंतु

दूसरे वाक्यमें कहा है कि " यजमान तो उसी समय स्वर्गपर चढता है । " इन दोनों वाक्योंका भेद पाठक समझही सकते हैं। अर्थात् यदि स्वर्गको जानेका अर्थ हवन के लिये कट जाना ही मानना है, तो वह आपत्ति यजमानपर विशेष जोरसे और सबसे प्रथम आ जाती है । और उसी युक्तिसे मानना पडेगा कि गोमेधमें गौ और यजमान इन दोनों की समान गति होती है !!!

पाठक यहां विचार करें कि यदि यज्ञमें कटे हुए पशुसे पूर्व ही यजमानको भी स्वर्ग मिलना हो तो इस प्रकार का कर्म, कि जिसमें अपना ही नाश उसी समय होना हो, कौन करेगा? किसी भी अन्य यज्ञोंमें जो आपत्ति नहीं वह इस गोमेध में है। अन्य यज्ञोंके वर्णनोंमें यजमानको मरनेके पश्चात् स्वर्गप्राप्ति लिखी है, परंतु यहां तत्काल लिखी है। इस लिये यहांके इन वाक्योंका कुछ तात्पर्य अन्य ही समझना उचित है । इसलिये इसके अगला ही मंत्र देखिये—

स तांल्लोकानाप्नोति ये दिव्या ये च पार्थिवाः ।
हिरण्यज्योतिषं कृत्वा यो ददाति शतौदनाम् ॥ ६ ॥
अथर्व. १० । ९ । ६ ॥

"जो स्वर्ग के और पृथ्वीपर के लोक हैं उन सबको वह यजमान प्राप्त होता है जो सुवर्णके आभूषण बनाकर शतौदन गौका दान करता है । "

इस मंत्रमें कहा है कि सुवर्णके आभूषणोंसे सजी हुई गौका जो यजमान दान करता है वह इस भूमि परके तथा स्वर्ग के संपूर्ण लोकोंको प्राप्त करता है । इसी प्रकारका पंचम मंत्र है देखिये-

अपूपनाभिं कृत्वा यो ददाति शतौदनाम् ॥५॥
हिरण्यज्योतिषं कृत्वा यो ददाति शतौदनाम् ॥६॥

पहिले मंत्रने कहा है कि मीठे बडे बनाकर गौका दान करना

चाहिये और दूसरे मंत्रका कथन है कि सुवर्णके आभूषणोंसे सजा कर गौका दान करना चाहिये।

इन मंत्रोंका विचार करनेसे गौदान करनेकी वैदिक रीति ज्ञात होजाती है। जिस ज्ञानी ब्राह्मणको गौ दान करनी हो उसको अलंकारोंके सहित और मिठाईके सहित गौ दान देनी चाहिये। यह प्रथा इस समयतक चली आई है। गौ दान करनेके समय गौ पर कुछ जेवर रखते हैं और साथ कुछ मीठी चीज भी रखते हैं।

इन मंत्रोंमें (ददाति) दान करनेका बोधक शब्द है। जो सजी सजाई गौ ब्राह्मणको देता है वह स्वर्ग का भागी होता है। ये मंत्र देखनेसे गौ काटनेका यहां कोई संबंध नहीं है। और यजमानको भी कोई डरनेकी बात नहीं है क्यों कि यजमान तो जब गौ दान करेगा तबसे आयुकी समाप्तितक (पार्थिवाःलोकाः) इह लोकका यश भोगेगा और मरनेके पश्चात् (दिव्याः लोकाः) दिव्य लोग प्राप्त करेगा। जिस प्रकार यह सरल है उसी प्रकार गौभी जिसका दान ब्राह्मणको हुआ हो वह अपनी आयुकी समाप्ति तक उसी ब्राह्मणके घर रहेगी और मृत्युके पश्चात् स्वर्गको पहुंचेगी। अर्थात् इस सूक्तके मंत्रोंमें गौ को " स्वर्गको जा " कहने मात्रसे गौ काटनेकी कल्पना करना अत्यंत अयुक्त है। और अगर यहां वैसी कल्पना की गई तो वही बात यजमानपर भी आ जाती है, इसलिये ऐसी भयानक कल्पनाएं करना किसीको भी योग्य नहीं है।

संपूर्ण वेदोंमें गोमेधके ये दोही सूक्त हैं और इन दो सूक्तोंमें ६१ मंत्र हैं। इनमें गौके दानके विषयमें कई मंत्र इससे पूर्व दिये हैं, उनके साथ निम्न लिखित मंत्र भी देखिये-

ब्राह्मणेभ्यो वशां दत्त्वा सर्वाँल्लोकान्समश्नुते॥ अ० १०।१०।३३

" ब्राह्मणोंको वशा गौ दान देनेसे सब लोक प्राप्त करता है। "

यदि गौ काटकर हवन करनेका मतलब इन सूक्तोंमें होता तो

ऐसे दानवाचक मंत्र व्यर्थही हो जांयगे । वास्तवमें देखा जाय तो गोमेधमें दो बातें हैं (१) एक गौ की गुणोंसे उन्नति करना और (२) दूसरा गुणोंसे उन्नत हुई गौ ब्राह्मणोंको दान देना ।

इन सूक्तोंमें एक भी मंत्र ऐसा नहीं है कि जो गौ को काटने और उसके अवयवोंके हवनका दर्शक माना जा सके । इसलिये इन सूक्तोंके ऊपर गोमांस हवन की कल्पना मढ देना सर्वथा अनुचितही है । गौके दान देनेके जो आठ दस मंत्र हैं वे स्पष्टतासे बता रहे हैं कि विद्वान ब्राह्मणको गौदान देनेका नाम गोमेध है । इस प्रकारका दान देनेसे यजमान इह लोकमें सुख भोग करके अंतमें स्वर्गको जाता है और यह गौका दान करना अग्निष्टोमऔर अतिरात्र यज्ञोंसे भी अधिक पुण्य देनेवाला है, इस विषयमें इनही सूक्तोंमें आगे मंत्र आजांयगे । इसलिये गौको ' दिवं गछ ' इतना कहने मात्रसे उसका वध करनेकी कल्पना करना सर्वथा अनुचित है। अब आगेके कुछ मंत्र देखिये—

ये ते देवि पक्तारः शमितारो ये च ते जनाः ।
ते त्वा सर्वे गोप्स्यन्ति मैभ्यो भैषीः शतौदने ॥ ७ ॥
वसवस्त्वा दक्षिणत उत्तरान्मरुतस्त्वा ।
आदित्याःपश्चाद्गोप्स्यन्ति साग्निष्टोममति द्रव॥ ८ ॥
देवाः पितरो मनुष्या गंधर्वाप्सरसश्च ये ।
ते त्वा सर्वे गोप्स्यन्ति सातिरात्रमति द्रव ॥ ९ ॥
अन्तरिक्षं दिवं भूमिमादित्यान्मरुतो दिशः ।
लोकान्त्स सर्वानाप्नोति यो ददाति शतौदनाम् ॥ १० ॥
घृतं प्रोक्षन्ती सुभगा देवी देवान् गमिष्यति ।
पक्तारमघ्न्ये मा हिंसीर्दिवं प्रेहि शतौदने ॥ ११ ॥
ये देवा दिविषदो अन्तरिक्षसदश्च ये चेमे भूम्यामधि
तेभ्यस्त्वं धुक्ष्व सर्वदा क्षीरं सर्पिरथो मधु ॥१२॥ अ.१०।९

"हे देवि! हे गौ! जो लोग तेरे (पक्तारः शमितारः) पकानेवाले और तेरी शान्ति करनेवाले हैं, वे सब (त्वा गोप्स्यन्ति) तेरी रक्षा करेंगे। हे शतौदने गौ! (एभ्यः मा भैषीः) इनसे तू मत डर, क्यों कि इनसे तुम्हें कोई भय नहीं प्राप्त होगा ॥ ७ ॥ दक्षिण की ओर से वसुदेव, उत्तर दिशासे मरुत् देव, पीछेसे आदित्य देव (त्वा गोप्स्यन्ति) तेरी रक्षा करेंगे वह तू (अग्निष्टोमं अतिद्रव) अग्निष्टोम नामक यज्ञसे भी आगे बढ ॥८॥ देव, पितर, मनुष्य, गंधर्व, अप्सरा ये सब (त्वा गोप्स्यन्ति) तेरी रक्षा करेंगे, ऐसी रक्षित होनेवाली तू (अतिरात्रं अतिद्रव) अतिरात्र नामक यज्ञसे भी आगे बढ जा ॥ ९ ॥ (यः शतौदनां ददाति) जो शतौदना गौका दान करता है वह उन सब लोकोंको प्राप्त करता है कि जो अंतरिक्ष, द्यु, भूमि, आदित्य, मरुत और दिशाओंमें हैं ॥ १० ॥ घी देती हुई सौभाग्य युक्त गौ देवी देवोंके प्रति पहुंचती है। हे(अ-घ्न्ये) हनन के लिये अयोग्य गौ देवते! (पक्तारं मा हिंसीः) परिपक्व करने वालेकी तू हिंसा मत् कर! और हे शतौदने! (दिवं प्रेहि) स्वर्गको जा ॥ ११ ॥ जो देव द्यु लोक, अंतरिक्ष और भूमिपर हैं उन सब देवोंके लिये दूध, घी और मधु तू (धुक्ष्व) दे ॥ १२ ॥"

इन मंत्रोंके अंदर "शमितारः, पक्तारः, पक्तारं" केवल ये तीन शब्द हैं, इसलिये मांसपक्षके लोग कहते हैं कि इन मंत्रोंमें गौका वध करके उसके मांसको पकानेका विधान है। ये लोग ऐसा इस लिये कहते हैं कि इनके ध्यानमें पूर्वापर संबंध आया नहीं है। यदि यहांके "शमितारः पक्तारः" ये शब्द गोवध का भाव बताते हैं तो ७, ८, ९ इन तीन मंत्रोंमें तीन वार "गोप्स्यन्ति" शब्द आया है जिसका अर्थ केवल "रक्षण करेंगे", यही असंदिग्ध रीतिसे निश्चित है, इसका क्या तात्पर्य होगा? देखिये--

१ पक्तारः शमितारः जनाः त्वा गोप्स्यन्ति ॥मं. ७॥
२ वसवः मरुतः आदित्याः त्वा गोप्स्यन्ति ॥ मं.८ ॥
३ देवाः पितरो मनुष्याः गंधर्वा अप्सरसः च त्वा गोप्स्यन्ति ॥ मं. ९ ॥

"(१) (पक्तारः) परिपक्व करने वाले, (शमितारः) शांत करने वाले तेरी रक्षा करेंगे ॥ ७ ॥ (२) वसु, मरुत् और आदित्य तेरी रक्षा करेंगे ॥ ८ ॥ (३) देव, पितर, मनुष्य, गंधर्व, अप्सराएं तेरी रक्षा करेंगे ॥ ९ ॥"

ये मंत्र गौकी रक्षा करनेका कार्य सूचित कर रहे हैं। इसमें "मनुष्याः, जनाः" ये दो शब्द तो "गौकी रक्षा मनुष्य करेंगे" यही भाव सूचित कर रहे हैं। यदि शमिताने गौका वध किया और पक्ताने गोमांस पकाया, तो रक्षण करनेवाले किसका रक्षण करें? अर्थात् यहां पक्ता और शमिताका उतना ही कर्म अभीष्ट है कि जिसके बाद गौ जीवित रहेगी और रक्षा करनेवाले रखवालेके पास दी जा सकेगी। मंत्रों का पूर्वापर संबंध देखनेसे यही स्पष्ट भाव प्रतीत होता है।

आजकल जो समांस यज्ञ किया जाता है उसमें "शमिता" नामक एक ऋत्विज रहता है जिसका कार्य यज्ञीय पशुका वध करना होता है। पक्ता शब्दका अर्थ पकानेवाला है इसमें भी हमें कोई आक्षेप नहीं है। परंतु ये अर्थ पूर्वापर संबंधसे यहां अपेक्षित नहीं हैं यही हमारा कथन है।

यहां विवादास्पद तीन शब्द हैं। "शमितारः और पक्तारः" ये शब्द वध और पकानेकी बात सूचित कर रहे हैं और दूसरी ओर "गोप्स्यन्ति" शब्द है जो तीनवार आनेके कारण गौरक्षा की बात जोर से उद्घोषित करता है। यहां शब्दोंका युद्ध इस प्रकार है—

शमितारः

गोप्स्यन्ति ।
पक्तारः

सप्तम मंत्रमें तो विरोधालंकार सेही कहा है कि जो शमिता और पक्ता लोग हैं वेभी गौकी रक्षा करेंगे (शमितारः पक्तारो जनाः त्वा गोप्स्यन्ति) इस मंत्रभागका अर्थ यही होता है कि- "हे गौ! जो तेरा वध करेंगे और जो तेरा मांस पकायेंगे वे तेरी रक्षा करेंगे!" क्या यह अर्थ ठीक है? पाठक गण ! विचार तो कीजिये।

यदि गौका वध करनेवाले और गोमांस पकाने वाले भी गोरक्षिणी सभाके सभासद हो सकेंगे तो फिर गौघातक किनका नाम हो सकेगा ?

इतना विपरीत अर्थ मांस पक्षी लोग कैसा मानते हैं यही हमें आश्चर्य होता है ! ऐसा प्रबल विरोध उत्पन्न होनेपर अर्थकी संगति लगानेके नियम मीमांसकों ने निश्चित किये हैं, यदि उनकी ओर ये लोग ध्यान देंगे तो ऐसे अनर्थ कारक अर्थसे ये लोग बच सकते हैं—

नियम-जिस समय परस्पर विरोधी अर्थवाले शब्द एकही वाक्यमें आजांय, उस समय उन शब्दोंके अन्य अर्थ देखकर सब शब्दोंका अविरोधी अर्थ करना चाहिये।

पाठक गण इस नियमानुसार पूर्वोक्त सप्तम मंत्र का अर्थ देखें-

(१) " गोप्स्यन्ति " शब्दमें " गुप् " धातुका अर्थ " रक्षा करना" इतना एकही है। इसका कोई दूसरा अर्थ नहीं है।

इसके विरोधमें शमिता और पक्ताके अनेक अर्थ हैं देखिये--

(२) " शमिता " (One who keeps his mind calm) अपने मनको शांत रखनेवाला, शांत करनेवाला, संयमी पुरुष. (Self controlled) आत्मसंयम करनेवाला ।

(Killer) हनन करने वाला।

" पक्ता " (One who cooks) पकाने वाला, Ripening परिपक्व बनानेवाला । (One who brings to perfection) पूर्णता करने वाला ।

ये अर्थ सब कोशोंमें हैं। युरोपीयनोंके बनाये कोशोंमें भी हैं। अब यहां पाठक देख सकते हैं कि "गोप्स्यन्ति" क्रिया केवल रक्षा का भाव बता रही है उसके साथ संबंध रखनेवाले " शमिता और पक्ता " के अर्थ हैं वा नहीं। "शांति रखनेवाला" यह शमिताका अर्थ और परिपूर्ण बनाने वाला यह पक्ता का अर्थ रक्षा अर्थके साथ संगत हो सकता है। ये अर्थ लेकर पूर्वोक्त सप्तम मंत्रके अर्थ देखिये-

ये ते देवि शमितारः पक्तारो ये च ते जनाः ।
ते त्वा सर्वे गोप्स्यन्ति मैभ्यो भैषीः शतौदने ॥ ७ ॥अथर्व. १०।९

हे (देवी) गो देवते! (ये ते) जो तुझे (शमितारः) शांत रखने वाले और (ये च ते पक्तारः) और जो तुझे परिपूर्ण बनाने वाले (जनाः) लोग हैं (ते सर्वे) वे सब (त्वा गोप्स्यन्ति) तेरी रक्षा करेंगे। हे शतौदने! हे गौ! तू (एभ्यः मा भैषीः) इनसे मत घबराओ, क्योंकि ये तुम्हें किसी प्रकार कष्ट नहीं देंगे ॥ ७ ॥

" शम् " धातुका अर्थ शांत रखना है, उनको अशांत न बनाना, उनको चिडाना नहीं इत्यादि भाव शमिता शब्दमें हैं। पच् धातुका अर्थ परिपक्व बनाना, उन्नत करना यह है । पच धातुका अर्थ निश्चित करनेके लिये एक विशेष परिच्छेद ही इससे पूर्व लिखा गया है, वह पाठक यहां देखें। उस पच धातुके अर्थको लेनेसे यहां तात्पर्य यह होता है, और इस गोमेधके दो भाग इस प्रकार होते हैं-

(१) एक भागमें—

(अ) गौका शरीर (शमितारः) शांत रखना अर्थात् उसमें विषमता उत्पन्न न होने देना, और-

(आ) गौका उत्तम दूध देनेका जो स्वभाव गुण है वह सबसे अधिक (पक्तारः) बढाना, यदि गौ चार सेर दूध देती हो तो उसको दस पंद्रह सेर दूध देनेवाली बनाना।

(२) दूसरे भागमें—

ऐसी उत्तम परिपूर्ण गौको विद्वान ज्ञानी ब्राह्मण के लिये (दातारः) समर्पण करना।

गोमेधके ये दो भाग हैं। पहिले भागमें गौकी गुणविकास से उन्नति करना और दूसरे भागमें बुद्धिजीवी ब्राह्मणोंको दान देना। हरएक मेधमें (१) संगम, (२) संवर्धन और (३) समर्पण ये तीन भाग होते ही हैं। उत्तम बैलके साथ संगम करने तथा खानपान का योग्य प्रबंध करनेसे गौके गुण बढ जाते हैं। पश्चात् ऐसी गौवें गुरुकुल आदि में पढानेवाले सुयोग्य गुरुदेवोंको समर्पित करना।

"शमितारः, पक्तारः तथा दातारः" ये तीन शब्द इस गोमेध सूक्तमें आये हैं इनके प्रकरणानुकूल ये अर्थ हैं। पाठक भी विचार करें। ये अर्थ न करते हुए वध और पकानेके आशय यदि लिये जांय, तो दानके लिये गौ स्थानपर रहती ही नहीं और सूक्त का अर्थ बन ही नहीं सकता, यह बात ध्यानमें धरनी चाहिये। पाठक यहां देखें कि प्रकरण का संबंध न देखनेसे कितना अर्थ का अनर्थ हो सकता है। यहां तक गो मेधके प्रथम सूक्तके १२ मंत्रोंका अर्थ हुआ। अब अगले मंत्रोंका अर्थ देखिये—

यत्ते शिरो यत्ते मुखं यौ कर्णौ ये च ते हनू। आमिक्षां दुहूतां दात्रे क्षीरं सर्पिरथो मधु॥ १३॥ यौ त ओष्ठौ ये

नासिके ये शृंगे ये च तेऽक्षिणी । आमि० ॥१४॥ यत्ते क्लोमा यद्धृदयं पुरीतत् सह कण्ठिका । आमि० ॥ १५ ॥ यत्ते यकृद्ये मतस्ने यदान्त्रं याश्च ते गुदाः । आमि० ॥ १६ ॥ यस्ते प्लाशीर्यो वनिष्ठु यौ कुक्षी यच्च चर्म ते। अमि० ॥१७॥ यत्ते मज्जा यदस्थि यन्मांसं यच्च लोहितम् । आमि० ॥१८॥ यौ ते बाहू ये दोषणी यावंसौ या च ते ककुत् ॥ आमि० ॥ १९ ॥ यास्ते ग्रीवा ये स्कन्धा याः पृष्टीर्याश्च पर्शवः । अमि० ॥ २० ॥ यौ त ऊरू अष्ठीवन्तौ ये श्रोणी या च ते भसत् । आमि० ॥ २१ ॥ यत्ते पुच्छं ये ते बाला यदूधो ये च ते स्तनाः। अमि० ॥२२॥ यास्ते जंघा याः कुष्ठिका ऋच्छरा ये च ते शफाः । आमि० ॥ २३ ॥ यत्ते चर्म शतौदने यानि लोमान्यघ्न्ये ॥ आमिक्षां दुहूतां दात्रे क्षीरं सर्पिरथो मधु ॥२४॥ अथर्व.१० । ९

"हे (अघ्न्ये शतौदने) हनन करने अयोग्य और हे सौ मनुष्यों के भोजन के लिये दूध देनेवाली गौ ! जो तेरे शरीर के अवयव अर्थात् सिर, मुख, कान, हनू, होंठ, नाक, सींग, आंख, हृदय, पेट, गला, यकृत्, प्लीहा, आंतें, गुदा, बगलें, चर्म, मज्जा हड्डी, मांस, रक्त, बाहू, कंधे, कूब, गर्दन, पीठ, पसलियां, ऊरू, दूम, बाल, दुग्धाशय, स्तन, जंघाएं, खुर आदि अंग और अवयव हैं ये सब तेरा दान करनेवाले यजमान के लिये दूध, घी, मधुरता और दही आदि पदार्थ (दुहूतां) देते रहें ।"

इन बारह मंत्रोंमें गौके अंतर्बाह्य अंगों और अवयवोंके नाम गिने हैं । और कहा है कि ये सब अवयव गौका दान करनेवाले यजमानके घर में दूध, घी, दही मधुरता आदि पदार्थ विपुल परिमाणमें देतें रहें। अर्थात् गौका दान करनेसे दाता के घर दूध

आदि, पदार्थों की न्यूनता न रहे, अर्थात् गौके दान करनेसे दाताके घरमें दूध देनेवाली गौ ओंकी संख्या बढे।

इन मंत्रोंमें " अघ्न्या " शब्द आया है। जो मांसपक्षी विद्वान् इन मंत्रों में भी गोमांस हवनकी संभावना मानते हैं वे इस " अघ्न्या " शब्दका खूब विचार करें। " अघ्न्या " शब्दका अर्थ " हनन करने के लिये अयोग्य, हिंसा करनेके लिये अयोग्य, घातपात करनेके अयोग्य, अवध्य " ऐसा है। "अघ्न्ये शतौदने" ये दो शब्द स्पष्टतासे सिद्ध करते हैं कि " शतौदना गौ अर्थात् जो सौ मनुष्यके भोजन लिये दूध देनेवाली गौ है वह अवध्य है।" इसी का नाम इस सूक्तमें वशा कहा है। इस लिये "अघ्न्या शतौदना वशा गौ " जिसका वर्णन इस गोमेधके सूक्तमें किया है, उसका वध किस प्रकार हो सकता है? पाठक यहां देखें कि जिस सूक्तमें सबसे प्रथम मंत्रमें (अघायत्) पापी और दुष्ट लोगोंको दूर करने को कहा है, जिस सूक्त में अवध्य अर्थ वाले अघ्न्या शब्द का प्रयोग हो गया है, जिस सूक्तमें सब देव और सब मनुष्य इस गौका (गो-ष्यन्ति) संरक्षण करते हैं ऐसा कहा है, ऐसे पूर्ण अहिंसा वादी सूक्तपर ही गोवधपूर्वक मांस हवनका अर्थ मांस पक्षी लोगोंने मढ दिया है। ऐसा विपरीत अर्थ इस सूक्तपर कैसा लगाया जा सकता है यह हम समझही नहीं सकते।

इन बारह मंत्रोंमें " गौका हरएक अवयव दुग्ध आदि पदार्थ देवे " ऐसा जो कहा है वह मनन करने योग्य है। जो दूध पीना है वह नीरोग स्वास्थ्य से पूर्ण गौका ही पीना चाहिये। दूध का संबंध गौके हरएक अंग और अवयवसे है यह बात यहां स्पष्ट होती है। गौका कोई भी अंग अथवा अवयव रोगी हुआ हो तो उसका दोष दूधमें आता है। इस प्रकार रोगीगायका दूध आरोग्यवर्धक नहीं हो सकता। तथा दूधका धंदा करनेवाले

गवालिये इसका विचार न करते हुए सब गौओंके दूध को इकट्ठा मिला देते हैं, वह पीना कितना घातक है यह बात यहां स्पष्ट हो गई है। नीरोग गौका ही दूध पीना चाहिये और गौके किसी भी अंगमें रोग या कमजोरी नहीं रहनी चाहिये। इस लिये पूर्वोक्त बारह मंत्रोंमें सूचित किया है कि गौके हरएक अंग और अवयवसे दूध का संबंध है। दूध पीनेवाले पाठक इस का विचार करें। इसका विचार करनेसे यही निश्चित होता है कि आर्योंको अपने घरमें गौओंकी पालना अवश्य करनी चाहिये और दूधपीना चाहिये। मोल लिया हुआ दूध इस रीतिसे गौणही सिद्ध होता है।

इन मंत्रोंमें "आमिक्षा" शब्द बारहवार आया है। यह आमिक्षा तपे हुए दूधमें दही मिलाकर दूधको फाडनेसे बनती है। इस प्रकार दूध फाडकर जल अलग करके उस दूधके घन पदार्थमें मिश्री आदि मिलानेसे बडा स्वादु खाद्य बनता है। इसके कई अन्य पदार्थ मीठे और नमकीन भी बनते हैं। दही का जल अलग करके भी उसका घन पदार्थ लेकर उसमें मीठा मिलानेसे बडा स्वादु पदार्थ बनता है। इसके भी अन्यान्य अनेक पदार्थ बनते हैं। यह "आमिक्षा" बडी पौष्टिक बलवर्धक और रुचीकर भी होती है। दूध, घी, दही, आमीक्षा ये पदार्थ तथा इसमें मीठास के लिये शहद अथवा मिश्री मिलाकर खानपानके बहुत पदार्थ बनते हैं। ये पदार्थ बनाना भी गोमेधका एक अंग है। अब आगे के मंत्र देखिये—

क्रोडौ ते स्तां पुरोडाशावाज्येनाभिघारितौ ।
तौ पक्षौ देवि कृत्वा सा पक्तारं दिवं वह ॥२५॥
उलूखलेमुसले यश्चचर्मणि यो वा शूर्पे तण्डुलः कणः। यं वा वातो मातरिश्वा पवमानो ममाथाग्निष्टद्धोता सुहुतं कृणोतु ॥२६॥
अपो देवीर्मधुमतीर्घृतश्चुतो ब्रह्मणां हस्तेषु प्रपृथक्सादयामि ।

यत्काम इदमभिषिञ्चामि वोहं तन्मे सर्वं संपद्यताम् वयं स्याम पतयो रयीणाम् ॥ २७ ॥ अथर्व. १०।९

"हे (देवि) गौ देवी! (ते आज्येन अभिघारितौ) तेरे घीसे सिंचित हुए (पुरोडाशौ क्रोडौस्ताम्) दो पुरोडाश मध्यमें हों। ये दो पुरोडाश (तौ पक्षौ कृत्वा) दो पंख बनाकर वह तू (पक्तारं दिवं वह) तुझे परिपक्व बनानेवालेको स्वर्ग-पर उठाकर ले जा ॥ २५ ॥ उलूखल, मुसल, चर्म, शूर्प इनमें जो चावल या कण हों, जिसकी शुद्धता (मातरिश्वा वायुः) अंतरिक्षस्थानीय वायुने की है, उसका (सुहुतं) उत्तम अर्पण करने योग्य अन्न होता अग्नि (कृणोतु) करे ॥ २६ ॥ मैं यह दिव्यजल (ब्रह्मणां हस्तेषु) ब्राह्मणों के हाथों में (प्र पृथक्-सादयामि) पृथक पृथक् छोडता हूं। अर्थात् हरएक ब्राह्मणको अलग अलग दान देता हूं। जिस इच्छासे यह मैं सिंचन करता हूं वह मेरी सब कामना पूर्ण (सं पद्यतां) होवे और हम सब धनोंके स्वामी बनें ॥ २७ ॥

इस गोमेधके प्रथम सूक्तके ये अंतिम मंत्र हैं। यहां प्रथम सूक्त समाप्त होता है। पाठक इस २७ मंत्रोंके प्रथम सूक्तका अच्छी प्रकार आगे पीछेका संबंध देखकर बहुत मनन करें। इस में एक भी मंत्र नहीं है कि जो गौके मांसका हवन सिद्ध कर सकता हो। इसके विरुद्ध गौ अवध्य है, उसकी उन्नति करनी चाहिये, उसका दान करना चाहिये, उसको उत्तम अवस्थामें रखना चाहिये इत्यादि बातें ही इस में कहीं हैं।

इन तीन मंत्रों में पहिले अर्थात् इस सूक्तके २५ वे मंत्र में दो पुरोडाश गायके घीसे उत्तम प्रकार भिगानेका विधान किया है। पुरोडाश का अर्थ पके हुए चावल। इन पके चावलों की राशीपर जितना रह सके उतना गौका घी छोडना चाहिये।

इसीका हवन भी होता है और यह खाया भी जाता है। चावल खानेकी वैदिक रीति यही है कि चावलोंपर खूब घी छोडा जाय और वे खाये जांय। भोजन के दो पक्ष हो ते हैं जैसे महिनेके दो पक्ष होते हैं। भोजन के पहिले भागमें चावल और घी खाना और दूसरे विभागमें भी चावल घीके साथ खाना चाहिये। गायके घीके साथ पके चावल खानेसे बुद्धिकी वृद्धि होती है। मेधा बुद्धिका वर्धन ही स्वर्ग प्राप्तिका चिन्ह है इसकी सूचना इसी मंत्रके उत्तरार्ध में कही है।

चावलों को ठीक करनेके साधन २६ वे मंत्रमें वर्णन किये हैं। उलूखल, मुसल, चर्म, शूर्प इन साधनोंसे छिलकोंसे चावल अलग किये जाते, स्वच्छ किये जाते, और वायुकी सहायतासे छिलके भूस आदि अलग किया जाता है। इस प्रकार स्वच्छ और सुंदर बनाये हुए चावल अग्निपर पकाकर उनका अन्न बनाया जाता है जिसको पुरोडाश कहते हैं। जो प्रथम देवोंको समर्पित करने के लिये हवन किया जाता है और पश्चात् यज्ञशेष पूर्वोक्त प्रकार खाया जाता है। दोनों अवस्थाओं में घीके साथ ही हवन और भक्षण होता है।

यहां २६ वे मंत्रमें गोमेधका पूर्वार्ध समाप्त हुआ है। अगले २७ वे मंत्रमें यजमान कहता है कि जिस उद्देश्य से मैं यह गौओंका दान अलग अलग ब्राह्मणों को पृथक पृथक् दिया है, वह मेरी मनकी कामना सफल हो जाय और मुझे बहुत धन, गोधन आदि प्राप्तहो। जितना मुझे प्राप्त होगा उतना अधिक मैं लोगोंके उपकार करनेमें लगाऊंगा और इस प्रकार मैं जनताका भला करूंगा।

यहां गोमेध का प्रथम सूक्त समाप्त हुआ है। इसमें गोमांस हवन का कोई संबंध नहीं है। आगे गोमेधके द्वितीय सूक्त का अर्थ देखेंगे-

गोमेध का द्वितीय सूक्त।

संपूर्ण वैदिक वाङ्मयमें गोमेधके केवल दोही सूक्त हैं और वे अथर्व वेदमें है। इन दो सूक्तों में से प्रथम सूक्तका अनुवाद उसके स्पष्टीकरण के साथ इससे पूर्व लेखमें प्रकाशित किया गया है। अब एक ही सूक्त रहता है उसका अनुवाद इस लेख में देते हैं। जिस प्रकार पूर्व सूक्तमें गोवध, गोमांस-भक्षण अथवा गौके अवयवोंके हवनका कोई संबंध नहीं है, उसी प्रकार पाठक देखेंगे कि गोमेध के इस द्वितीय सूक्तमें भी मांस हवन का कोई संबंध नहीं है। गोमेधके दो सूक्तोंमें यदि कोई बात कही है तो वह यही है कि उत्तम दूध देनेवाली गौ तथा उत्तम बैल सुयोग्य विद्वान ब्राह्मणको दान दी जावे। इस प्रकारके दानसे दाताको स्वर्ग प्राप्त होता है, गौको भी स्वर्ग मिलता है और सबको दुग्धादि पदार्थ विपुल प्राप्त होते हैं।

इन दो सूक्तों में एक भी ऐसा वचन नहीं है कि जो गोमेध में मांस हवन की संभावना सिद्ध कर सके। ऐसे उच्च शिक्षा देनेवाले सूक्तोंपर भी जब मांस पक्षी लोग अपना मांस का पक्ष मढ देनेका साहस करते हैं तब मन आश्चर्य से चकित हो जाता है और मनमें प्रश्न उत्पन्न होता है कि इतना अर्थका अनर्थ किस कार्यके लिये किया जा रहा है? ये लोग गोदानवाचक सूक्तों पर गोवध का अर्थ क्यों मढा देते हैं? ऐसा अनर्थ करनेसे इनको कौनसा लाभ साध्य करना है? दुराग्रह बढानेके सिवा और कुछ भी दूसरा इनके पल्ले पडना नहीं है। शोक है कि विद्वान हो कर भी मंत्रोंका सरल अर्थ न देखकर मनमानी खींचातानी करते हैं। पूर्वापर संबंध देखनेसे मंत्रोंका अर्थ स्वयं खुल जाता है, इस बात की सचाई अब इस द्वितीय सूक्तमें पाठक देखें—

गौको नमन ।

नमस्ते जायमानायै जाताया उत ते नमः ।
बालेभ्यः शफेभ्यो रूपायाघ्न्ये ते नमः ॥१॥

अथर्व. १०।१०

" हे (अघ्न्ये) हनन करने अयोग्य गौ! जन्मते समय तुझे नमस्कार करता हूं, उत्पन्न होने के बाद भी तुझे नमस्कार करता हूं, तेरे संपूर्ण अवयवों और रूपों के लिये, यहां तक की जो तेरे बाल और खुर हैं, उन सबको मैं नमन करता हूं।"

गोमेधके इस द्वितीय सूक्तका यह पहिला ही मंत्र है। इस में गौका " अघ्न्या " नाम आया है, इसका अर्थ " अ-वध्य " है। अवध्य गौ है, यह प्रथम मंत्रमें ही उपदेश है। गौ छोटी हो, या बडी हो, वह नमस्कार करने योग्य, सत्कार करने योग्य है यही यहां बताया है। गौका बछडा छोटा हो, अभी जन्मा हो अथव कई महिनोंका हो, उसका सत्कार ही करना चाहिये। किसी प्रकार भी कठोरताका या क्रूरता का व्यवहार छोटी या बडी गौके साथ करना नहीं चाहिये। सब ही अवस्थाओंमें गौ सत्कार करने योग्य है। यह इस प्रथम मंत्रका तात्पर्य है।

प्रथम मंत्रमें गौका अवध्यत्व और सत्कार योग्यत्व कहके पश्चात् द्वितीय मंत्रमें कहते हैं कि गौका दान लेने का अधिकारी कौन है, देखिये वह द्वितीय मंत्र—

गौदान लेनेका अधिकारी ।

विद्या और आचार की योग्यता रखनेवाला ज्ञानी सत्पुरुष ही गौका दान लेवे, इस विषयमें इस द्वितीय मंत्र की शिक्षा विचार करने योग्य है—

यो विद्यात्सप्त प्रवतः सप्त विद्यात्परावतः।
शिरो यज्ञस्य यो विद्यात् स वशां प्रतिगृह्णीयात् ॥ २ ॥

" (यः सप्त प्रवतः विद्यात्) जो सात प्रवाह जानता है और जो (सप्त परावतः विद्यात्) सात अंतरोंको जानता है तथा जो यज्ञका सिर जानता है वही ज्ञानी (वशां प्रतिगृह्णीयात्) गौका दान लेवे।" अर्थात् जो यह ज्ञान नहीं रखता वह गौका दान लेनेका अधिकारी नहीं है।

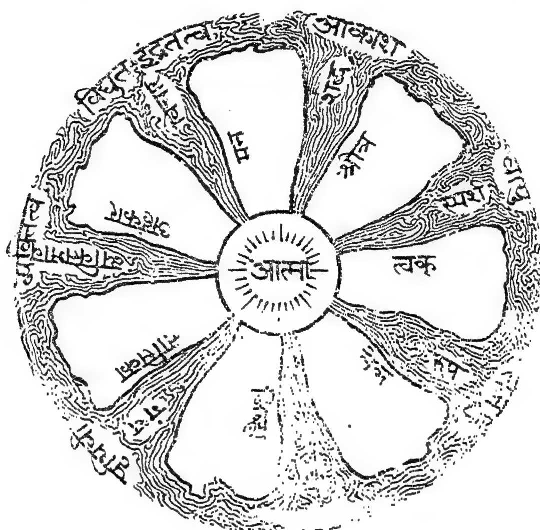
बृहदारण्यक उपनिषद् (अ. ३।१) में कथा है कि राजाजनक ने सुवर्णभूषित करके हजार गौओं का दान करना आरंभ किया। ब्राह्मण समुदाय इकट्ठा होनेके बाद उसने कहा जो ब्रह्मिष्ठ ब्राह्मण हो वह इन गौओं का दान लेवे—

ब्राह्मणा भगवन्तो यो वो ब्रह्मिष्ठः स
एता गा उदजतामिति। बृ० ३।१।२

" हे ब्राह्मणो ! आपके अंदर जो ब्रह्मनिष्ठ हो वह ये सब गौवें ले जावे।" वहां जमा हुए ब्राह्मणोंमें से कोई आगे नहीं हुए। इतने में याज्ञवल्क्य महा मुनि उठे और उन्होंने अपने शिष्यको गौवें लेनेकी आज्ञा की। इत्यादि कथा बृहदारण्यक उपनिषद्में है। यह कथा इस प्रसंगमें देखने योग्य है। इस कथासे भी ज्ञात होता है कि ब्रह्मज्ञानी विद्वान ही गौका दान लेनेका अधिकारी है। साधारण मनुष्य गौका दान लेनेका अधिकारी नहीं है। इस मंत्रमें ब्रह्मनिष्ठके तीन ज्ञानोंका वर्णन किया है, उनका स्वरूप अब बताना चाहिये-

१ सात प्रवाहोंका ज्ञान
२ सात अंतरोंका ज्ञान
३ यज्ञके सिर का ज्ञान

ये तीन ज्ञान जो यथावत् जानता है वह गौका दान लेनेका अधिकारी है। आत्मासे सात प्रवाह चलते हैं जो सप्त इंद्रियोंके नामसे प्रसिद्ध हैं- १बुद्धि, २ मन, ३ जिह्वा-वाणी, ४ नेत्र, ५कर्ण, ६ नासिका, ७ चर्म ये सात नदियां आत्माके अमृतपूर्ण स्रोतसे चल



रही हैं। इनके सात क्षेत्र हैं जिनमें जाकर ये अपने आपको कृत-कार्य होती हैं। शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध ये पांच विषयोंके क्षेत्रों में पांच नदियां जाती हैं और ज्ञान, मनन, अहंकारादि क्षेत्रोंमें शेष दो नदियां जाती हैं। इस प्रकार जागृतीमें आत्मा की शक्ति लेकर ये नदियां अथवा इनके प्रवाह बाहर की दिशासे चलते हैं। सुषुप्ति में येही प्रवाह उलटी दिशासे अंतर्मुख होकर चलने लगते हैं, जब सब प्रवाह उलटे अंदरमें जाकर लीन होते हैं तभी गाढ निद्रा

लगती है। इस प्रकार जाग्रतीमें ये सात प्रवाह आत्मासे बाहर बहिर्मुख होकर चलते हैं और सुषुप्तिमें सब प्रवाह अंतर्मुख होकर चलते हैं, यह सात प्रवाहों का ठीक ठीक ज्ञान जिसको हुआ है और सातों प्रवाहोंपर जिसने अपना प्रभुत्व जमाया है अर्थात् सातों प्रवाहोंको अपनी इच्छासे अंतर्मुख या बहिर्मुख जो कर सकता है, वह सात प्रवाहोंको ठीक प्रकार जान सकता है।

आत्मासे लेकर विषयक्षेत्र तक जो अंतर है उस का नाम है " परावत् "। आत्मामें अंतर का अभाव होता है, परंतु जिस समय जाग्रतिमें ये प्रवाह बहिर्मुख होकर कार्य क्षेत्रमें जाते हैं उस समय इनको अंतर काटना पडता है। आत्मासे दर्शनशक्ति चलती है और रूपके क्षेत्रमें जाकर अपना कार्य करती है। आत्मा और रूपका क्षेत्र इनमें जो अंतर है उसका नाम " परावत् " है। ये सात अंतर हैं। प्रत्येक नदीकी लंबाई इस अंतर से कहीजाती है। जो इस अंतर को ठीक प्रकार जानता है, अर्थात् आत्मासे उक्त शक्तिरूपी नदियां कैसी चलती हैं और वह संपूर्ण नदियां अपने अपने विषयों के कार्यभूमिमें कितनी दूरीपर जाकर कैसी कार्य करती हैं, इसका ज्ञान जो रखता है, इस अंतर की कल्पना जिसे उत्तम रीतिसे हो गई है, वही ब्रह्मनिष्ठ ज्ञानी गौका दान लेनेका अधिकारी है। अन्य साधारण मनुष्य गौका दान न लेवे। देनेवाला भी ऐसे ही ब्रह्मिष्ट मनुष्यको गो दान देवे।

तीसरा ज्ञान " यज्ञके सिरको जानना " है। " पुरुषो वाव यज्ञः।" (छां० उ. ३। १६। १) मनुष्य ही यज्ञ है, वेद और उपनिषदों में यज्ञका वर्णन इसी प्रकार आता है। इसमें सिर अर्थात् प्रधान विभाग और अन्य गौण साधारण विभाग ये दो विभाग हैं। प्राण, मन, बुद्धि, आत्मा यह श्रेष्ठ, प्रधान या सिर स्थानीय

विभाग है, और देह इन्द्रिय आदि स्थूल विभाग अर्थात् साधारण विभाग है। इसको सूक्ष्म और स्थूल, अमूर्त और मूर्त, प्राण और रयि, सिर और धड इत्यादि अनेक नाम अध्यात्म शास्त्रमें हैं। इन नामोंका भेद होनेपर भी वक्तव्य एकही है॥

जो ज्ञानी पुरुष इस मानव शरीरमें चलनेवाले शतसांवत्सरिक यज्ञके सबसे मुख्य सिरोभाग को ठीक ठीक जानता है, अर्थात् जिसे आत्मज्ञान हुआ है वही गौका दान लेवे॥ किसी दूसरेको गौदान लेनेका अधिकार नहीं है॥ यही बात अन्य प्रकार निम्न लिखित मंत्रमें कही है—

वेदाहं सप्त प्रवतः सप्त वेद परावतः।
शिरो यज्ञस्याहं वेद सोमं चास्यां विचक्षणम्॥ ३॥

" मैं सात प्रवाहों को जानता हूं, मैं सात अंतरोंकोजानता हूं और यज्ञके सिर का भी ज्ञान मुझे है, इतना ही नहीं प्रत्युत (अस्यां) इस गौके अंदर तेजस्वी सोम शक्ति रहती है यह भी मैं जानता हूं। " जो इतना ज्ञान रखता है वह गौका दान लेवे। जिसको इतना ज्ञान अपने अंदर रहनेका आत्मविश्वास है वह गौका दान लेवे। किसी साधारण मनुष्यको गौ दान लेनेका अधिकार नहीं है।

गोमेध सूक्त के ये तीन मंत्र पाठक देखेंगे तो उनको निश्चय हो जायगा कि गोमेधमें " गौका दान " है न कि गोवध। गोमांस हवन का गोमेधके साथ संबंध जोडनेवालों का पक्ष इस सूक्तने ऐसा काट दिया है कि वे किसी भी रीतिसे अपना पक्ष अब सिद्ध ही नहीं कर सकते। अस्तु। इस ढंग से गौदान लेनेवाले की योग्यता वर्णन करके अब चतुर्थ मंत्रसे गौके महत्त्वका वर्णन होता है, वह अब देखिये—

गौका महत्त्व ॥

यया द्यौर्यया पृथिवी ययापो गुपिता इमाः ।
वशां सहस्रधारां ब्रह्मणाच्छावदामसि ॥ ४ ॥

" जिसने द्यौ, पृथिवी और (आपः) इन जलोंका (गुपिताः) संरक्षण किया है उस सहस्र धाराओं से दूध देनेवाली वशा गौ को हम प्रार्थना पूर्वक इधर बुलाते हैं । "

यहां गुप्त संकेतसे द्युलोक, अंतरिक्ष लोक और पृथिवी लोकों का धारणपोषण करनेवाला परमात्माही गौ स्वरूपमें हमारे पास आता है और अपना अमृत रस हमें देता है, ऐसा वर्णन किया है। इस लिये गौको देख कर, यही अमृतरस देनेवाला परमात्माका रूप है ऐसा मानकर, उसका सत्कार करना चाहिये । पाठक इससे जान सकते हैं कि गौके विषयमें कितना आदरभाव मनमें धारण करनेका उपदेश वेद कर रहा है । और देखिये—

शतं कंसाः शतं दोग्धारः शतं गोप्तारो अधिपृष्ठे अस्याः।
ये देवास्तस्यां प्राणन्ति ते वशां विदुरेकधा ॥ ७ ॥

" सौ बर्तन, सौ दूध निचोडनेवाले, सौ गोपाल इसके पीठ पर हैं। जो देव (अस्यां प्राणन्ति) इस गौके अंदर जीवन धारण करते हैं वेही (एकधा वशां विदुः) अद्वितीय रीतिसे गौको जानते हैं ।

इस मंत्रमें राजाके ठाठ के समान गौके सन्मान का ठाठ वर्णन किया है। इस गौके पीछे दूधके लिये सौ बर्तन लेकर मनुष्य सन्मानसे चलते हैं, दूध दोहनेवाले सौ मनुष्य इसके साथ आदर से रहते हैं और इसकी रक्षा करनेके लिये सौ गोपाल इसके पीछे खडे रहते हैं । यह गोमेधमें "गौकी सवारी का वर्णन"

पाठक देखें और अनुमान करें कि गोमेधमें कितने सत्कारके साथ गौकी पूजा होती है। यदि कोई गौघातक गौका घात करने की इच्छासे वहां जायगा तो पूर्वोक्त तीनसौ रक्षकों की लाठियों की मारसे वह जीवित बचही नहीं सकता। वैदिक धर्मी आर्य इतनी गौरक्षा करते थे। वे मानते थे कि इस गौ-माताके शरीरमें अनेक देव हैं जो वहां जीवनरस की रक्षा करते हैं ऐसी देवतामयी गौका वध वैदिक समय में होना सर्वथा असंभव है। यह मंत्र कहता है कि "गौका महत्त्व असंदिग्ध रीतिसे वेही जानते हैं कि जो गोदुग्धसे अपनी पुष्टि करते हैं।" यह सर्वथा सत्य है। आज कल गौका महत्त्व भारतीय लोग इस लिये नहीं जानते, क्योंकि वे गौके दूधसे अपने आपको पुष्ट नहीं करते, प्रत्युत गौके शत्रुरूपी भैंस के दूधसे अपने आपको पुष्ट करते हैं।

"गौरक्षा" का सच्चा शत्रु कसाई नहीं है, वह शत्रु निःसंदेह भैंस है। भैंसके दूधको पीनेवाले गाय के दूधके महत्त्वको कैसे जान सकते हैं? गोदुग्धसे जो आरोग्य और जो मेधावृद्धि होती है वह कभी भैंसके दूधसे नहीं हो सकती। इसलिये गौके दूधका ही पान करना चाहिये। वेदका यही आदेश है। पाठक इसे स्मरण रखें। और देखिये-

यज्ञपदीराक्षीरा स्वधाप्राणा महीलुका।
वशा पर्जन्यपत्नी देवाँ अप्येति ब्रह्मणा॥ ६॥

"(वशा) गौ (पर्जन्य-पत्नी) पर्जन्यसे उत्पन्न होनेवाले घास से पालित होती है, यह गौ (यज्ञपदी) यज्ञरूपी पांवसे युक्त, (इरा-क्षीरा) दुग्धरूपी अन्न देनेवाली, (स्वधा-प्राणा) अपनी धारण शक्ति युक्त प्राणवाली, (मही-लुका) भूमिको प्रकाशित करनेवाली है, यह (ब्रह्मणा) अपने अन्न से देवोंके पास जाती है।"

इस मंत्रके शब्द गौका महत्त्व विलक्षण उच्चतम भावके साथ बता रहे हैं, इसलिये इनका अधिक मनन करना चाहिये—

१ "पर्जन्य पत्नी वशा" = पर्जन्यसे पालित होनेवाली गौ है। अर्थात् वृष्टिसे घास उत्पन्न होता है, झरनों में जल बहता है, यह घास यह गौ खाती है, यह पानी पीती है और पुष्ट होती है। यहां इस शब्द द्वारा सूचित किया है कि गौकी पालना जंगलके घाससे ही होनी चाहिये। मनुष्यनिर्मित कृत्रिम अन्नसे, अर्थात् अग्निपर पका कर बनाये अन्नसे नहीं होनी चाहिये। गौके दूधसे अधिक लाभ प्राप्त करना हो तो गौको चावल, रोटी आदि पका अन्न नहीं खिलाना चाहिये, प्रत्युत हरा घास ही खिलाना चाहिये। रोटी आदि पका अन्न गौको अधिक खिलानेसे तथा धान्य भी अधिक खिलाने से गौके गोवर को बडी बदबू आती है। इसी प्रकार गौका दूध भी बिगडता है। कहनेका तात्पर्य यह है कि धान्य और रोटी आदि पका हुआ अन्न खानेवाली गौके दूध की अपेक्षा घास खानेवाली गौका दूध अधिक गुणकारी है। पाठक इस बात का स्मरण रखें।

२ "इरा-क्षीरा" = दुग्धरूपी अन्न देनेवाली। जो लोग गोमांस खानेकी प्रथा वैदिक कालमें थी ऐसा मानते हैं, उनको यह शब्द बडा मनन करने योग्य है। गौसे जो अन्न मिलना है वह केवल दूध ही है और दूसरा नहीं है। जो लोग गौसे दूधके अतिरिक्त मांसादि पदार्थ भोजन के लिये लेते हैं वे वेदके विरुद्ध आचरण करते हैं। यदि वेदको गोमांसका भोजन अभीष्ट होता, तो गौ वाचक शब्दों में " इरा-मांसा " ऐसे शब्द किसी स्थानपर आ जाते। परंतु ऐसा एक भी शब्द नहीं है जिससे गोमांस भोजन सिद्ध हो सके। यह शब्द तो दूध रूपी अन्न ही गौसे प्राप्त करना चाहिये, यह वैदिक मर्यादा बता रहा है। इसलिये इस शब्दने

गोमांसका पक्ष तो जडके साथही नष्ट हुआ है । गौ जो अन्न देती है वह केवल दूध ही है और दूधसे भिन्न कोई अन्न गौके शरीरसे लेना नहीं है । पाठक इस शब्द का खूब मनन करें ।

३ " यज्ञपदी " = यज्ञरूपी पांववाली । गौके पांव यज्ञ ही हैं अर्थात् यह गौ यज्ञ भूमिमें, पवित्र स्थान में भ्रमण करती है । गौ किस स्थान पर भ्रमण करे, इसका आदेश इस शब्द से ज्ञात हो सकता है । जहां लोक शौच करते हैं, मैला फेंकते हैं, ऐसे अमंगल स्थानों में गौको घुमाना नहीं चाहिये । परंतु जहां यज्ञ होते हैं, ऐसी पवित्र भूमिमें कि जहां शुद्ध घास और शुद्ध पानी मिले, ऐसी पवित्र भूमिमें ही गौ घूमनी चाहिये । यह आदेश इसलिये कहा है कि यदि गौ अशुद्ध स्थान का घास खावे और अशुद्ध पानी पीवे तो उसका दूध रोगी बनेगा और मनुष्य में भी रोग बढेंगे । इस लिये यज्ञ भूमिमें गौ घूमे यह उपदेश इस शब्दसे सूचित किया है । इसके पद यज्ञ ही हैं, किसी अन्य स्थानमें इसके पद न लगें । गौको कितनी पवित्रता के साथ पालना चाहिये, इसका सूक्ष्म विचार इन मन्त्रों के अंदर पाठक देख सकते हैं ।

४ "स्वधा प्राणा" – स्वधा शक्ति से युक्त प्राणवाली । अर्थात् जिसमें प्राणशक्तिके साथ स्वधाशक्ति भी है । प्राण शक्ति सब लोग जानते हैं, सब प्राणियोंमें यह शक्ति है इसीलिये प्राणी जीवित रहते हैं । इसी प्रकार (स्व+धा) प्राणियोंके अंदर एक धारकशक्ति भी है उसका नाम "स्वधा" है । अपनी निज धारक शक्ति का नाम स्वधा है । यह शक्ति हरएक पदार्थ में है इसी लिये प्रत्येक पदार्थ अपने रूप में रहता है । मनुष्यमें यह स्वधा शक्ति बढानेका कार्य गौका दूध करता है । इसी लिये बालकों और वृद्धों तथा बीमारों के लिये गौके दूध के समान कोई दूसरा

अन्न नहीं है। यह अपनी धारक शक्ति की वृद्धि करता है, इसीलिये उक्त अशक्त अवस्थामें गो-दुग्धसे उनकी धारकशक्ति बढती है और आयुष्य वृद्धिपूर्वक पुष्टि प्राप्त होती है। किसी भी अन्य दूधमें यह गुण नहीं है। इसी कारण गोदुग्ध मनुष्य के लिये सबसे अधिक लाभदायक है। मानो गोदुग्धमें मनुष्यकी प्राणशक्ति और धारणाशक्ति ही निवास करती है। इसीलिये ही गौ की रक्षा और पालना उत्तम रीतिसे होनी चाहिये।

५ "महीलुका "=भूमिको तेजस्वी बनानेवाली गौ है। पूर्वोक्त शब्दोंके मननसे यह बात स्पष्ट हो जायगी।

यह वर्णन गौका महत्त्व बता रहा है। पाठक इसका अधिक मनन करें। ये पांच शब्द गौके विषय में बडे आदरपूर्ण महत्त्व के विचार प्रकाशित कर रहे हैं। जिस समय ऐसे आदरपूर्ण विचार मनमें रहते हैं उस वैदिक समय गोवध होना बिलकुल असंभव है।

इस मंत्रका चतुर्थ पाद है-"देवान् अप्येति ब्रह्मणा" (जो ब्रह्म के साथ अर्थात् मंत्रद्वारा उपासना, पूजा या सत्कारके साथ देवोंको प्राप्त होती है) कई विद्वान ऐसे हैं कि जो इस मंत्रभागसे गोवध की कल्पना करते हैं और समझते हैं कि वेदमंत्रका उच्चार करके गोमांस की आहुतियां देनेकी कल्पना इससे सिद्ध होती है !!! यह इनकी कल्पना देख कर हमें बडा आश्चर्य होता है, क्यों कि ऐसा अर्थ माननेपर जो पूर्वापर विरोध हो रहा है इसका इन विद्वानों को कोई ख्यालही नहीं है !! इस सूक्तके प्रथम मंत्र मेंही गौको " अ- घ्न्या " (अवध्य) नामसे पुकारा है, इसलिये इस सूक्तमें आगे गोवध की कल्पना करना पूर्वापर संबंधसे युक्ति युक्त नहीं है। इस बातको छोड भी दिया जाय तो इसी मंत्रके शब्द देखिये। इसी मंत्रमें " इरा-क्षीरा " शब्द है जिससे बताया

या है कि गौसे दुग्धरूपी अन्न मिलता है। गौसे मांस-अन्न लेनेकी कल्पना किसी भी स्थानपर नहीं है। यह पूर्वापर संबंध देखनेसे पता लग सकता है कि "देवाँ अप्येति ब्रह्मणा" इस मंत्रभागमें भी गोवध की कल्पना करनेके लिये कोई स्थान नहीं है। "ब्रह्म" शब्द के अनेक अर्थ हैं- परब्रह्म, आत्मा, ज्ञान, वेद वेदमंत्र, मुक्ति, अन्न इतने अर्थ ब्रह्म शब्दके प्रसिद्ध हैं। इसमें अन्न शब्द लिया जाय तो इस मंत्रभाग का अर्थ निम्न लिखित प्रकार होता है- "यह गौ अपने दुग्धरूपी अन्नसे देवोंको प्राप्त होती है।" यज्ञमें गौके दूध और घी का हवन होता है और देवताओंके उद्देश्य से आहुतियां छोडी जाती हैं, जब यह दूध और घी की आहुतियां देवताओं को पहुंचती हैं तब इन आहुतियों के अन्न से गौ भी मानो देवताओंको पहुंचती है। पूर्वापर संबंध देखकर किसी शब्दसे विरोध न करते हुए यह सरल अर्थ है। पाठक इस अर्थका मनन करें।

इसके अतिरिक्त "देवान् अप्येति ब्रह्मणा" इस मंत्रभागमें गोवध की कल्पना करनेके लिये उसके "वध या मांस हवन" वाचक यहां एक भी शब्द नहीं है। "गौ देवोंको प्राप्त होती है" ऐसा कहने मात्र से उसका वध करके उसकी मांसाहुतियों से वह देवोंको प्राप्त होती है, इतनी लंबी कल्पना किस आधारपर की जाती है, यह हमारे समझमें नहीं आता है। यदि दूध घीके रूपसे गौके देवोंतक पहुंचनेकी संभावना न होती तो ऐसी लंबी कल्पना करना एक वार उचित भी माना जाता, परंतु गौको अ-वध्य रखते हुए उसके जीते जी प्राप्त होनेवाले दूध और घी रूपी अन्नकी आहुतियोंसे गौ देवोंको प्राप्त होती है यह बात हरएक यज्ञमें प्रत्यक्ष होनेकी अवस्थामें उतनी लंबी कल्पना—जो मंत्रके शब्दोंसे भी सिद्ध नहीं होती-करना अयोग्य और भाषाशास्त्रके नियमोंके

सर्वथा विरुद्ध है। इसलिये इस प्रकारकी अयुक्त कल्पना करना सर्वथा अनुचित है। अब गौका महत्त्व देखिये—

अनु त्वाग्निः प्राविशदनु सोमो वशे त्वा।
ऊधस्ते भद्रे पर्जन्यो विद्युतस्ते स्तना वशे ॥७॥

"हे (भद्रे वशे) कल्याण करनेवाली वशा गौ! तेरे अंदर अग्नि प्रविष्ट हुआ है, तेरे अंदर सोम प्रविष्ट हुआ है, तेरा दुग्धाशय पर्जन्य बना है और बिजलियांही तेरे स्तन बनी हैं।" अर्थात् अग्नि, सोम, पर्जन्य और विद्युत् इन देवोंने तेरे शरीरमें ही आश्रय लिया है।

गौके दूधमें विलक्षण शक्तिवाली जीवन की विद्युत रहती है, इसीलिये ताजा ताजा दूध-धारोष्ण दुग्ध-पीनेसे मनुष्यमें जीवन की विद्युत् बढती है और आरोग्य तथा दीर्घजीवन प्राप्त होता है। जिस प्रकार पर्जन्य वृष्टिकी अनेक धाराओंसे मनुष्य को शुद्धोदक देता है और वह शुद्धोदक मनुष्यके लिये आरोग्यदायी होता है, ठीक उस प्रकार गो भी अपनी अनेक धाराओंसे दूध देती है जो मनुष्यका आरोग्य बढाने वाला होता है। सोम वनस्पति घास आदिके रूपसे गौके शरीरमें प्रविष्ट होता है, सोम नामक जीवन कलाकी वृद्धि करनेवाली वनस्पति भी गौ खाती है और जो जो वनस्पति इसप्रकार गौके शरीरमें जाती है उसका जीवन सत्त्व गौके दूधमें आता है जो मनुष्य का जीवन सुखमय करने का हेतु होता है। गौ जिस समय जंगलमें घास खानेके लिये भ्रमण करती है उस समय सूर्य प्रकाश उसके शरीरपर पडता है, और सूर्य की उष्णता अग्निरूप तेज-गौके शरीरमें प्रविष्ट होता है, इसका गौके दूधपर परिणाम बडा लाभकारी होता है। भैंस आदि पशु जो केवल कृष्णवर्ण होते हैं और जो उष्णता सह नहीं सकते इस

लिये सदा जलमें डुबकियां लगाना चाहते हैं उन पशुओंमें सूर्य-किरणों का जीवनाग्नि प्रविष्ट नहीं होता। इसलिये भैंस का दूध शीत गुणविशिष्ट होनेके कारण मनुष्य के लिये उतना लाभकारी नहीं हो सकता। परंतु गौ सूर्यका ताप सह सकती है और भैंसके समान जल में डुबकियां लगाना नहीं चाहती, इतना ही नहीं परंतु कपिल, लाल, पीला और श्वेत रंगोंसे युक्त गौके शरीर होनेके कारण सूर्य प्रकाशसे जीवनका आग्नेय तत्त्व गौके शरीरमें प्रविष्ट हो सकता है और वह मनुष्योंका आरोग्यवर्धन भी कर सकता है। गौके दूधसे लाभ और भैंसके दूधसे हानि होनेका वर्णन जो वैद्यग्रंथमें है और जो अनुभवमें भी है, उसका कारण यहां इसप्रकार इस मंत्रसे स्पष्ट हुआ है। गौ सूर्य प्रकाशसे आग्नेय जीवनतत्त्व अपने अंदर संगृहित करती है उस प्रकार भैंस नहीं कर सकती, इस कारण दोनोंके दुग्धों के गुणधर्मोंमें इतना अंतर है। इसी लिये गौ मनुष्यों की माता कही जाती है वैसी भैंस नहीं। गौका दूध आरोग्यवर्धक है वैसा भैंसका नहीं। गौका दूध बुद्धिवर्धक है वैसा भैंसका नहीं। प्रतिदिन गौका दूध पीनेवाले को सूर्यतापज्वर (Sun stroke) की बीमारी होती नहीं, इसका भी यही कारण है। भैंसका दूध प्रतिदिन पीनेवालेको सूर्यतापज्वर की बाधा होती है। पाठक विचार करें कि गौका महत्त्व कितना है और मनुष्यके जीवनके साथ उसका कितना घनिष्ठ संबंध है। इसीलिये वेद गौका महत्त्व विविध रीतिसे वर्णन कर रहा है। तथा और देखिये—

राष्ट्ररक्षक गौ।

अपस्त्वं धुक्षे प्रथमा उर्वरा अपरा वशे।
तृतीयं राष्ट्रं धुक्षेऽन्नं क्षीरं वशे त्वम् ॥ ८ ॥

"हे (वशे) वशा गौ! (त्वं प्रथमा अपः धुक्षे) तू सबसे प्रथम दूध देती है, (त्वं अपरा उर्वरा) तू पश्चात् भूमिकी कृषि कराती है, इस प्रकार (त्वं क्षीरं अन्नं दत्त्वा) तू दूध और अन्न देकर (तृतीयं राष्ट्रं धुक्षे) तीसरे राष्ट्रको परिपुष्ट बनाती है।"

इस मंत्रमें गौके कितने उपकार वर्णन किये हैं देखिये। सबसे प्रथम गौ दूध देती है, यह दूध बाल, वृद्ध, रोगी स्त्रीपुरुषोंके लिये तथा सशक्त और अशक्तोंके लिये बडा उपकारी है। इसलिये यह गौ सबकी माता है। यह इसका पहिला उपकार है। गौका दूसरा उपकार यह है कि यह बैलों को उत्पन्न करती है और उन बैलोंके द्वारा खेती की जाती है जिस खेतीसे विपुल धान्य उत्पन्न होता है, अर्थात् बैलों द्वारा खेती करानेवाली गौ ही है। यह इस गौका मनुष्योंपर दूसरा उपकार है। इसप्रकार स्वयं दूध देने और बैलों द्वारा कृषि करवाके धान्य देनेसे मानो राष्ट्रका पालन पोषण और रक्षण गौ ही कर रही है, यह तीसरा उपकार है। ये तीन उपकार गौ कर रही है, पाठक इनका अनुभव करें। आज कल गौओंकी संख्या कम हो गई है इसलिये विपुल दूध मिलनेका अनुभव नहीं है, परंतु पंजाब, सिंध, युक्त प्रांत और गुजरात में प्रति समय दस पंद्रह सेर दूध देनेवाली गौएं हैं, उनको देखनेसे पता लग सकता है कि यह गौ राष्ट्रका पालन किस प्रकार कर सकती है। भगवान गोपाल कृष्णके समय पाठक देख सकते हैं कि घर घरमें गौओंकी पालना होती थी, हरएक मनुष्यको विपुल गोरस मिलता था, उससे उस समयके वीर कैसे दीर्घायु होते थे और कैसे सुदृढ होते थे। सत्तर अस्सी वर्षवाले मनुष्य भी अपने आपको युवा होनेका अनुभव करते थे और मनुष्योंकी देडसो वर्षकी आयु भी एक साधारण बात थी। परंतु आज प्रतिदिन सेकडों गौओंका वध हो रहा है और गौका दूध आज अति दुर्लभ

सा हुआ है, इसका परिणाम दुर्बलता और अल्पायुतामें पाठक प्रत्यक्ष देख सकते हैं। इससे पाठक जान सकते हैं किस रीतिसे गौ राष्ट्रका पालन करती है। अर्थात् गौ एक " राष्ट्रीय महत्त्वका धन " है जिस से मनुष्य धन्य ही बनता रहेगा। इसलिये हरएक पंथके और धर्मके मनुष्यको यहां गोरक्षा अवश्यही करनी चाहिये। यदि न की जाय तो न केवल उस व्यक्ति की अवनति होगी प्रत्युत उसके राष्ट्र की भी अवनति होगी। इसप्रकार राष्ट्रके उद्धार का संबंध गोरक्षासे है। पाठक इस रीतिसे गौमें राष्ट्र संरक्षण का गुण देखें और अन्य सब मतभेद छोड कर गोरक्षा में दत्तचित्त होकर पूर्णतया कटिबद्ध होकर गौकी रक्षा करनेका महत्त्वपूर्ण कार्य करें। राष्ट्रमें जो जो मनुष्य हैं उनके शरीरोंकी नीरोगता दीर्घ आयु और शक्ति रखने और बढनेका संबंध इसप्रकार गोरक्षणसे है, इसलिये गोरक्षा के विषयमें जो उदासीन रहते हैं, वे अपनी राष्ट्र रक्षामें भी उदासीन ही होते हैं, अर्थात गोरक्षा के विना राष्ट्ररक्षा हो नहीं सकती है। यह बात समझ कर सब लोग गोरक्षा के कार्यमें विशेष दत्तचित्त हों और कभी उदासीन न हों, क्योंकि ऐसा गोवध होता रहा तो अन्य बातोंकी उन्नति होनेपर भी राष्ट्रकी सच्ची उन्नति होना असंभव है, मनुष्योंकी दीर्घायु, शारीरिक शक्ति, और नीरोगता न रही तो अन्य उन्नतिसे कौनसा लाभ प्राप्त हो सकता है? इस लिये गोरक्षा करना आत्मरक्षाके समान ही महत्त्व पूर्ण बात है इसको कभी भूलना नहीं चाहिये।

गौके लिये सोमरस।

सोम बडी औषधि है जो जीवन कलाकी वृद्धि करने वाली है। वैदिक आदेशानुसार ऐसा प्रतीत होता है कि गौको सोमरस

पिलाया जाता था और पश्चात् उसका दूध मनुष्य पीते थे; जिसमें सोमरस के गुणधर्म आजाते थे और उसकारण वह सोमरस पीनेवाली गौका दूध मनुष्यके लिये बडाही आरोग्यप्रद होता था, इस विषयमें अगला मंत्र देखिये—

यदादित्यैर्हूयमानोपातिष्ठ ऋतावरि ।
इन्द्रः सहस्रं पात्रान् सोमं त्वापाययद्वशे ॥ ९ ॥

"हे (ऋतावरि वशे) सरल स्वभाववाली वशा गौ! जब आदित्यों द्वारा बुलायी जा कर तूं पास आती थी, तब इन्द्र तुझे हजारों बर्तनों से सोमरस पिलाता था।"

अर्थात् जब गौ जंगलसे वापस आती है तब उस गौके पानके लिये अनेक बर्तनोंमें सोम रस तैयार रखा जाता था। जिसका पान गौ करती थी और पश्चात् गौको दुहा जाता था। पाठक देखें कि यह वैदिक प्रथा है, यह वैदिक समयमें गौका आदर था।

वीरोंका दुग्धपान ।

युद्धके समय गौके दूधका पान वीर लोग करें इस विषयके दो मंत्र अब देखिये—

यदनूचीन्द्रमैरात् त्व ऋषभोऽह्वयत् ।
तस्मात्ते वृत्रहा पयः क्षीरं क्रुद्धो हरद्वशे॥१०॥
यत्ते क्रुद्धो धनपतिरा क्षीरमहरद्वशे ।
इदं तदद्य नाकस्त्रिषु पात्रेषु रक्षति ॥ ११ ॥

"हे (वशे) गौ! (यत्) जब तू (इन्द्रं अनूचीः ऐः) इन्द्रके साथ चली उस समय (ऋषभः) बलवान् वृत्रासुर (त्वा अह्वयत्) तुम्हारे लिये बुलाता रहा (तस्मात् क्रुद्धः) इससे क्रुद्ध हुए (वृत्रहा) वृत्रासुरका वधकर्ता इन्द्रने (ते पयः क्षीरं) तेरा

अमृत जैसा दूध (अहरत्) लिया॥ हे (वशे) गौ! जो क्रुद्ध हुए (धन-पतिः) इन्द्रने तेरा दूध लिया था, वही आज (नाकः) स्वर्ग रूपसे तीन पात्रोंमें रक्षण किया जाता है। "

इन्द्र और वृत्रके युद्धके प्रसंगोंका वर्णन वेदमें अनेक स्थानोंमें आया है। वह वर्णन आधिदैविक सृष्टिमें सूर्य और मेघ, आधि भौतिक प्राणि सृष्टिमें धार्मिक राजा और अधार्मिक शत्रु, तथा आध्यात्मिक सृष्टिमें आत्मिक शक्ति और हीन मनोविकार, इनके युद्धके भाव बताता है। इस विषयका संपूर्ण रूपक यहां कहने की कोई आवश्यकता नहीं है। यहां हमें इतना ही देखना है कि युद्धादि प्रसंगोंमें भी गौसे लाभ उठानेकी बात वेदमें किस महत्त्वके साथ कही है। वेदमें उपदेश देनेके जो अनेक मार्ग हैं उनमें यह भी एक मार्ग है कि " इन्द्रादि देवोंने ऐसा किया और उसके करनेसे उनको यह लाभ हुआ।" ऐसे वर्णनसे बताया जाता है कि मनुष्यभी वैसाही करे और लाभ उठावे। इस प्रकार उक्त मंत्रमें यह वर्णन है--

" एक समय इन्द्र और वृत्रासुरका युद्ध हुआ, इस युद्धमें इन्द्रके साथ गौवें थीं। जहां देवोंका सैन्य रहता था वहां गौवें भी रखी जाती थीं। जब देवोंके वीर जोशसे और क्रोधसे लडते थे और थक जाते थे, उस समय उनको गौओंका ताजा दूध निचोड कर दिया जाता था। इस प्रकार दूध पीपी कर देववीर युद्ध करते थे। वृत्रासुरने यह बात देखी और एक समय इन्द्रकी गौओंपर हमला चढाया। इससे इन्द्रको बडा क्रोध आया। देवोंनेभी असुरोंपर जोरसे हमला किया और उनका पराजय किया। तथा गौओंके दूधके बर्तन स्वर्गमें रख दिये, जिस कारण आजभी स्वर्गका महत्त्व सब मानते हैं।"

वेद मंत्रोंके मूल वर्णनसे ब्राह्मणादि ग्रंथोंमें इसी प्रकार कथाएं बनाकर लिखी हैं। ये कथाप्रसंग इतिहास बताने के लिये नहीं हैं, परंतु कुछ सनातन बोध देने के लिये बनाये जाते हैं। इस कथा प्रसंग से पाठक निम्नलिखित बोध ले सकते हैं-

(१) युद्ध करनेवाले सैनिकोंको पीनेके लिये दूध मिले इस लिये सैन्यके साथ कुछ गौवें रखनी चाहिये और उनका ताजा दूध सैनिकों को पिलाना चाहिये। युद्ध करते समय थके हुए सैनिकोंको भी इसी प्रकार दूध देना चाहिये।

(२) जब कोई जोशका कार्य करना हो, जिस समय कोई थकावट आनेवाला कार्य करना हो, जिस समय क्रोध आया हो, तो उस समय गौका धारोष्ण दूध पीनेसे शरीरमें समता आ जाती है।

यह सामान्य बोध उक्त मंत्रोंके वर्णन में पाठक देख सकते हैं। क्रोध, मोह, मद (उन्माद) की अवस्था प्राप्त हुई तो उस समय गौका दूध पीनेसे शरीरमें समता आती है और उक्त हीन मनोविकार दूर होते हैं। कामविषयक अत्याचार से मनुष्यके शरीरमें निर्वीर्यता उत्पन्न हुई हो तो गौके दूध पीनेसे दूर होती है। अतिश्रम से उत्पन्न हुई थकावट, हृदय की जलन, मस्तककी आग, नेत्रोंकी जलन, हृदय विकार से होनेवाली मूर्च्छा आदि सब दोष गौके दूध पीनेसे दूर होते हैं। किसी भी अन्य दूधमें यह गुण नहीं है। इसलिये ऋषिमुनि गौका दूध पीकर योगादि साधन करके अजरामर होते थे। यदि इस समयमें भी भारतीय लोग गौकी रक्षा करेंगे, तो उसी प्रकार की सिद्धी वे इस समयमें भी प्राप्त कर सकते हैं।

❀

वीर लोग गौओंको साथ लेकर समुद्रके पार जा कर वहां पराक्रम करें इस विषयका संकेत निम्न लिखित मंत्रोंमें पाठक देख सकते हैं--

त्रिषु पात्रेषु तं सोममा देव्यहरद्वशा ।
अथर्वा यत्र दीक्षितो बर्हिष्यास्त हिरण्यये ॥ १२ ॥
सं हि सोमेनागत समु सर्वेण पद्वता ।
वशा समुद्रमध्यष्ठाद्गंधर्वैः कलिभिः सह ॥ १३ ॥
सं हि वातेनागत समु सर्वैः पतत्रिभिः ।
वशा समुद्रे प्रानृत्यदृचः सामानि बिभ्रती ॥ १४ ॥
सं हि सूर्येणागत समु सर्वेण चक्षुषा ।
वशा समुद्रमत्यख्यद्भद्रा ज्योतींषि बिभ्रती ॥१५॥
अभीवृता हिरण्येन यदतिष्ठ ऋतावरि ।
अश्वः समुद्रो भूत्वाऽध्यस्कंदद्वशे त्वा ॥ १६ ॥
तद्भद्राः समगच्छन्त वशा देष्ट्र्यथो स्वधा ।
अथर्वा यत्र दीक्षितो बर्हिष्यास्त हिरण्यये ॥ १७ ॥

"(देवी वशा) दिव्य गौने (तं सोमं) उस सोमको (त्रिषु पात्रेषु आहरत्) तीन बर्तनोंसे उस यज्ञमें लाया जहां (हिरण्यये बर्हिषि) सुवर्णके आसनपर दीक्षित हो कर अथर्वा बैठा था ॥१२॥ सोमके साथ तथा सब पांववालों के साथ होकर तथा वह (कलिभिः गंधर्वैः) युद्धप्रिय वीर गंधर्वों के साथ (वशा) गौ समुद्रपर विजयके लिये चली ॥१३॥ वह वायुके साथ और सब (पतत्रिभिः) पंखवालोंके साथ होकर ऋचा और सामोंको धारण करती हुई (वशा) गौ समुद्रपर (प्रानृत्यत्) नाचने लगी ॥ १४ ॥ वह सूर्यके साथ और सब आंखवालोंके साथ होकर विविध ज्योतियोंको धारण करती हुई (भद्रा वशा)

कल्याण करनेवाली गौ (समुद्रं अख्यत्) समुद्रका निरीक्षण करने लगी ॥ १५ ॥ हे (ऋतावरि) सीधे आचारवाली गौ! जब तू (हिरण्येन) सुवर्णके आभूषणों से सुभूषित हो कर खडी हुई तब समुद्र घोडा बना और उसने अपने पीठपर तुझे उठाया ॥१६॥ वहां उस यज्ञमें ये तीनों कल्याण करनेवाली इकट्ठी मिलीं- १ (वशा) गौ, २ (देष्ट्री) आदेश करनेवाली और ३ (स्वधा) अपनी धारक शक्ति । वहां दीक्षित होकर अथर्वा सुवर्णमय आसनपर यज्ञके मध्यमें बैठता है ॥ १७ ॥ "

पूर्वोक्त प्रकार आलंकारिक कथाके रूपमें इन मंत्रोंका भावार्थ अब लिखते हैं जिससे इन मंत्रोंमें कही बात पाठकोंके ध्यानमें अतिशीघ्र आजायगी—

" यज्ञमें अथर्ववेद जाननेवाला ऋत्विज होता है वह गौके दूध के साथ सोमरस को तीन बर्तनों में रखकर ले आता है और सबको पिलाता है। ऐसे याजकों के साथ और सोम आदि वनौषधियां साथ लेकर गंधर्व वीर अपने सब सैनिकोंको संग लेकर विजय करनेके लिये समुद्र परसे चले, उनके साथ गौवें भी बहुत सी थीं ॥ जिन नौकाओं में बैठकर यह गंधर्व सेना शत्रुपर हमला करनेके लिये चली थी उन नौकाओं को वायुके द्वारा चलने वाले पंखोंसे चलाया जाता था। इसी नौकामें ब्राह्मण लोग यज्ञ करते थे, ऋचाओं को बोलते थे और साम-गायन भी करते थे, वहां गौएं तो आनंदसे नाचती थी ॥ गौओंको साथ रखते हुए नौकाओं में बैठे हुए सब लोगोंने सूर्य प्रकाशके उजाले के साथ अपने आंखोंसे ही संपूर्ण समुद्रको तथा आसपासके सब दृश्यको देखा ॥ इस समय गौवें सुवर्णके भूषणों से सजी हुई थीं, मानो समुद्रका ही घोडा बनाकर उस घोडेकी

पीठपर सब गौवें सवार होकर चली थीं ॥ वहां जो यज्ञ किया उसमें अथर्व वेदका ज्ञानी दीक्षित होकर यज्ञ करता था, इस यज्ञमें तीनोंका बडा संगठन हुआ था = (वशा) गौका पालन करने वाले वैश्य, (देष्ट्री) आदेश देनेवाले अर्थात् हुकुमत करनेवाले क्षत्रियवीर, तथा (स्वधा) अपनी आत्मिक शक्तिका धारण करने वाले ब्राह्मण ॥ ”

पाठक यदि पूर्वोक्त शब्दार्थको इस भावार्थके साथ साथ पढेंगे तो उनको मंत्रोंका आशय शीघ्रही समझेगा। हमारे प्रचलित गोरक्षा विषय के साथ इन मंत्रोंके आशयका बहुत कुछ संबंध है। वीर लोग भूमिपर युद्ध करनेके लिये जिस समय जावें उस समय दूध पीने के लिये गौवें साथ रखें यह बात पूर्व स्थलमें बता दी है। यहां यह बात बतानी है कि समुद्रमें नौका द्वारा भी देशदेशांतरोंमें विजय प्राप्त करने या अन्य काम काज के लिये जाना हो तो साथ गावोंको ले जावें, उनके लिये पर्याप्त घास साथ रखा जावे। तथा साथ याजक ब्राह्मण, गोपालक तथा व्योपार करनेवाले वैश्य रहें और इस प्रकार त्रैवर्णिक अपना संगठन करते हुए देश देशांतरमें संचार करें और अपना यश जगत् में फैला दें।

इसमें समुद्रका घोडा बनानेकी कल्पना है। नौका से इधर उधर आने जाने वाले समुद्रका ही घोडा बनाते हैं यह बात स्पष्ट ही है। इन मंत्रोंमें यज्ञ द्वारा त्रैवर्णिकोंका संगठन करनेकी कल्पना विशेष महत्त्वपूर्ण है। यहां ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य इन शब्दोंको न लिखते हुए उनके कर्मोंको लिखा है। ब्राह्मण स्वाहास्वधा आदिका उच्चारण करते हुए हव्य कव्य करते रहते हैं, क्षत्रिय वीर आदेश देते हैं, हुकुमत करते हैं और वैश्य गौका पालन, कृषि और

व्योपार करते हैं। ये तीनों व्यवसाय यज्ञसे संगठित हों, अर्थात् ये तीनों व्यवहार करनेवाले लोग परस्पर सहकार्य करते हुए उन्नति को प्राप्त हों यह उक्त मंत्रोंका आशय है। गो रक्षा करते हुए अपनी उन्नति करनेका महत्त्व पूर्ण कार्य यही है। ये सब मंत्र गोमेध सूक्तके हैं, इससे पाठक जान सकते हैं कि गोमेध का तात्पर्य वास्तवमें क्या है और आज कल कैसा समझा जाता है।

सबकी माता गौ।

पूर्वोक्त वर्णनसे पाठकों के मन में यह बात आगई होगी कि ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य आदिकों के संपूर्ण हलचलोंका केन्द्र गौ ही था। सब लोग गौ का ही मान करते थे। ब्राह्मण लोग यज्ञ में गौका सत्कार करते थे, क्षत्रिय लोग युद्धादि कों के अंदर भी अपने साथ गौओंको रखते और पालते थे, वैश्य तो पशुपालन करते ही थे और खेतीद्वारा उनको पुष्ट करते थे। जिस प्रकार अपनी माता सबको पूजनीय होती है उसी प्रकार गौमाता भी सबको पूजनीय हो थी इसी का स्पष्ट बोध करने के लिये निम्न लिखित मंत्रमें कहा है—

वशा माता राजन्यस्य वशा माता स्वधे तव।
वशाया यज्ञ आयुधं ततश्चित्तमजायत॥ १८॥

"(वशा) गौ क्षत्रिय की माता है, हे (स्वधे) आत्मिक शक्ति वाले! तेरी भी माता यह गौ है। यज्ञ मानो गौका ही एक शस्त्र है, इसीसे जनतामें चेतना हुई है।"

क्षत्रिय लोगोंकी माता गौ है, इस लिये क्षत्रियोंको भी यह गौ पूजनीय है, फिर वे इस मातृवत् पूजनीय गौका वध कैसा कर सकते हैं और अपनी ही माता का वध करके उसके मांसका

सेवन कैसा कर सकते हैं ! आत्म शक्तिका धारण करने वाली स्वधावाली ब्राह्मण जाती की भी माता गौ ही है। इसलिये ब्राह्मणों को भी गौ मातृवत् पूज्य है इस कारण ब्राह्मण भी गोवध कर नहीं सकते और नाही गोमांस खा सकते हैं। कृषि गोरक्षा करने वाले वैश्य तो स्वकर्तव्य से ही गोरक्षक हैं, वे तो कभी गोवध कर नहीं सकते। अर्थात् इस प्रकार त्रैवर्णिक आर्य गौको माता मानते हैं, इसलिये इनसे गोवध होना सर्वथा असंभव है।

कई लोग यहां शंका करेंगे कि इस सूक्तके मंत्रों में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्यों का उल्लेख करके उनकी माता गौ है ऐसा कहा है, परंतु शूद्र का उल्लेख इस में नहीं है। इस लिये गौ शूद्र की माता नहीं है तो क्या शूद्र गौका मांस खा सकता है? इस विषयमें विस्तारपूर्वक कहनेके लिये यहां स्थान नहीं है, परंतु संक्षेपसे इतना कहना आवश्यक है कि इस समय में भी गाय बैल आदि के मृत शरीरके मांस को खानेवाली जातियां अंत्यजों में हैं। इसी लिये उनको "वृष-ल" अर्थात् "बैलके शरीर को काटने वाली जाती" कहा जाता है। वृषल शब्द इसी जातीका वाचक है, परंतु पश्चात् यह शब्द "धर्म हीन" का वाचक माना गया और सब धर्महीन शूद्रों के लिये बर्ता जाने लगा। वास्तवमें मृत गौ अथवा मृत बैल के शरीर को काटकर उस मुर्देका मांस खानेवाले अंत्यज अथवा पंचमों का वाचक यह "वृष-ल" शब्द है। जो लोग इस प्रकारके मांसभक्षणको त्याग देते थे और त्रैवर्णिक द्विजों के साथ रहना पसंद करते थे उनकी गिनती सच्छूद्रोंमें होती थी और वे गोरक्षक बन कर त्रैवर्णिक आर्योंके सत्संगमें संमिलित होते थे। परंतु जिन्होंने गोमांसभक्षण नहीं, छोडा, वे इस समय तक बहिष्कृत रहे हैं। सच्छूद्र और असच्छूद्र में यह भेद है। इस लिये आर्योंके चातुर्वर्ण्य में जो संमिलित हुए

वे चतुर्थ वर्णवाले शूद्र भी त्रैवर्णिक आर्योंके समान गोरक्षक ही हुए थे और इस समय तक वैसे ही गोरक्षक हैं। परंतु जिन्होंने मृत गौमांसभक्षण नहीं छोडा, वे इस समय तक अंत्यज बहिष्कृत ही रहे हैं। पाठक इससे जान सकते हैं कि वैदिक धर्म में गोरक्षा के विषयमें कितनी विशेष तीव्र भावना है और यह कितनी प्राचीन कालसे चली आयी है।

इस मंत्रमें " वशा गौका आयुध यज्ञ है, " ऐसा कहा है॥ इससे भी सिद्ध होता है कि यज्ञ का उपयोग करने वाली गौ है " शूर का यह आयुध है। " ऐसा कहने से उस आयुध के लिये शूरका वध करना चाहिये ऐसा कोई मानता नहीं, क्यों कि वैसा मानना अयोग्य है। आयुध का उपयोग शूरवीर करते हैं। इसी प्रकार यज्ञरूपी आयुधका उपयोग गौ करती है, यज्ञ में अपना दूध, घी आदि अर्पण करके देवोंतक पहुंचाती है। इस लिये यज्ञमें गोवध अभीष्ट नहीं है यह बात इस वचनसे भी स्पष्ट हो जाती है।

" यज्ञ से जनतामें चेतना उत्पन्न हुई " यह कथन मनन करने योग्य है। जनतामें राष्ट्रकर्तव्यों की जाग्रती यज्ञके कारण उत्पन्न हुई, जनतामें संगठन हुआ, जनताका एकीकरण हुआ, सब मिलजुलकर रहने लगे और सब लोग संघकी भलाई करनेमें तत्पर हुए यह यज्ञका कार्य इस मंत्र भागमें वर्णन किया है। यज्ञ का यही महत्त्व है। यज्ञसे बहुत लाभ होते हैं उन में यह एक है। यहां इस लेख में यज्ञ का महत्त्व बतानेके लिये हमारे पास स्थान नहीं है इसलिये यह विषय यहां ही छोड देते हैं और प्रस्तुत सूक्तके आगेके मंत्र देखते हैं—

ऊर्ध्वो बिन्दुरुदचरत् ब्रह्मणः ककुदादधि।
ततस्त्वं जज्ञिषे वशे ततो होताजायत॥ १९॥

आस्नस्ते गाथा अभवन्नुष्णिहाभ्यो बलं वशे।
पाजस्याज्जज्ञे यज्ञ स्तनेभ्यो रश्मयस्तव ॥ २० ॥
ईर्माभ्यामयनं जातं सक्थिभ्यां च वशे तव।
आन्त्रेभ्यो जज्ञिरे अत्रा उदरादधि वीरुधः ॥२१॥
यदुदरं वरुणस्यानु प्रविशथा वशे।
ततस्त्वा ब्रह्मोदह्वयत् स हि नेत्रमवेत्तव ॥२२॥

" ब्रह्मकी उच्च शक्तिसे एक बिंदु ऊपर चढा, उससे हे गौ! तू उत्पन्न हो गई है। उसके पश्चात् होता अर्थात् तुझे बुलाने वाला भी उत्पन्न हुआ ॥१९॥ तेरे मुख से गाथाएं उत्पन्न हुई और हे गौ! तेरे गले के स्थानसे बल हुआ। पेटके स्थानसे यज्ञ बना और स्तनोंसे किरण बने हैं ॥ २० ॥ आगेके पांवोंसे और पीछली जंघाओंसे (अयनं जातं) गति उत्पन्न हुई है, आंतोंसे भक्षक बने और उदर से वनस्पतियां उत्पन्न हो गई ॥२१॥ हे गौ! जब तूने वरुण के उदर में प्रवेश प्राप्त किया, तब वहां ब्रह्माने तुझे बुलाया और वही (तव नेत्रं) तेरा मार्गदर्शक हो गया॥२२॥"

इन चार मंत्रोंमें केवल गौका महत्त्व वर्णन किया है। ब्रह्मा के परम उच्च शक्ति से गौकी उत्पत्ति प्रथम मंत्रमें कही है। यहां गौ शब्दका श्लेष है। गौ शब्द का अर्थ गौभी है, और वाणी भी है वह यहां अपेक्षित है। ब्रह्म की तथा आत्मा की प्रेरणासे वाणी की उत्पत्ति होती है, इसलिये वाग्रूपी गौ ब्रह्मकी शक्तिसे जन्म लेती है। इसी प्रकार दुग्धरूपी जीवनरस देनेवाली गौ ब्रह्म की जीवनशक्ति अपने में लाती है और दुग्धद्वारा हमें अर्पण करती है। इत्यादि आशय यहां समझना योग्य है। गाथा आदि उत्पन्न होनेका वर्णन जो अगले मंत्रमें है वह भी वाग्रूपी गौसे ही समझना योग्य है, क्यों कि गद्यपद्य वाङ्मय वाणीके

स्तनोंसे ही निचोडा जाता है। गौ और वाणीका मिलाजुला वर्णन इन मंत्रों में है वह बता रहा है कि वाणीके समान यह गौभी अध्यात्मशक्तिसे युक्त है, इसलिये गौका महत्त्व विशेष है।

इन मंत्रोंकी कई बातें विशेषसंकेतसे किसी सूक्ष्म बातका वर्णन-कर रही हैं, परंतु वह बात विशेष विचार करनेपर भी हमारें समझमें अभी तक नहीं आई। यदि किसी पाठक के मनमें ये मंत्र विशेष खुल गये हों तो वह हमें बतावें। परन्तु इतनी बात सत्य है कि ये मंत्र गौकी श्रेष्ठता का वर्णन कर रहे हैं और उसका विशेष महत्त्व प्रदर्शित कर रहे हैं। इन मंत्रोंमें गोवध या गोमांसका हवन आदि बातें कुछ भी नहीं हैं। मातृवत् पूजनीय गौ है और उस में ब्रह्मसे जीवन शक्ति आकर रहती है। इस लिये सबको गौका योग्य आदर करना चाहिये यह इस वर्णन का तात्पर्य है। आगेके चार मंत्रों में भी इसी प्रकार गौका महत्त्व वर्णन किया है और ज्ञानी पुरुष ही गौका दान लेवे ऐसा सूचित किया है। ये मंत्र अब देखिये—

सर्वे गर्भादवेपन्त जायमानादसूस्वः।
ससूव हि तामाहुर्वशेति ब्रह्मभिः क्लृप्तः स ह्यस्या बंधुः ॥२३॥
युध एकः सं सृजति यो अस्या एक इद्वशी।
तरांसि यज्ञा अभवन् तरसां चक्षुरभवद्वशा ॥२४॥
वशा यज्ञं प्रत्यगृह्णाद् वशा सूर्यमधारयत्।
वशायामन्तरविशदोदनो ब्रह्मणा सह॥ २५॥
वशामेवाऽमृतमाहुर्वशां मृत्युमुपासते।
वशेदं सर्वमभवद् देवा मनुष्या असुरा पितर ऋषयः ॥२६॥
य एवं विद्यात्स वशां प्रतिगृह्णीयात्।
तथा हि यज्ञः सर्वपाद्दुहे दात्रेऽनपस्फुरन्॥ २७॥

तिस्रो जिह्वा वरुणस्यान्तर्दीद्यत्यासनि ।
तासां मध्ये या राजति सा वशा दुष्प्रतिग्रहा ॥२८॥

" जो (अ-सू-स्वः) जन्म नहीं देता उससे उत्पन्न होनेवाले गर्भ को देखकर सब (अवेपन्त) कांपने लगे। (स-सूव इति तां आहुः) उसने जन्म दिया ऐसा उसे वे कहते हैं (वशा इति) वही वशा गौ है। यह (ब्रह्मभिः क्लृप्तः) मंत्रोंसे समर्थ हुई है (स हि अस्याः बंधुः) वही उसका बंधु या संबंधी है॥ २३॥ (एकः युधः संसृजति) वह अकेला ही युद्ध करता है जो इस गौ को अकेला ही वश में रखनेवाला है। (यज्ञाः तरांसि अभवन्) यज्ञ वेगवान अर्थात् सर्वत्र विजयी हो गये और (वशा) वशा गौ ही सब (तरसां चक्षुः) हलचलोंका आंख बनी है॥ २४॥ (वशा यज्ञं प्रत्यगृह्णात्) गौ ने यज्ञका स्वीकार किया है; (वशा सूर्यं अधारयत्) गौ ने सूर्यका धारण किया है। (ब्रह्मणा सह) मंत्रों के साथ (ओदनः) चावल (वशायां अंतः अविशत्) वशा गौ के अंदर प्रविष्ट हुआ है॥ २५॥ (वशां अमृतं आहुः) गौ को अमृत कहते हैं तथा (वशां मृत्युं उपासते) गौ को मृत्यु समझकर भी उसकी उपासना करते हैं। देव, मनुष्य, असुर, पितर, ऋषि (इदं सर्वं वशा अभवत्) यह सब गौ ही बन गई है॥ २६॥ (यः एवं विद्यात्) जो यह जानता है वह (वशां प्रतिगृह्णीयात्) गोका दान लेवे। (तथा हि) इसी प्रकार (सर्वपात् यज्ञः) संपूर्ण यज्ञ (अनपस्फुरन्) अविरोधसे (दात्रे दुहे) दाताके लिये फलीभूत होता है॥ २७॥ वरुण के मुखमें चमकनेवाली तीन जिह्वाएं हैं। (तासां मध्ये या विराजति) उनके बीचमें जो प्रकाशती है वह (सा वशा) गोही है इसलिये यह गौ (दुष्प्रतिग्रहा) दान लेना कठिन है॥ २८॥

ये मंत्र कई कारणोंसे विशेष मनन करने योग्य हैं। यद्यपि इन मंत्रों में भी कई दुर्बोध स्थल हैं तथापि गोवध की जो मुख्य बात इस लेख में विचारणीय है उस विषयके सब विधान इन मंत्रों में स्पष्ट हैं। तेइस वे मंत्र में "असूसु और ससू" ये दो शब्द हैं। "अ-सूसु" का अर्थ है संतान उत्पन्न न करना अर्थात् वंध्या होना। और "स-सू" का अर्थ है संतान उत्पन्न करना। मनुष्यों में क्या और पशुओं में क्या स्त्रियों के दो भेद होते हैं। एक वंध्या स्त्री और दूसरी संतानोत्पत्ति में समर्थ। पाठक विशेष ध्यानसे यह मंत्र देखेंगे तो उनको पता लग जायगा कि इस में—

"ससूव हि तामाहुः वशेति"

यह मंत्रभाग है जिसका अर्थ "जो वशा है वह संतान उत्पन्न करने में समर्थ है" ऐसा होता है। जो लोग गोमेध में वंध्या वशा गौका वध करके उसकी मांसाहुतियोंसे हवन करने की कल्पना मानते हैं उनका तो यह मंत्र खंडन कर रहा है। क्यों कि इसमें "वशा ससूव" अर्थात् "प्रसूत होनेवाली वशा गौ" कहा है। क्या कभी वंध्या भी प्रसूत होती है। इसके पूर्व वशा गौके दूधका भी वर्णन आया है। वंध्या गौका दूध किसीने पिया है? ये सब प्रमाण सिद्ध कर रहे हैं कि गोमेध के इन दो सूक्तों में जो वशा शब्द आया है उसका अर्थ "वंध्या गौ" नहीं है। किसीको भी इस विषयमें शंका न हो इसलिये इस मंत्रने स्वयं वशा का अर्थ बताया कि (ससूव हि तां वशा इति आहुः) बच्चा पैदा करनेवाली गौका नाम ही वशा गौ है। अस्तु। इस प्रकार अपना ही अर्थ स्वयं प्रकट करनेके कारण इस विषयमें किसीको भी संदेह नहीं हो सकता। जो "असूसु" अर्थात् प्रजा उत्पन्न न करनेवाला है वह इसका (बंधुः) भाई अथवा संबंधी अर्थात् वह बैल है। ये

अर्थ देख कर कोई भी ऐसा न समझे कि गोमेध के सूक्तों में " वशा " का अर्थ " वंध्या " गौ है ।

जो बैल होता है वह (एकः युधः संसृजति) अकेलाही युद्ध करता रहता है । परिपुष्ट बैल युद्ध करते हैं यह बात सबने देखी ही होगी । यह बैल इस गौको (वशी) वश में रखनेवाला है । इस योग्य बैल का उत्तम गौसे संमेलन करना एक प्रकार का " यज्ञ " ही है । इस प्रकार गौसे बैल का संमेलन करना गोमेध का एक भाग है । इससे संतान उत्तम होती है और दूध भी उत्तम होता है । यह यज्ञ जब प्रथम शुरू हुए तब वे (यज्ञाः तरांसि अभवन्) वेगसे फैले, क्यों कि इन यज्ञोंसे जनता का लाभ होता था, इस लिये सब जनता का मन इन गोमेधोंकी ओर आकर्षित हुआ । परंतु (तरसां चक्षुः वशा अभवत्) वेगसे फैलनेवाले यज्ञों की आंख वशा गौ ही बन गई । अर्थात् इन सब वेगसे फैलनेवाले यज्ञोंका एकमात्र यही उद्देश्य था कि उत्तमसे उत्तम गौ उत्पन्न करना ।

गोमेध में गोदान होता है यह बात इससे पूर्व कई वार कही गयी है; अब यहां गौकी उत्तम संतान पैदा करना भी गोमेध का एक भाग बताया है । पाठक ही विचार करें कि ऐसे प्रसंगोंमें गौका वध करनेके लिये स्थानही कहां है । जो गोमेधमें गोवध की कल्पना करते हैं उनको गोमेध का वास्तविक तात्पर्य ही नहीं समझा यह बात यहां निश्चित रूपसे सिद्ध हो गई है ।

आगे २५ वे मंत्रमें कहा है कि उक्त प्रकार के यज्ञ का स्वीकार (वशा यज्ञं प्रत्यगृह्णात) वशा गौने किया है । अर्थात् उक्तप्रकारके यज्ञसे वशा गौ सब जगत्का धारण कर रही है यहां तक उसका फैलाव हुआ है कि वह गौ मानो (वशा सूर्यंअधारयत्) सूर्यको

धारण कर रही है। अर्थात् जो सूर्य काभी धारण करती है वह हम जैसे मनुष्योंका धारण करती है इस में क्या संदेह है? (ब्रह्मणा सह ओदनः) ब्रह्मके साथ अर्थात् प्रार्थना मंत्रके साथ अन्न वशा गौके शरीरमें जाता है। अर्थात् मंत्रोंसे परिशुद्ध अन्न वशा गौ खाती है और अपने पवित्र अमृतरूपी दूधसे मनुष्य मात्रका धारण करती है। यहां यज्ञशेष प्रसाद रूपी अन्न गौ खाती है ऐसा कहा है। यज्ञशेष अन्न यजमान ऋत्विज तथा अन्य सज्जन खाते हैं, उसका थोडा अवशेष गौको भी दिया जाता है। यहां यज्ञशेष अन्न खानेका अधिकार गौका भी है यह बात विशेष महत्त्व रखती है, क्यों कि इससे गौका अधिकार यजमान और ऋत्विजों के बराबरीका हो जाता है। कई अन्य प्रमाणोंसे भी यह बात सिद्ध की जा सकती है, परंतु यहां तो यह बडा ही परिपुष्ट प्रमाण मिला है। मंत्र के द्वारा पुनीत हुआ अन्न यज्ञमें डाला जाता है, यज्ञशेष अन्न प्रसाद रूप मान कर यजमान, ऋत्विज आदि भक्षण करते हैं, इसी प्रकार उसका अंश गौको दिया जाता है। जहां गौका अधिकार ऋत्विजों के जितना माना है वहां उसी गौका वध करके उसके मांस का हवन करनेकी कल्पना संभवनीय भी कैसी मानी जा सकती है, इसका पाठक ही विचार करें और ऐसी अशुभ कल्पनासे पाठक सदा दूर ही रहें।

आगे छब्बीसवे मंत्रमें (वशां अमृतं आहुः) वशा गौ को अमृत कहते हैं, ऐसा कहा है वह बडा मनन करने योग्य है। वशा गौ अमृत भी है (वशां मृत्युं उपासते) और गौ मृत्यु भी है। यह अमृत किस समय होती है और मृत्यु किस समय होती है यह विचारणीय बात है। यह वशा गौ पूर्वोक्त प्रकार यज्ञमें सत्कार करनेसे अमृत रूप होकर कृपा करती है और उससे क्रूरताका संबंध करनेसे वही मृत्यु रूप होकर क्रूरता का व्यव-

हार करनेवालेका नाश करती है। इस प्रकार यह एक ही गौ अमरत्व देनेवाली और मृत्यु देनेवाली होती है। जिस समय घर घरमें गौ माताकी पूजा होती थी उस समय इस देश के लोग बडे दीर्घायु होते थे, परंतु अब घर घरमें गौ की पालना बंद होगई है और चारों ओर गौका घातपात शुरू है, इस लिये वही गौ भारतवर्षी लोगों के लिये मृत्युरूप हो रही है। पाठक इस बात का प्रत्यक्ष अनुभव देखें और अपना कर्तव्य जानें। देव, पितर, मनुष्य, असुर, राक्षस, ऋषि सब के लिये गौसे लाभ प्राप्त होता है, सब ही उसके दूधसे पुष्ट होते हैं, इसलिये मंत्रमें कहा है कि (वशा इदं सर्वं अभवत्) वशा गौ ही इस सब मनुष्य देव आदिकों के रूपमें परिणत हुई है। अर्थात् गौके दूध पीनेसे ही इनकी पुष्टि होती है, इस लिये सबको ही यह गौ अपनी माता मानना चाहिये।

आगे सताइसवे मंत्रमें कहा है कि (यः एवं विद्यात् स वशां प्रति गृह्णीयात्) जो ये सब बातें जानता है वही वशा गौका दान लेवे; जिसको यह ज्ञान नहीं है वह गौका दान न लेवे। जो ऐसी गौ उत्तम ज्ञानी ब्राह्मण को दान देता है उस दानीको वह " दान यज्ञ" सब रीतिसे फलीभूत होता है। उसका यश फैलता है और अनेक प्रकार से उसका लाभ होता है।

वरुण की तीन जिह्वाएँ।

अठाईस वे मंत्र का विधान (वशा दुष्प्रतिग्रहा) " गौ का दान लेना अत्यंत कठीन है, " हरएक मनुष्य गौका दान नहीं ले सकता, विशेष ज्ञानी अधिकारी पुरुष ही ले सकता है, इत्यादि आशय व्यक्त कर रहा है। यह विधान सुसंगत ही है क्यों कि गौ दान लेनेके अधिकारीके लक्षण इस से पूर्व बताये गये हैं,

उनसे भी यही सिद्ध होता है। इस मंत्रमें वरुण के मुख का वर्णन है, वरुण शासक देवता है। वरुण के पाश आदि वेद मंत्रोंमें अनेकवार आते हैं। अपराध का योग्य दण्ड देना इसके आधीन है, कोई अपराधी इसके दण्डसे विना सजा पाये छूट नहीं सकता। ऐसे धर्मशासक देवताके मुखकी मध्य जिह्वा गौ है ऐसा कहने मात्रसे उस गौ का रक्षण करना चाहिये यह बात निःसंदेह सिद्ध होगी।

पुलिस कमिशनर की गौ का वध करने की अपेक्षा भी वरुणदेव की जिह्वा रूपी गौका काटना अधिक भयप्रद निःसंदेह है। वरुणदेव के मुख में तीन जिह्वाएं हैं -- (१) एकवाणी, (२) दूसरी गाय और (३) तीसरी भूमि। इन तीनों के लिये वेदमें "गौ" यह एकही नाम है और तीनोंका संबंध जिह्वासे ही है। वाणी तो जिह्वासे संबंधित ही है, "जबान" ही उसको कहते हैं, यह वरुण की पहिली जिह्वा है। अमृतरूपी दूध देनेवाली जिसके अमृत रस का स्वाद जिह्वा ले सकती है यह वरुण की बीच की जिह्वा गौ ही है, जो गौका दूध पीते हैं वे इसका स्वाद जानते ही हैं। वरुण की तीसरी जिह्वा भूमि है, यह भी षड्रस अन्न देती है जो जिह्वासे खाया जाता है। इस प्रकार वरुण की ये तीन जिह्वाएं हैं जिनका नाम "गौ" है और जिनके रसोंका संबंध जिह्वाओंके साथ ही है। ये तीनों जिह्वाएं सुरक्षित रखनी चाहिये। इनके सुरक्षित रखनेसे लाभ और अरक्षित रखने से हानि होती है। देखिये-वाणी का संयम नहीं किया, जिस प्रकार चाहे शब्द प्रयोग शुरू किया, तो जगतमें झगडे पैदा होते हैं और अनर्थ होते हैं। भूमि का संरक्षण नहीं किया तो देश और राष्ट्रकी परतंत्रता होकर विविध कष्ट होते हैं, उसका अनुभव पराधीन देशवासी जनोंको है। गाय का रक्षण नहीं

किया तो अशक्तता अल्पायुता आदि होना स्वाभाविक ही है । इससे वरुण की ये तीन जिह्वाएं हैं,इनको सुरक्षित रखना चाहिये, इस वेदके कथन का महत्त्व ध्यानमें आ सकता है । इनके बीच में (तासां मध्ये वशा) जो गौ रूपी मध्य जिह्वा है उसका महत्त्व विशेषही है । वाणी रूपी वरुणकी जिह्वा तो प्रायः हरएक मनुष्यको मिली है, थोडे ही गूंगे हैं कि जो इसका दुरुपयोग करनेके कारण इसके उपयोग से वंचित रखे गये हैं। भूमिरूपी वरुण की जिह्वा कुच्छ थोडे मनुष्योंके अधिकार में है, अर्थात् हरएक मनुष्य के मलकियत की भूमि नहीं है, अर्थात् वाणी रूपी वरुण की जिह्वा की अपेक्षा भूमिरूपी वरुण जिह्वा थोडे मनुष्यों को प्राप्त हुई है । परंतु गाय रूपी जो वरुण की जिह्वा है वह तो उनसे भी थोडे लोगोंके पास रहती है और उसका दान लेनेका अधिकार तो अति अल्प ब्रह्मनिष्ठ आत्म ज्ञानीयों को ही केवल है । यह तीन गौओंकी अवस्था पाठक देखें और इस मंत्रका आशय समझें ।

गाय तो बिकनी भी नहीं चाहिये । आर्य लोग कभी गाय की विक्री नहीं करते थे । इस समय ब्राह्मणोंने ही इस प्रथा की रक्षा इस समय तक की है । हमें अन्य स्थानोंका पता नहीं, परंतु महाराष्ट्रके ब्राह्मण इस समय भी गौका बेचना पाप समझते हैं और प्रायः गोविक्रय नहीं करते । यह वैदिक काल की प्रथा इस समय थोडीसी अवशिष्ट है ।

गौका वीर्य ।

चतुर्धा रेतो अभवद्वशायाः ।
आपस्तुरीयममृतं तुरीयं यज्ञस्तुरीयं पशवस्तुरीयम् ॥ २९ ॥

वशा द्यौर्वशा पृथिवी वशा विष्णुः प्रजापतिः ।
वशाया दुग्धमपिबन्त्साध्या वसवश्च ये ॥३०॥
वशाया दुग्धं पीत्वा साध्या वसवश्च ये ।
ते वै ब्रध्नस्य विष्टपि पयो अस्या उपासते ॥३१॥

"(वशाया रेतः) वशा गौ का वीर्य (चतुर्धा अभवत्) चार प्रकारसे फैला है । (आपः तुरीयं) जल रूपसे एक भाग, (अमृतं तुरीयं) दूध रूपसे एक भाग, (यज्ञः तुरीयं) यज्ञ रूपसे एक भाग और (पशवः तुरीयं) पशुरूपसे एक भाग ॥२९॥ यह वशा गौ द्युलोक, पृथ्वी लोक, विष्णु और प्रजापति परमात्मा रूप है । साध्य देव और वसुदेव वशा गौका दूध पीते हैं ॥३०॥ साध्य और वसुदेव यहां गौका ही दूध पीते हैं इस लिये (ब्रध्नस्य विष्टपि) स्वर्गमें भी उनको गौका दूध मिलता है ॥ ३१ ॥ "

वशा गौके चार रूप हैं द्युलोक, पृथ्वीलोक, विष्णु और प्रजापति । इन चारोंके साथ गौके चार वीर्य संबंधित हैं । अर्थात् (१) द्युलोक से सूर्यकी प्रेरणा से वृष्टि होकर जलकी प्राप्ति होती है, (२) पृथ्वी लोक में सोमादि वनस्पतियों का रस, अन्न और दुग्ध आदिकी प्राप्ति होती है, (३) विष्णु अर्थात् व्यापक परमात्मा की उपासना यज्ञ में घृताहुतीयोंसे की जाती है और (४) पशुओंसे प्रजापति की प्रजाका पालन होता है । यह विभाग गौके चार वीर्योंका है । द्यु, सूर्य, मेघ, भूमि, परमात्मा, आत्मा तथा इनकी शक्तियां आदिका नाम "गौ" है इस लिये यह कथन श्लेषालंकारसे ठीक है । इस से गौका महत्त्व ही व्यक्त होता है ।

साध्य और वसुदेव यहां अपना अनुष्ठान करते हैं और केवल गौके दूधपर रहते हैं अन्य कुछ नहीं खाते । यह इनका नियम-

इनके लिये ऐसा फलीभूत हुआ है कि उक्त नियम के कारण स्वर्ग में भी इनको दूध मिलने लगा । अर्थात् जो जो मनुष्य नियमपूर्वक प्रतिदिन गौका दूध पीयेंगे उनको स्वर्गमें भी नियमपूर्वक दूध मिलता रहेगा । पाठक इस प्रलोभनमें गोरक्षा का महत्त्वही देखें । इस प्रकार के अर्थवाद के वाक्य शब्दार्थ द्वारा व्यक्त होने वाले अर्थ बताने के लिये नहीं होते प्रत्युत विशेष गूढ अर्थका भाव मनमें प्रकाशित करनेके लिये होते हैं । यहां गोरक्षा का महत्त्व इन वाक्यों द्वारा कहा है । " जो लोग प्रतिदिन गाय का दूध नियमपूर्वक पीनेका निश्चय करेंगे और उसका पालन बिला नागा करेंगे, उनको स्वर्ग में भी नियमपूर्वक कामधेनु का दूध मिलता रहेगा। " पाठक सोच सकते हैं कि यदि यह नियम लोग करेंगे तो गोरक्षा स्वयं हो जायगी । स्वास्थ्य रक्षा के साथ इस नियमका अत्यंत महत्त्व है। वेदने यह साधारण सी बात कही है परंतु इसका परिणाम बहुत ही व्यापक है, पाठक इसका बहुत विचार करें ।

गो दान का फल ।

सोममेनामेके दुहे घृतमेक उपासते ।
य एवं विदुषे वशां ददुस्ते गतास्त्रिदिवं दिवः ॥ ३२ ॥

ब्राह्मणेभ्यो वशां दत्त्वा सर्वाँल्लोकान्त्समश्नुते ।
ऋतं ह्यस्यामार्पितमपि ब्रह्माऽथो तपः ॥ ३३ ॥

वशां देवा उपजीवन्ति वशां मनुष्या उत ।
वशेदं सर्वमभवद्यावत्सूर्यो विपश्यति ॥ ३४ ॥

अथर्व० १०।१० ।

"कई लोग सोम के लिये इस गौसे दूध निकालते हैं,; कई लोग इस गौसे प्राप्त होनेवाले घी के लिये इसके पास जाते हैं। उत्तम विद्वान ब्राह्मणको जो लोग गौका दान करते हैं वे स्वर्ग को जाते हैं॥ ३२॥ जो लोग ब्राह्मणों को गौका दान करते हैं वे सब लोकों को प्राप्त करते हैं क्यों कि इस गौमें ऋत, ब्रह्म और तप रहता है॥ ३३॥"

गौ से देव जीवित रहते हैं और मनुष्य भी गौ से हि जीवित रहते हैं। गौ ही संपूर्ण जगत्रूप बनी है, जहां तक सूर्यप्रकाश पहुंचता है वह सब मानो गौ ही है॥ ३४॥

यज्ञकर्ता लोग सोमरस के अंदर दूध का मिश्रण करनेके लिये गाय का दोहन करते हैं, कोई ऋत्विज लोग हवन को घी प्राप्त करनेके लिये गौका दोहन करते हैं। इस प्रकार गौ से यज्ञ होता है।

ये सब पूर्वोक्त बातें जो विद्वान जानता है उस ज्ञानी पुरुष को हि गौ दान देनी योग्य है। जो लोग ऐसे सत्पुरुष को गौका दान करते हैं वे स्वर्ग के अधिकारी होते हैं। विद्वान ज्ञानी ब्राह्मणोंको गौका दान करनेसे सब प्रकार की श्रेष्ठ गति प्राप्त होती है। गौके अंदर (ऋत) सत्य, (ब्रह्म) अन्न और तप रहता है, इसलिये गौका महत्त्व अधिक है। इस गौका हरएक को उपयोग है।

देव क्या और मनुष्य क्या गौके दुग्धादिसे ही जीवित रहते हैं, पुष्ट होते हैं और बढते भी हैं। इस दृष्टीसे देखा जाय तो इस गौ का ही यह सब रूप है ऐसा प्रतीत होगा, यह सब विश्व, सब जगत् मानो गौका ही व्यक्त रूप है। जब मनुष्य गौके दूध, दही, छास, मक्खन, घी आदिसे पुष्ट होते हैं तब संपूर्ण मानवी जगत्

गौका ही रूप मानना योग्य है। मानो गौ ही मानवीरूप में परिणत होती है ।

इस प्रकार गौका महत्त्व सब लोग जानें और गोरक्षा, गोवृद्धि और गोपुष्टी करके अपना और देशका उद्धार करें ।

(यहां गोमेधका द्वितीय सूक्त समाप्त हुआ।)

वेदमें जो गोमेध के दो सूक्त हैं उनका अर्थ और स्पष्टीकरण यह है। पाठक इन मंत्रोंके मननसे देखें कि इन मंत्रोंमें गोवध और गोमांसहवन के लिये क्या प्रमाण है? इसके लिये एक भी प्रमाण नहीं है, परंतु गोरक्षा, गोवृद्धि, गोपुष्टि आदिके लिये अनेक रीतिसे कहा है, गौका महत्त्व तो काव्यालंकारोंसे अनेक प्रकारसे कहा है। इसलिये गोमेधमें गौका वध मानना प्रमाणहीन होनेके कारण अयोग्य है ।

वेदमें "गौ"के विषयमें जो मंत्र आगये हैं, उनकी संगति इससे पूर्व बतायी है। इन सब का विचार करनेसे यह बात निश्चित होती है कि वेद मंत्रोंमें गौका वध करके उसका हवन करने तथा गोमांस भक्षण करनेके लिये कोई प्रमाण नहीं है। इस विषयमें मांस पक्षी लोगोंकी जो कल्पना है वह निर्मूल है।

"गौरक्षा" ही आर्योंका श्रेष्ठ धर्म है। गोरक्षा करनेसे ही सबकी उन्नति हो सकती है ।

" गां मा हिंसीः । "

वा. यजु. १३ । ४२

विषय सूची।

गोमेध पूर्वार्ध
समाप्त ।

केन उपनिषद् ।

इस पुस्तकमें निम्न लिखित विषयोंका विचार हुआ है—

१ केन उपनिषद् का मनन,
२ उपनिषद् ज्ञान का महत्त्व,
३ उपनिषद् का अर्थ,
४ सांप्रदायिक झगडे,
५ " केन " शब्द का महत्त्व,
६ वेदान्त,
७ उपनिषदोंमें ज्ञानका विकास,
८ अग्नि शब्दका भाव,
९ उपनिषद् के अंग,
१० शांतिमंत्रोंका विचार,
११ तीनों शांति मंत्रों मे तत्त्व-ज्ञान,
१२ तीन शांतियोंका भाव,
१३ ईश और केन उपनिषद्,
१४ " यक्ष " कौन है?,
१५ हैमवती उमा,
१६ पार्वती कौन है?
१७ पर्वत, पार्वती, रुद्र, सप्त ऋषि और अरुंधती,
१८ इंद्र कौन है?
१९ उपनिषद् का अर्थ और व्याख्या,
२० अथर्ववेदीय केन सूक्तका अर्थ और व्याख्या,
२१ व्यष्टि, समष्टी और परमेष्टी
२२ त्रिलोकी,
२३ अथर्वाका सिर,
२४ ब्रह्मज्ञानी की आयुष्य मर्यादा,
२५ ब्रह्मनगरी,अयोध्या,आठचक्र,
२६ आत्मवान् यक्ष,
२७ अपनी राजधानीमें ब्रह्मका प्रवेश,
२८ देवी भागवत में देवीकी कथा,
२९ वेदका वागांभृणी सूक्त, इंद्र सूक्त, वैकुंठ सूक्त, अथर्व सूक्त
३० शाक्तमत, देव और देवता की एकता,
३१ वैदिक ज्ञान की श्रेष्ठता।

इतने विषय इस पुस्तक में आगये हैं, इस लिये उपनिषदों का विचार करने वालों के लिये यह पुस्तक अवश्य पढने योग्य है।

मूल्य १।) रु. डाकव्यय≡) है।

मंत्री-स्वाध्याय मंडल, औंध. (जि. सातारा)

संस्कृत पाठ माला।

बारह पुस्तकोंका मूल्य म. आ. से ३) और वी. पी. से ४) प्रति भाग का मूल्य ।-) पांच आने और डा. व्य. -) एक आना। अत्यंत सुगम रीतिसे संस्कृत भाषाका अध्ययन करनेकी अपूर्व पद्धति ॥

इस पद्धतिकी विशेषता यह है-

१ प्रथम द्वितीय और तृतीय भाग।

इन भागोंमें संस्कृत के साथ साधारण परिचय करा दिया गया है॥

२ चतुर्थ भाग।

इस चतुर्थ भागमें संधि विचार बताया है।

३ पंचम और षष्ठ भाग।

इन दो भागोंमें संस्कृतके साथ विशेष परिचय कराया गया है॥

४ सप्तम से दशम भाग।

इन चार भागोंमें पुल्लिंग, स्त्रीलिंग और नपुंसकलिंगी नामोंके रूप बनानेकी विधी बताई है।

५ एकादश भाग।

इस भागमें "सर्वनाम" के रूप बताये हैं।

६ द्वादश भाग।

इस भागमें समासोंका विचार किया है।

७ तेरहसे अठारहवें भाग तकके ६ भाग।

इन छः भागोंमें क्रियापद विचार की पाठविधि बताई है।

८ उन्नीससे चौवीसवे भागतकके ६ भाग।

इन छः भागोंमें वेदके साथ परिचय कराया है।

अर्थात् जो लोग इस पद्धतिसे अध्ययन करेंगे उन को अल्प परिश्रमसे बडा लाभ हो सकता है।



अथर्व वेद।

१ अथर्ववेद यह मनःशक्तिके विकास का वेद है इसमें मानसिक शक्ति विकासके विविध उपाय कहे हैं।

२ अथर्ववेद यह अनुष्ठान करनेका वेद है, केवल इसका पाठ करने और अनुष्ठान न करनेसे बहुत लाभ नहीं हो सकता।

३ अथर्ववेदके अनुष्ठान इतने सुगम हैं कि हरएक अवस्थामें रहनेवाला मनुष्य, प्रतिदिन थोडा समय इस कार्यके लिये अलग निकालकर, ये अनुष्ठान कर सकता है।

४ आत्मा बुद्धि मन और चित्त इन अंतःशक्तियों की उन्नति जो करना चाहते हैं वे इस वेदका मनन प्रतिदिन करें। निःसंदेह लाभ होगा।

५ हरएक सूक्तका मनन करनेसे उसका अनुष्ठान करनेकी रीति सहजहीमें ज्ञात हो सकती है। तथापि इस " अथर्व वेदके सुबोध भाष्य " में वह असंदिग्ध रीतिसे बतायी है, जिससे पाठक लाभ उठा सकते हैं।

६ वैदिक धर्म यदि आचार में लाना चाहते हैं तो आप अथर्ववेदका अध्ययन कीजिये। इससे आपका अनेक रीतिसे लाभ होगा।

७ इसमें आरोग्यवर्धन के ऐसे सुगम उपाय बताये हैं कि जो सर्व साधारणको भी प्राप्त हो सकते हैं। इससे आप विना व्यय आरोग्य प्राप्त कर सकते हैं।

८ सामाजिक और राष्ट्रीय उन्नतिके विविध उपाय आप इससे जान सकते हैं। अथर्ववेदका इस विषयका उपदेश आजभी लाभ-दायक है। पाठक इसका अनुभव लें।

९ यह " सुबोध भाष्य " इतना सुबोध है कि इस को साधारण भाषा पढनेवाला भी उत्तम रीतिसे समझ सकता है और वैदिक आदेश जान सकता है।

१० अपूर्व अलंकार, अद्भुत रूपक, आश्चर्यकारक उपमाएँ और सरल शब्दों द्वारा गंभीर उपदेश देनेकी वैदिक शैली यदि आप देखना चाहते हैं तो आप इस " अथर्ववेद-सुबोध भाष्य " को पढिये।

११ एक वार आप यह प्रथमकांड पढेंगे तो फिर आपको इस विषयमें अधिक कहने की आवश्यकता नहीं रहेगी।

निवेदक

श्रीपाद दामोदर सातवळेकर

स्वाध्याय मंडल, औंध (जि. सातारा)

आसनों का चित्रपट !

—o—

आसनों का व्यायाम लेनेसे सहस्रों मनुष्योंका स्वास्थ्य सुधर चुका है, इस लिये आसन व्यायामसे स्वास्थ्य लाभ होनेके विषय में अब किसी को संदेह ही नहीं रहा है। अतः लोग सब आसनों के एक ही कागज पर छपे हुए चित्रपट बहुत दिनोंसे मांग रहे थे। वैसे चित्रपट अब मुद्रित किये हैं। २०—३० इंच कागज पर सब आसन दिखाई दिये हैं। यह चित्रपट कमरे में दिवार पर लगाकर उसके चित्रोंको देख कर आसन करनेकी बहुत सुविधा अब हो गई है

मूल्य केवल =) तीन आने और डाक व्यय –) एक आना है।

स्वाध्याय मंडल
औंध (जि. सातारा)

केन उपनिषद् ।

इस पुस्तकमें निम्न लिखित विषयोंका विचार हुआ है—

1. केन उपनिषद् का मनन,
2. उपनिषद् ज्ञान का महत्त्व,
3. उपनिषद् का अर्थ,
4. सांप्रदायिक झगडे,
5. " केन " शब्द का महत्त्व,
6. वेदान्त,
7. उपनिषदोंमें ज्ञानका विकास,
8. अग्नि शब्दका भाव,
9. उपनिषद् के अंग,
10. शांतिमंत्रोंका विचार,
11. तीनों शांति मंत्रों मे तत्त्व-ज्ञान,
12. तीन शांतियोंका भाव,
13. ईश और केन उपनिषद्,
14. " यक्ष " कौन है?,
15. हैमवती उमा,
16. पार्वती कौन है?
17. पर्वत, पार्वती, रुद्र, सप्त ऋषि और अरुंधती,
18. इंद्र कौन है?
19. उपनिषद् का अर्थ और व्याख्या,
20. अथर्ववेदीय केन सूक्तका अर्थ और व्याख्या,
21. व्यष्टि, समष्टी और परमेष्ठी
22. त्रिलोकी,
23. अथर्वाका सिर,
24. ब्रह्मज्ञानी की आयुष्य मर्यादा,
25. ब्रह्मनगरी, अयोध्या, आठचक्र,
26. आत्मवान् यक्ष,
27. अपनी राजधानीमें ब्रह्मका प्रवेश,
28. देवी भागवत में देवीकी कथा,
29. वेदका वागांभृणी सूक्त, इंद्र सूक्त, वैकुंठ सूक्त, अथर्व सूक्त
30. शाक्तमत, देव और देवता की एकता,
31. वैदिक ज्ञान की श्रेष्ठता ।

इतने विषय इस पुस्तक में आगये हैं, इस लिये उपनिषदों का विचार करने वालों के लिये यह पुस्तक अवश्य पढने योग्य है ।

मूल्य १।) रु. डाकव्यय=) है ।

मंत्री-स्वाध्याय मंडल, औंध. (जि. सातारा)

महाभारत।

(हिंदी— भाषा — भाष्य— समेत)

तैयार हैं।

(१) आदिपर्व। पृष्ठ संख्या ११२५ मूल्य म. आ. से ६) रु.

(२) सभापर्व । पृष्ठ संख्या ३५६ मूल्य म. आ. से२) रु.

(३) वनपर्व । पृष्ठ संख्या १५३८ मूल्य म. आ. से ८) रु.

(४) विराटपर्व । पृष्ठ संख्या ३०६ मूल्य म. आ. से १॥) रु.

(५) उद्योगपर्व । पृष्ठ संख्या ९५३ मूल्य म.आ.से ५) रु.

(६) भीष्मपर्व । पृष्ठ संख्या ८०० मू. म. आ. से ४) रु.

[७] महाभारत समालोचना ।

१ प्रथम भाग । मू. म. आर्डरसे ॥) वी. पी. से ॥।≈)आने ।

२ द्वितीय भाग । मू. म. आर्डरसे ॥) वी. पी. से ॥।≈)आने ।

महाभारत के स्थायी ग्राहकोंके लिये १२०० पृष्ठोंका ६)रु. मूल्य होगा ।

मुद्रक तथा प्रकाशक — श्री. दा. सातवळेकर
भारतमुद्रणालय- स्वाध्याय मंडल, औंध (जि. सातारा)